



Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Jadav, Kiritsinh H., 2013, " राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य: सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन ", thesis PhD, Saurashtra University

<http://etheses.saurashtrauniversity.edu/1034>

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
<http://etheses.saurashtrauniversity.edu>
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्यः सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबंध



:: प्रस्तुतकर्ता ::

जादव किरीट

शोध-छात्र,

हिन्दी भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय

राजकोट

:: निर्देशक ::

डॉ. एन.एम. डोडिया

एम.जे. कुंडलिया कॉलेज

राजकोट

वर्ष : २०१३

Certificate for Pre Ph.D. Presentation

*This is to certify that **Jadav Kiritsinh H.** made Pre Ph.D. Presentation as per UGC guideline "University Grant Commission" (Minimum Standard and Procedure for Ph.D. Degree) regulation 2009 and Saurashtra University Ordinance for Ph.D. programme (O.Ph.D. 6.2) on research work entitled 'राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य: सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन' (**Rajendra Avasthi Ke Upanyason Ka Samajik Avam Sanskruti Adhyayan**) in the Department of Hindi, Saurashtra University, Rajkot Date :01/01/2011 before all the faculty members and students of the Department for getting feedback and comments.*

I also certify that the Research Work Appreciated by all who remain present and there was no comments made for this research work.

I also certify that, this is her original work and the same has not been submitted for any other degree, diploma or destination in either Saurashtra University, Rajkot or any other University.

Date : 26/06/2013

Place : Rajkot.

Dr. B.K. Kalasva
Professor & H.O.D.
Department of Hindi
Saurashtra University,
Rajkot.

Certificate of Guide

*This is to certify **Jadav Kiritsinh H.** carried out the research work on the topic 'राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य: सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन' (**Rajendra Avasthi Ke Upanyason Ka Samajik Avam Sanskruti Adhyayan**) under my guidance and supervision for the award of degree of Doctor of Philosophy in Hindi under Saurashtra University, Rajkot*

I also certify that, this is her original work and the same has not been submitted for any other degree, diploma or destination in either Saurashtra University, Rajkot or any other University.

Date : 26/06/2013

Place : Rajkot.

Dr. N.M. Dodiya

Smt Minaben Kundaliya

Mahila College, Rajkot.

DECLARATION

*I, the undersigned **Jadav Kiritsinh H.** here by declare that the research work presented in this thesis on ‘राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य: सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन’ (**Rajendra Avasthi Ke Upanyason Ka Samajik Avam Sanskruti Adhyayan**) is my own original work carried out under the guidance of Dr. N.M. Dodiya, Smt Minaben Kundaliya Mahila College, Rajkot.*

I Further Declare that no part of this work has been submitted to this or any other University for any degree or award.

Date : 26/06/2013

Place : Rajkot.

(Jadav Kiritsinh H.)

Research Student

◦ प्रस्तावना

साहित्य मनुष्य के भावों और विचारों की समष्टि है। साहित्य और समाज का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। साहित्य जहाँ समाज से प्रभावित होता है वहाँ समाज भी साहित्य से उन्नति करता है। साहित्य और समाज का पारस्परिक तालमेल ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को चैतन्य प्रदान करता है। हिन्दी साहित्य में यह काम कई वर्षों से पद्य करता आया है, किन्तु आज पद्य की तुलना में गद्य सामान्य मनुष्य के अधिक निकट है। गद्य-साहित्य के अंतर्गत उपन्यास का स्थान सर्वोपरि है। उपन्यास मानव-जीवन का समग्र रूप से चित्रण करने वाली एक सशक्त साहित्यिक विधा है। वर्तमान साहित्यिक विधा है। वर्तमान साहित्यिक विधाओं में उपन्यास को पहला दर्जा हासिल है। इसकी वजह दरअसल सामाजिक जीवन की असलियतों से उसकी जबरदस्त पकड है।

आधुनिक युग औद्योगिक क्रांति का है। औद्योगिक क्रांति का परिणाम है परम्परागत काव्य-रूपों को खत्म कर गद्य रूपों का निर्माण है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसी वजह से आधुनिक युग को 'गद्य युग' कहा है। उपन्यास साहित्य का प्रारंभ वहाँ से लेता है जहाँ से महाकाव्यों का संसार समाप्त होता है। महाकाव्यों में आदर्शवादी दृष्टि किसी-न-किसी रूप में निहित रहती थी। महाकाव्यों में महान चरित्रों एवं उदात्त जीवन-मूल्यों का चित्रण हुआ करता था। कलात्मक और श्रेष्ठ महाकाव्यों के समान ही आज कलात्मक और श्रेष्ठ उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आज का युग उपन्यास-साहित्य का है। प्रारंभ के उपन्यासों में दैवी पात्रों एवं अलौकिक घटनाओं का चित्रण होता था, लेकिन आज उनमें ऐसी घटनाओं के स्थान पर साधारण जन-जीवन की घटनाओं को स्थान दिया जाता है। हिन्दी उपन्यास की

परम्परा 'परीक्षागुरु' उपन्यास से अब तक निरन्तर विकसित होती रही है । आज उपन्यास साहित्य की सर्वाधिक, लोकप्रिय, लोकप्रचलित एवं बहुचर्चित विधा बन गया है ।

हिन्दी में उपन्यास का वास्तविक स्वरूप सबसे पहले प्रेमचंद के उपन्यासों में दृष्टिगत होता है । उपन्यास को व्यवस्थित स्वरूप भी प्रेमचंद ने ही दिया । प्रेमचंद पूर्व हिन्दी में जासूसी, तिलस्मी, चमत्कार और आश्चर्यजनक करिश्मे, प्रेम, इश्क-हकीकी एवं ऐतिहासिक रोमांस की परम्परा थी । उस समय के उपन्यासों में सनातनी प्रतिक्रियावादी मनोवृत्तियाँ, पर्दाप्रथा का समर्थन, रुढ़िवादीता, प्रतिव्रत, सहशिक्षा एवं विधवा विवाह का विरोध दृष्टिगत होता है । प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को इस भूलभूलैया तथा रुढ़िगत प्रतिक्रियावादी स्थितियों से मुक्त कर यथार्थ की जमीन पर खड़ा किया । प्रेमचंद ने कथा को सामाजिक समस्याओं से जोड़ा तथा उसे एक व्यवस्थित रूप प्रदान किया । तिलस्मी-ऐय्यारी उपन्यासों के खिलाफ उसने प्रगतिशील चेतना का प्रारंभ किया । थोड़े समय के पश्चात् भारत को आज़ादी मिली । लेकिन आज़ादी के पूर्व अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था का संपूर्ण दोहन कर हमारे स्वावलम्बी आर्थिक चरित्रों को तोड़कर रख दिया था । अंग्रेजों ने हमारा कच्चा माल विदेश ले जाकर हमारे उद्योग धन्धे को नष्ट किया तथा भूमि व्यवस्था के नये-नये कानून लगाकर गाँववालों के लिए जीना दूभर कर दिया गया । संपूर्ण देश की जनता आज़ादी की प्रतीक्षा में थी । उम्मीद थी कि आज़ादी के पश्चात् आर्थिक नीति में बहुत बड़ी क्रांति आयेगी और आम जनता की रोटी, कपड़ा और मकान जैसी आधारभूत आवश्यकताएँ प्राप्त होगी । लेकिन सपने-सपने ही रहे वास्तविक न बन पाये । कुछ संदर्भों में विकास जरूर हुआ है । देश के क्रांतिकारी विकास हेतु बनी

पंचवर्षीय योजनाओं में मूलभूत तीन मुद्दों पर अधिक बल दिया गया । नारी-चेतना, दलित चेतना एवं ग्राम-चेतना। साथ में, मानवीय संस्कृति को, समाज को बचाने रखने हेतु कई मूलभूत प्रयास भी किए जाने लगे । समयानुसार गाँव बदला, व्यक्ति बदला यही बदलने की प्रक्रिया उपन्यास साहित्य को भी विशेष रूप से प्रभावित करती रही । समाज जीवन की परिवर्तनशील पलों को उपन्यास अपने में समेटता हुआ कई मोड़ों एवं पड़ावों को पार करता आज तक निरंतर गतिशील रहा है ।

◦ शोध-विषय की प्रेरणा

राजेन्द्र अवस्थी जी की इन सारी साहित्यिक उपलब्धियों को मैंने सबसे पहले डॉ. बी.के.कलासवा जी के मुँह से सुना और मेरे मन में आया कि मुझे अवस्थी जी पर ही संशोधन-कार्य करना होगा । जिसने मन में निश्चय किया हो उसे कौन टाल सकता है । मैं अपने निश्चय को लेकर डॉ. एन.एम.डोडिया साहब को मिला । पहले तो वे अत्यंत खुश हुए साथ में निराश भी हुए क्योंकि विषय नया था लेकिन सहायक सामग्री का उपलब्ध होना कठिन था । मेरे शोध-कार्य की इच्छा की सराहना करते हुए मुझे चर्चा करने के लिए दूसरे दिल बुलाया गया । दूसरे दिन डॉ. बी.के.कलासवा जी की उपस्थिति में ही मेरे संशोधन के विषय में काफी विचार विमर्श होता रहा । परिणाम यह निकला कि मेरे मन की बात शत-प्रतिशत साकार हुई और मेरे संशोधन का विषय तय हुआ । डॉ. एन.एम.डोडिया जी ने मुझे इस कार्य के योग्य समझा और इस विषय पर शोध-कार्य करने के लिए प्रेरणा देकर मुझे कृतार्थ किया ।

विषय-चयन के पश्चात् शोध-कार्य के शीर्षक के लिए मैं कई विद्वतजनों का भी सम्पर्क करता रहा । मेरे निर्देशक डॉ. एन.एम.डोडिया, डॉ.बी.के.कलासवा, डॉ.

एस.पी.शर्मा, डॉ. शैलेश मेहता आदि के साथ गहरी सोच प्रक्रिया के बाद, गुरुजनों की प्रेरणा से शोध-कार्य का जो शीर्षक निश्चित हुआ वह इस प्रकार हैं-

‘राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य: सामाजिक

एवं सांस्कृतिक अध्ययन’

मूझे इस बात का हर्ष और गौरव है कि मैं आज मैं अपने शोध-विषय की पूर्णता के बाद शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसके लिए मैं मेरे निर्देशक डॉ. एन.एम.डोडिया एवं हिन्दी भवन के समस्त गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापित करता हूँ।

◦ प्रबंध-परिषय

शीर्षक : ‘राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य: सामाजिक

एवं सांस्कृतिक अध्ययन’

प्रथम शोध-प्रबंध की आलोचनात्मक सामग्री को मैंने छः अध्यायों में विभाजित किया है। प्रत्येक अध्याय का क्रमागत सारांश यहाँ किया गया है।

◦ प्रथम अध्याय

राजेन्द्र अवस्थी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय राजेन्द्र अवस्थीजी के जीवनवृत्त एवं कृतित्व से सम्बन्धित है। आलोच्य अध्याय में मैंने अवस्थी जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए उनके बाह्य तथा आंतरिक व्यक्तित्व पर विशेष बल दिया है। साथ ही, उनकी कृतियों बिलकूल संक्षिप्त परिचय देकर कालानुक्रम रखने का प्रयास भी किया है। साहित्य अंततः समाज का ही एक हिस्सा होता है। समाज में व्याप्त परिवेश का प्रभाव स्वयं साहित्यकार के मन पर पड़ता है। अतः मैंने अवस्थी जी के साहित्य में उनके व्यक्तित्व को खोजने का प्रयास किया है।

◦ द्वितीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास: एक परिदृश्य

आलोच्य शोध-प्रबंध का द्वितीय अध्याय 'हिन्दी उपन्यास: एक परिदृश्य' शीर्षक से संबंधित है। प्रस्तुत अध्याय को मैंने दो विभागों में विभाजित किया है। प्रथम विभाग में मैंने हिन्दी उपन्यास शब्द का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप एवं प्रकारों पर प्रकाश डाला है तथा द्वितीय विभाग में हिन्दी उपन्यासों का उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यास एवं प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास की ऐतिहासिक रेखा को स्पष्ट किया है।

◦ तृतीय अध्याय

समाज एवं संस्कृति: तात्त्विक विवेचन

तृतीय अध्याय में मैंने समाज एवं संस्कृति का तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत करते हुए समाज का अर्थ समाज की परिभाषा, समाज का स्वरूप एवं व्यक्ति एवं समाज का अंतर्संबंध स्पष्ट किया है। साथ में संस्कृति का अर्थ, संस्कृति की परिभाषा, संस्कृति का स्वरूप एवं समाज एवं संस्कृति का अंतःसंबंध स्पष्ट किया है। अतः प्रस्तुत अध्याय सिर्फ समाज एवं संस्कृति का तात्त्विक विवेचन ही स्पष्ट करता है।

◦ चतुर्थ अध्याय

राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों का परिचयात्मक अनुशीलन

चतुर्थ अध्याय में मैंने राजेन्द्र अवस्थी जी के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया है। साथ में यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि आलोच्य उपन्यास में व्यक्त कथानक, पात्र, संवाद, वातावरण, भाषाशैली एवं उद्देश्य के नियामक तत्वों में कथा-गुँफन कैसा है? कथातत्त्व का विवेचन करते हुए संशोधन में कथातत्त्व की क्या विशेषता है उस पर भी प्रकाश डाला है।

० पंचम अध्याय

राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में चित्रित समाज का स्वरूप एवं उसके प्रमुख विधायक तत्व

प्रस्तुत अध्याय में मैंने राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यास साहित्य में वर्णित समाज के स्वरूप को प्रस्तुत किया है। वर्णव्यवस्था, समाज व्यवस्था, नारी स्थिति, मूल्यों का विधान, दहेजप्रथा, रीति-रिवाज, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, विवाह सम्बन्धी समस्याएँ एवं पारिवारिक आदर्शों को प्रस्तुत किया है।

० छठ अध्याय

राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक स्वरूप एवं उसके प्रमुख नियामक तत्व

उल्लेखित अध्याय में मैंने अवस्थी के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक स्वरूप को स्पष्ट किया है। धार्मिक स्वरूप, पुजा, पद्धतियाँ, तीज-त्यौहार, गाथाएँ, भक्तिपूर्ण गीत, वीर गीत, व्यंग्यात्मक गीत, नाच-गान, सामायिक गीत, वैवाहिक गीत, शिकारगीत आदि पर विचार किया गया है।

अतः मैंने 'उपसंहार' देकर राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में विचित्र समाज एवं संस्कृति के अहम् मुद्दों पर प्रकाश डाला है और यह प्रस्थापित करना चाहा है कि अवस्थी जी के उपन्यास साहित्य की एक निश्चित दृष्टि है जो हजारों सालों से चली आ रही भारतीय संस्कृति का रक्षण करती है।

उपसंहार के पश्चात् संदर्भग्रन्थ सूचि देकर मैंने शोध-प्रबंध लेखन में जो आधार ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ एवं अन्य सामग्री का प्रयोग किया है जिसका वैज्ञानिक उल्लेख किया है।

◦ विषय का महत्व

आलोच्य विषय के बारे में कहे तो आज का युग औद्योगिक क्रांति का युग है। और इस युग में हम जितने भी प्रगति प्राप्त है शायद कई गुना दुर्गति प्राप्त भी महसूस कर रहे हैं। अवस्थी जी उस बात पर ध्यान केन्द्रित करते हैं कि क्या अत्याधुनिकता का निर्वाह करना चाहिए या नहीं? राजेन्द्र अवस्थी आज जनता के साहित्यकार हैं। उनके साहित्य में जनजातीय समाज मुखर है। आदिवासियों के बीच पले अवस्थीजी अपने साहित्य का मूल खाद्य आदिवासी समाज को लेते हैं। मेरी दृष्टि में आदिवासी समाज अन्य समाजों की तुलना में कई गुना मूल्यों का रक्षक है। आज नगर महानगर में मूल्यों को तौड़ा गया है। पारिवारिक संबंध टूट चुके हैं। मनुष्य सिर्फ मनुष्य कहलाने के लिए है। ऐसी स्थिति में राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों को पढ़ा जाय। वे अपने मूल्यों की रक्षा करते हुए सम्मानी व्यक्ति हैं। उनके रीति-रिवाज अन्य समाजों की तुलना में श्रेष्ठ हैं। अतः विषय का महत्व अपने आप में श्रेष्ठ है।

◦ पूर्ववर्ती शोधकार्य

राजेन्द्र अवस्थी को ध्यान में रखकर उनके व्यक्तित्व, कृतित्व एवं अन्य परिपेक्ष्य में जो अनुसंधान हुआ है जिसकी आज तक की सूची निम्नानुसार है।

- राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य: सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन- डॉ. बेचन
- आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास - डॉ. देवीशंकर अवस्थी
- साहित्य: सिद्धांत और समालोचना - डॉ. देवीशंकर अवस्थी
- नई कहानी संदर्भ और प्रकृति - डॉ. देवीशंकर अवस्थी

- हिन्दी के आंचलिक उपन्यास - संपा. डॉ. रामदरश मिश्र तथा डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त
- छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य - डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
- राजेन्द्र अवस्थी का कथा संसार - डॉ. सविता सौरभ
- प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्प-विधि - डॉ. सत्यपाल युग
- आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु-विन्यास - डॉ. सरोजनी त्रिपाठी

जब मैंने इस विषय से सम्बन्धित शोध-कार्य को तलास करने का प्रयत्न किया, तब पता लगा कि इस विषय पर अनुसंधान करने की ओर भी काफी गुंजाइश है, क्योंकि इस विषय पर नहीं के बराबर शोध-कार्य हुआ है। अतः मैंने 'राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य: सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन' विषय को चुना और आज यह कार्य पूर्ण हुआ है।

◦ शोध-प्रबंध की विशेषताएँ

शोध-प्रबंध की विशेषताएँ निम्नानुसार है।

१. जनजातीय उपन्यासों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रदेय प्रस्थापित करना।
२. ग्रामीण एवं जनजातीय समाज के पुनर्निर्माण में योगदान देना।
३. राष्ट्रीय भावात्मक एकता की प्रस्थापना।
४. समाज के सांस्कृतिक इतिहास के निर्माण में योगदान देना।
५. जन-जातीय लोगों की सामाजिकता को परखना।
६. जनजातीय समाज की सांस्कृतिक विरासत को जानना।
७. ग्रामीण समाज एवं नगरी समाज की तुलना करना।

८. अप्राप्त सामग्री को प्राप्त बनाना ।
९. अवस्थी के संपूर्ण साहित्य को जानना ।
१०. अवस्थी एवं अवस्थी के साहित्य की भाषा को जानना ।
११. अवस्थी जी की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को उजागर करना ।

० सामग्री संकलन के सूत्र

विश्वसनीय सामग्री ही शोध की आधारशीला है । उपलब्ध सामग्री जितनी पूर्ण, प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक हो शोधकार्य उतना ही ठोस व स्तरीय बनता है । शोध-कार्य सुनने में जितना सुखद लगता है, करने में वह उतना ही कष्टप्रद है । अर्थात् शोध-कार्य एवं सामग्री संकलन की प्रक्रिया अपने-आप में एक अति दुष्कार कार्य है । वैसे भी शोध-कार्य एवं तत्संबंधी सामग्री संकलन करना अहिन्दी भाषी छात्रों के लिए थोड़ा कठिन होता है । मेरे शोध-प्रबंध को स्तरीय बनाने हेतु राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यास एवं उनके उपन्यासों में ग्रामीण चेतना-पूर्व प्रकाशित अप्रकाशित शोध-प्रबंधों, समकालीन हिन्दी लेखकों से पत्राचार, हिन्दी एवं अन्य भाषा के विविध संदर्भ-ग्रंथो, पत्र-पत्रिकाओं, शब्दकोश तथा इन्टरनेट पर उपलब्ध विविध वेबसाइट के सामग्री संकलन किया । इसके अलावा विविध विश्वविद्यालयों के ग्रंथालयों से भी सामग्री जुटाने का प्रयास किया ।

० कृतज्ञता-ज्ञापन

किसी के प्रति आभार या कृतज्ञता के भाव व्यक्त करना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। आभार एक प्रकार से अनुभूति का विषय है, अभिव्यक्ति का नहीं। किन्तु कभी-कभी अभिव्यक्ति भी अनुभूति को निरंतर ताजगी ही देती है। कृतज्ञताज्ञापन को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता।

मेरा यह प्रयास डॉ. एन.एम.डोडिया साहब के कुशल स्नेह निर्देशन में पूर्ण हुआ है। डॉ. एन.एम.डोडिया साहब ने अपने व्यस्ततम समय में से अमूल्य क्षण निकालकर मेरी समस्याओं और कठिनाइयों का समय-समय पर हल कर मेरा मार्ग निर्देशन किया और असीम धैर्य, परिश्रम, लगन और मनोयोग से इस कार्य में मेरी सहायता की है। निःसंदेह मेरा कार्य इतनी शीघ्रता से संपन्न हुआ है, इसके पीछे डॉ. एन.एम.डोडिया साहब का असीम स्नेह, प्रेरणा और प्रोत्साहन ही मेरा सम्बल रहा है।

समय समय पर जिनसे हरदम सहायता एवं आशीर्वाद मिलते रहे हैं ऐसे परम आदरणीय डॉ. एस.पी.शर्मा (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट), डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी साहब, डॉ. बी.के.कलासवा (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट), डॉ. शैलेश के. महेता (प्रोफेसर, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) एन.टी.गामीत (रीडर, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट), डॉ. कीरीट जोशी, डॉ. दक्षाबहन जोशी, डॉ. जिज्ञेश व्यास, डॉ. कमलेश देसाई आदि ने पूरा-पूरा संबल दिया है। आप अभी विद्वज्जनों ने ज्ञानार्जन में मेरी पूर्ण सहायता की है। अतः इन सबसे प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

राजेन्द्र अवस्थी जैसे प्रतिभा सम्पन्न लेखक के बारे में लिखना एवं उनके साहित्य का अध्ययन करना मेरे लिए सहज नहीं होता । फिर भी जहाँ तक संभव हो मैं इस विषय को उचित न्याय देने का प्रयास अवश्य किया है और उस प्रयत्न में जो विद्वत्जन सम्मिलित हैं इन सबको नमस्कार करते हुए कृतज्ञताज्ञापित करता हूँ ।

साथ ही मेरे परिवारजनों, मित्रों, विद्वानों, प्रकाशक मित्रों और विभिन्न ग्रंथालयों के ग्रंथपालों का इस कार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग मिला । उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ । जिन शुभेच्छकों की सतत प्रेरणा एवं सहयोग से यह शोध-कार्य सम्पन्न हुआ । शोधार्थी तो केवल निमित्त है । उस निमित्तता में जो सहभागी बने इन सबके प्रति नतमस्तक होकर शुभेच्छा प्राप्त करना चाहूँगा ।

अंत में अपने शोध-कार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में जिन्होंने योगदान दिया मैं कभी नहीं विस्मृत कर सकता । अतः मैं धन्यता की अनुभूति करता हूँ ।

स्थल: राजकोट

दिनांक : २६/०६/२०१३

विनीत

जादव किरीटसिंह

अनुक्रमणिका

| क्रम | प्रकरण शीर्षक | पृष्ठ संख्या |
|----------|---|--------------|
| ➡ | प्रस्तावना | i-xi |
| अध्याय-१ | राजेन्द्र अवस्थी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व | १-२५ |
| अध्याय-२ | हिन्दी उपन्यास एक परिदृश्य | २६-९१ |
| अध्याय-३ | समाज एवं संस्कृति : तात्त्विक विवेचन | ९२-११९ |
| अध्याय-४ | राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों का परिचयात्मक अनुशीलन | १२०-१६३ |
| अध्याय-५ | राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में चित्रित समाज का स्वरूप एवं उसके विधायक तत्त्व | १६४-२२२ |
| अध्याय-६ | राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक स्वरूप एवं उसके प्रमुख नियामक तत्त्व | २२३-२७१ |
| ➡ | उपसंहार | २७२-२८६ |
| ➡ | संदर्भसूची | २८७-२९१ |

प्रथम अध्याय

राजेन्द्र अवस्थी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

० जीवन परिचय

अनुसंधान एक सतत चलनेवाली प्रक्रिया है। किसी भी लेखक के साहित्यिक विश्लेषण, व्याख्या एवं मूल्यांकन के लिए उसका जीवन परिचय प्राप्त करना अत्यंत जरूरी है, क्योंकि लेखक के जीवन और व्यक्तित्व के कई पक्ष उसके साहित्य को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। यहाँ पर राजेन्द्र अवस्थी के जीवन और व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय इसी उद्देश्य से दिया जा रहा है। डॉ. अवस्थी जी के पूर्वजों तथा परिवार के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के हेतु उनसे मिलने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ। डॉ. भाउसाहेब मा. परदेशी द्वारा साक्षात्कार से राजेन्द्र अवस्थी को परिचय प्राप्त हुआ है वह निम्नानुसार है।

० जन्म :

डॉ. राजेन्द्र अवस्थी का जन्म २५ जनवरी १९३१ ई. को मध्यप्रदेश के जबलपुर नगर में हुआ। उनकी माता का नाम छोटीबाई था। उनके पिता धनेश्वर प्रसाद संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्हें ज्योतिष शास्त्र में गहरी रुचि थी। उनके ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान की गहराई को अवस्थी जी ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है- “अपने ज्योतिष ज्ञान के आधार पर उन्होंने पंचांग में बहुत पहले से अपनी मृत्यु का समय लिख दिया था।”^१ श्री धनेश्वर प्रसाद बड़े स्वाभिमानी पुरुष थे इसलिए किसी के आगे हाथ फैलाना अथवा सिर झुकाना उन्हें बिल्कुल ही स्वीकार्य नहीं था, यहाँ तक कि अपने बच्चों के भी आगे। इस विशेषता को राजेन्द्र अवस्थी ने भी अनुभव किया। उन्होंने इन पंक्तियों के लेखन से इस सम्बन्ध में कहा- “वे

अत्यन्त स्वाभिमानी थे । उन्होंने मृत्यु के पहले पंचांग के प्रत्येक पन्ने में दस-दस रुपये के नोट रख दिये थे जो मृत्यु के बाद मुझे मिले । मुझे ऐसा लगा कि उनके मन में ये भाव थे कि मेरी मृत्यु के समय कहीं बेटे के पास पैसे हो या न हों । “इससे स्पष्ट होता है कि राजेन्द्र अवस्थी के पिताजी किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे । श्री धनेश्वर प्रसाद अवस्थी स्कूल के मुख्याध्यापक थे । वे कट्टर ब्राह्मण होने के कारण पूजा-पाठ पर विशेष आस्था रखते थे । उनके पूजा-पाठ की दिनचर्या के बारे में डॉ. सविता सौरभ कहती हैं- “प्रातःकाल उठकर पूजा-पाठ करना उनका नियमित आचरण था । सूर्योदय होने पर तुलसी के एक-एक पत्र को लेकर वे ईश्वर को जगाया करता है ।”^२ राजेन्द्र अवस्थी का स्थायी घर आज भी जबलपुर में है । उनके दादाजी और पिताजी का जीवन जबलपुर में व्यतीत हुआ ।

० बाल्यकाल और शिक्षा

अवस्थी जी का बाल्यकाल बस्तर, मंडला क्षेत्र में गोड़ जाति के बीच व्यतीत हुआ। इस सम्बन्ध में सुरेश नीरव द्वारा पूछे गये एक प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं अवस्थीजी ने कहा है- “मेरा जन्म देहात में हुआ था । जब से मुझे याद है शायद मैंने अपने आप को पहली बार गोड़ स्त्री की गोद में खेलता पाया था ।”^३ इसका कारण बताते हुए अवस्थी जी कहते हैं- “मेरे पिता शिक्षक थे और उनका स्थानांतर होता रहता था । अधिकांश समय वे बस्तर और मंडला क्षेत्र में रहे हैं ।”^४ इस गोड़ जाति के निकट रहने का परिणाम उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर प्रतिबिंबित होता है । यह गोड़ जाति के निकट संपर्क का ही परिणाम है ।

बचपन से ही अवस्थी जी को पढ़ने-लिखने का बेहद शौक रहा है । उनके पिताजी शासकीय शिक्षक थे अतः उनका तबादला होता रहता था । इसलिए अवस्थी

जी की प्रारंभिक शिक्षा मध्यप्रदेश के कई स्थानों पर हुई । उन्होंने मंडला से बी.ए. कर लेने के उपरान्त नौकरी करते हुए उन्होंने एम.ए. की परीक्षा नागपुर से स्वतंत्र रूप में पास की । उनको “१९८६ में पत्रकारिता पर लिखे गये शोध-प्रबंध पर कलकता विश्वविद्यालय द्वारा पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की गई । हालैण्ड के लायडन विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट. की मानद उपाधि प्रदान की गई । उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उनको डी.लिट. की उपाधि के विभूषित करते हुए भाषा विशेषज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया ।”^५

• जीवन-यापन

अवस्थी जी नौकरी के संदर्भ में बड़े भाग्यशाली रहे हैं । नौकरी ढूँढने के लिए उन्हें यहाँ-वहाँ नहीं भटकना पडा । अपने जीवन की सर्वप्रथम नौकरी उन्हें नागपुर में मिली । वे नागपुर के ‘दैनिक नवभारत’ के साहित्य संपादक नियुक्त हुए । इस नौकरी के लिए जबलपुर में ‘नवभारत’ समाचार-पत्र के प्रधान संपादक श्री राजगोपाल माहेश्वर का पत्र मिला । पत्र में उन्होंने अवस्थी जी को संपादक विभाग में ‘साहित्य संपादक’ के रूप में कार्य करने के लिए लिखा था । साहित्य में बचपन से ही रुचि होने के कारण उन्होंने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया । घरवालों ने अवस्थी जी के इस निर्णय को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे सभी चाहते थे कि अवस्थी जी उनसे दूर अर्थात् नागपुर न जायें । उनके परिवार के अधिकांश सदस्य शिक्षा-विभाग में कार्यरत थे । अतः उन लोगों की यही इच्छा थी कि अवस्थी जी भी इस क्षेत्र में कार्यरत रहें । अवस्थी जी के चाचा महाविद्यालय के चेयरमैन थे । उन्होंने अवस्थी जी से कहा था कि “‘तुम्हें नौकरी ही करनी है तो तुम कॉलेज में लेक्चरर बन जाओ ।” अवस्थी जी को पढ़ाने का कार्य बड़ा बेमानी लगता था । उनके मन

में पत्रकार बनने की प्रबल इच्छा थी । अतः उन्होंने परिवार का विरोध होते हुए भी नागपुर जाकर संपादक की नौकरी करने का संकल्प किया । नागपुर जाने के लिए जब अवस्थी जी तैयार हुए तब उनके पिताश्री की आँखें पुत्र-प्रेमवश सजल हुई और उनकी आँखों से आँसू बहने लगे । इसका कारण यह था क उसका पुत्र पहली बार परिवार छोड़कर दूर जा रहा था ।

नागपुर में तीन-चार साल कार्य करने के पश्चात् सन् १९६० में अवस्थी जी ने बम्बई के 'टाईम्स आफ इण्डिया' प्रतिष्ठान में 'सारिका' का संपादन भार स्वीकार किया। 'सारिका' में रहते हुए उन्होंने निश्चित अवधि में पत्रिका का प्रकाशन कार्य कर अपनी परिश्रमशीलता, अदम्य उत्साह तथा जिद का परिचय दिया ।”^६

बम्बई में आकर उन्होंने फिल्मस्थान में रणजीत स्टूडियो भी खोला था । वहाँ अनेक दिनों तक उनका ऑफिस रहा । अनेक लोगों से उनकी मुलाकात हुई । पहले वे व्यावसायिक फिल्म बनाना चाहते थे परन्तु फाइनेंसर के फाइनेंस न करने के कारण नहीं बनाया पाये। बाद में उन्होंने निर्णय लिया कि वे आर्ट फिल्म बनायेंगे । इस उद्देश्य से उन्होंने बम्बई में अनेक लोगों से मुलाकातें कर उनके जीवन के बारे में जानने का प्रयास भी किया । तब उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि यदि वे स्वयं किसी का उद्धार नहीं कर सकते तथा किसी को सहायता नहीं पहुँचा सकते तो उनके जीवन पर फिल्म बनाकर उनका मजाक उड़ाने का भी उन्हें कोई अधिकार नहीं है ।”^७ अतः उन्होंने रणजीत स्टूडियो बन्द कर दिया। सन् १९६४ में अवस्थी जी को श्री घनश्याम बिडला का पत्र मिला । वैसे भी बम्बई की जलवायु का अवस्थीजी के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड रहा था । अतः अवस्थी जी बम्बई छोड़कर दिल्ली गये । उन्होंने दिल्ली जाकर 'हिन्दुस्तान टाईम्स' से एक पत्रिका निकालने का कार्य किया । उसका

नाम 'नंदन' रखा । इस पत्रिका का भार वे १९७४ ई. तक सम्भालते रहे । सन १९७२ से अवस्थी जी भारत की प्रसिद्ध पत्रिका 'कादम्बिनी' का संपादन करने लगे । इस प्रकार १९७२ से १९७४ ई. तक उन्होंने दो पत्रिकाओं का संपादन कार्य सम्भाला । १९७४ में उन्होंने 'नंदन' संपादन छोड़ दिया और केवल 'कादम्बिनी' के ही संपादक रहे । इस पत्रिका की ख्याति बढ़ाने के लिए उन्होंने अत्यधिक परिश्रम किया । इस परिश्रम का ही फल है कि कादम्बिनी की बिक्री दिन-ब-दिन बढ़ती गयी । अवस्थी जी के अनुसार- 'जिस दिन मुझे कादम्बिनी का संपादक बनाया गया उस समय भारत में २३ हजार प्रतियाँ बिकती थीं, लेकिन आज तीन लाख के ऊपर प्रतियाँ बाजार में बिकती हैं ।'

कादम्बिनी का सम्पादन करते हुए पुनः एक बार उन्हें दो पत्रिकाओं का सम्पादन करने का अवसर प्राप्त हुआ । १९८६ ई. से उन्होंने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' का संपादन प्रारम्भ किया । बाद में इसका संपादन उन्होंने डॉ. मृणाल पाण्डे को सौंप दिया । साहित्यकार और संपादकीय दायित्व के साथ ही वे दिल्ली विश्वविद्यालय में पत्रकारिता का प्रश्न-पत्र भी पढ़ाते रहे । अब तक अवस्थी जी ने अफ्रीका और एशिया के देश युरोप, अमेरिका, रूस तथा उसके आस-पास के पहले के समाजवादी देशों की यात्राएँ की, यहाँ तक कि उत्तरी ध्रुव के पास फिनलैंड तथा दक्षिण आस्ट्रेलिया के सभी देश उनके देखे हुए हैं । इन यात्राओं ने अवस्थी जी के पत्रकारिता सम्बन्धी ज्ञान को समृद्ध बना दिया है ।

० पारिवारिक जीवन

अवस्थी जी ने संयुक्त परिवार में जन्म लिया है । उनके परिवार में माता-पिता, चाचा-चाची तथा उनकी दादी भी थीं । अवस्थी जी कहते हैं "बचपन में मुझे दादी

माँ हर रात परियों की तथा रानियों की कहानियाँ सुनाती रहती थीं।” उनके चाचा शिक्षण संस्था के चेयरमैन थे। उन्होंने अवस्थी जी को शिक्षण संस्था में अध्यापक के रूप में नौकरी करने का आग्रह भी किया था परन्तु पत्रकारिता में रुचि होने के कारण अवस्थी जी ने अपने चाचा की बात को अस्वीकृत किया।

१७-१८ साल की उम्र में अवस्थी जी का विवाह हुआ। यह विवाह घरवालों द्वारा तय किया गया था। अवस्थी जी इस विवाह के लिए तैयार नहीं थे। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं- “जब मैं इण्टर में पढ़ता था तब मैं अपने क्लास की एक लड़की से प्यार करता था इसलिए मैं घरवालों द्वारा तय की गयी लड़की से विवाह नहीं करना चाहता था। परन्तु घर में सबसे बड़ा लड़का होने के कारण माता-पिता, फुफा का विरोध करने की हिम्मत न कर सका।” अवस्थी जी की पत्नी का नाम शकुन्तला देवी है। उनके दो लड़कियाँ और तीन लड़के हैं। लड़कों के नाम हैं- देवशंकर, शिवशंकर और अशोक। लड़कियों के नाम हैं- पुष्पा और साधना। अवस्थी जी दादा भी बन गये हैं। उनके घर पोता-पोती भी खेल रहे हैं।

• साहित्यिक कार्य

जब अवस्थी जी सातवीं-आठवीं कक्षा के विद्यार्थी थे तब से उन्होंने साहित्यिक साधना शुरू की। उन्होंने अपनी साहित्य साधना पद्य से शुरू की। उनकी पहली कविता अंग्रेजी में लिखी गयी थी जिस पर उन्हें तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा एक पुस्तक ‘वक्तृत्व कला’ पुरस्कार में दी गयी थी। प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न व्यक्तियों की भाषण शैली का परिचय था। पुस्तक को पढ़ने पर अवस्थी जी हिटलर की भाषण कला से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। उन्होंने इस शैली में भाषण देने की कला को सीखना प्रारम्भ कर दिया। अध्ययन के लिए अवस्थी जी या तो नदी

किनारे एकांत में चले जाते थे या फिर घर में आदमकद शीशे के सामने खड़े होकर बोलते थे । वे धीरे-धीरे भाषण देने की कला में इतने निपुण हुए कि स्कूल द्वारा आयोजित प्रत्येक वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार जीतने लगे ।

हिन्दी में अवस्थी जी के साहित्य-जीवन का प्रारम्भ सन् १९५६ में कहानी द्वारा हुआ । उनकी प्रथम कहानी ‘उलझन’, ‘सुमित्रा’ नामक पत्रिका में छपी । यह कहानी आगे चलकर ‘एक प्यास पहेली’ नामक काव्यसंग्रह में प्रकाशित हुयी हैं । इस कहानी में उन्होंने देवी-देवताओं और झाड़-फूँक को लेकर हमारे समाज में व्याप्त अंधविश्वास पर कड़ा व्यंग्य किया है । “भारतीय स्तर पर राजेन्द्र अवस्थी का नाम साहित्य जगत में उस समय उभर कर सामने आया जब उनकी कहानी ‘उलझन’ को अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ । पुरस्कार के रूप में उन्हें एक हजार रुपये नगद दिये गये । इस पुरस्कार ने अवस्थी जी को अत्यधिक उत्साहीत किया । अवस्थी जी ने एक और कहानी लिखकर भेजी । “उस कहानी को भारतीय स्तर पर द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।”^८ इन पुरस्कारों ने अवस्थी जी को यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया की कविता लिखने से कहानी लिखना अच्छा है । शुरु में अवस्थी जी कवि सम्मेलनों में जाया करते थे, किन्तु बाद में उन्होंने कवि सम्मेलनों में जाना छोड़ दिया । अवस्थीजी के अनुसार- “उन दिनों कवि सम्मेलनों की हालत अच्छी नहीं थी । कभी-कभी तो ऐसा भी होता था कि लौटते समय घर आने के लिए किराये के पैसे भी नहीं मिलते थे । ऐसी स्थिति में हमें आपस में चंदा इकट्ठा करना पड़ता था ।”^९ कविता से कोई आर्थिक लाभ न होने के कारण वे कहानी की ओर मुड़े । साक्षात्कार के समय उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि “कहानी द्वारा मिलने वाले पुरस्कारों ने मुझे गद्य-क्षेत्र की ओर प्रोत्साहित किया जिसका

परिणाम यह निकला की कविता धीरे-धीरे पीछे छूटती गयी और कहानी लेखन आगे आता गया ।” स्पष्ट हो जाता है कि कविता को अपने अनुकूल न पाकर अवस्थी जी ने उसका परित्याग कर दिया था । वे कविता के संदर्भ में कहते हैं- “आज की दुनिया में कविता से निरर्थक और बेमानी कोई चीज नहीं हो सकती । ओढी हुई संवेदनाओं और परम्परागत उपमानों की भीड में शब्दों को बाँधना हास्यास्पद जान पड़ता है । लगता है कि कविता करनेवाला कहीं मुखर नहीं होता, कोरे शब्द और अक्षर मुखर होते हैं और कवि केवल उन्हीं शब्दों और अक्षरों को जोड़नेवाला बाजीगर है ।”^{१०}

कहानी लिखते-लिखते अचानक अवस्थी जी का लेखन उपन्यास विधा की ओर मुड़ा । अपने लेखन के परिवर्तन के सन्दर्भ में अवस्थी जी सविता सौरभ से पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं “मैं बंजारी की कहानी लिख रहा था, लिखते-लिखते तेरह-चौदह पेज हो गये, हाथ थक गये तो मुझे लगा कि ये कहानी अभी और लिखी जा सकती है फिर मैंने समेटकर रख दी और तय किया कि उसे उपन्यास बनाया जाय । तब उस कहानी को उपन्यास के रूप में पुरा किया ।”^{११} यही कहानी “सूरज किरन की छाँव” उपन्यास में परिवर्तित हो गयी । इस उपन्यास के बाद अवस्थी जी ने कई उपन्यास लिखे ।

अवस्थी जी के साहित्यकार होने के नाते उन्हें विभिन्न संस्थाओं द्वारा अनेक बार सम्मानित किया गया । वे अखिल भारतीय विश्व चलचित्र प्रतियोगिता की जूरी के तीन बार सदस्य रहे । सलाहकार के रूप में वे भारत के विभिन्न मंत्रालयों से भी संबंधित हैं। प्रकाशन संस्थान ‘आथेसे गिल्ड आफ इण्डिया’ के वे सम्प्रति प्रबन्ध निर्देशक, उपाध्यक्ष तथा मध्यप्रदेश संस्कृत संस्थान एवं अखिल भारतीय दिनकर

साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष हैं ।

अवस्थी जी की कई पुस्तकें विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में रखी गयी हैं । उनके कई उपन्यासों के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हो चुके हैं । ३०-५-१९९२ में देहरादून में जो चुनाव हुआ उसमें अवस्थी जी 'आर्थर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया के जनरल सेक्रेटरी के पद पर तीसरी बार चुने गये । वे वर्षों तक 'इंटरनेशनल इस्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेदीक साईंस' के जनरल सेक्रेटरी रहे हैं ।'^{१२}

० व्यक्तित्व

अवस्थी जी सौम्य, मिलनसार तथा हँसमुख व्यक्ति हैं । उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि यह आदमी कहानीकार तथा उपन्यासकार कम, कवि अधिक है । बड़ा मुलायम-सा चेहरा, लटवाले हमेशा करीने से सँभले हुए बाल, गौर वर्ण, मुख पर चश्मे के पार झाँकती काली आँखें जो कहीं शिकायत करती नहीं लगती । लंबी-सी नाक और क्लीन शेव चेहरा, औसतन कद में वह कोमल लगता है, जो कभी किसी से झगड़े-फसाद का आदी नहीं दिखता, हमेशा मुस्कराने की आदत का द्योतक दिखता है । उंगलियों में अनेक अंगूठियाँ पहने हुए उनका व्यक्तित्व अत्यधिक वैविध्यपूर्ण है । “उनके सृजन का मुख रहस्य अभाव, क्षोभ और असंतोष में निहित है । इसका कारण वे अपने जन्मांक के सातवें स्थान में तीन ग्रहों के साथ सूर्य का होना मानते हैं । उनके छठवें स्थान में शनि और मंगल है । इस कारण उनके शत्रु अकारण पैदा हो जाते हैं, परन्तु वे उनका कुछ बिगाड नहीं सकते । वे अपने-आप पराजित हो जाते हैं ।”^{१३}

० दयालु और निस्वार्थ

अवस्थी जी बेहद दयालु और कोमल हृदय के निस्वार्थ व्यक्ति हैं । उनके

चरित्र की यह विशेषता डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने इन शब्दों में स्पष्ट की है “सबसे विशेष बात यह है कि अपने तमाम सम-सामायिक लेखक बंधुओं के रचना जगत में स्नेह सहयोग प्रदान किया, परन्तु उनसे कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका अस्तुतः उपेक्षा, ईर्ष्या और अपमान ही मिला ।

जैसे वे कोमल हैं वैसे ही कठोर और स्पष्ट वक्ता भी हैं । साक्षात्कार के दौरान एक लेखक के बारे में उन्होंने बताया कि “अगर वो मुझे घटिया लेखक कह सकता है तो मैं भी उसे घटिया लेखक कह सकता हूँ ।”^{१४}

• स्वाभिमानी

राजेन्द्र अवस्थी स्वभाव से स्वाभिमानी और परम्परा के कट्टर विरोधी हैं । स्वाभिमानी उन्हें पिताजी से विरासत में प्राप्त हुआ था । उनका स्वाभिमान उन्हीं के कथन से स्पष्ट होता है- “मुझे बचपन से ही लगता है कि किसी के सामने सिर झुका लिया तो हमारे पास अपना बचता ही क्या है? मुझे लगता है जिस दिन हमने पत्थर के सामने सिर झुका दिया उस दिन हम किसी भी विदेशी ताकत या सत्ता के सामने सिर झुकाने योग्य हो गये हैं ।”^{१५} अवस्थी जी सिर्फ अपने माता-पिता के आगे सिर झुकाना उचित मानते हैं। वे अपने माता-पिता को पूज्य मानते हैं । सिर झुकाने की बात को लेकर अन्य एक जगह पर उन्होंने कहा है- “जिस दिन हमने किसी पत्थर के सामने सिर झुकाना सीख लिया उसी दिन हम अपनी विरासत से दूर गए । क्योंकि आदमी के पास एक ही सिर है, उसे सीधा रखना चाहिए । मैं तो हमेशा से ही सिर झुकाने का विरोध करता रहा हूँ । मैं तो कहता हूँ कि मैं सिर्फ अपने माता-पिता के पैर पड़ूँगा और किसी के आगे सिर झुकाने को तैयार नहीं । इसलिए बचपन में कई बार मार खाता रहा हूँ ।”^{१६} इस कथन से भी स्पष्ट होता है कि वे

स्वाभिमान और परम्परा के विरोधी हैं। उनका यह स्वाभिमान और परम्पराओं के प्रति विद्रोह भाव उनकी कतिपय रचनाओं में प्रतिबिम्बित हुआ है।

स्वाभिमान होने के कारण अवस्थी जी ने पराजय स्वीकार करना नहीं सीखा है। जीवन में पराजय स्वीकार करनेवाले व्यक्ति को उनके मतानुसार जीने का हक नहीं है। वे कहते हैं- “मैंने हमेशा यह कहा है कि आदमी कभी पराजित न हो, हार कर भी जो पराजय महसूस न करे, वह आदमी है। अगर पराजय ही झेलना है तो बड़ी-बड़ी ये इमारतें किसलिये हैं ? उससे कूद पड़ो, आत्महत्या कर लो। अगर जिन्दा रहना है तो आदमी की तरह जिन्दा रहो।”

० परिवर्तनशील व्यक्तित्व

अवस्थी जी परिवर्तन के पक्ष में हैं। यह परिवर्तन चाहे रीति-रिवाजों का हो, परम्परा का हो अथवा व्यक्ति के व्यक्तित्व का हो। परिवर्तन के पीछे नवीनता का आग्रह होता है। अतः वे परिवर्तन आवश्यक मानते हैं। इसी कारण वे स्वयं के व्यक्तित्व में समय-समय पर परिवर्तन लाते रहे। कृष्ण चन्दर ने उन्हें चेहरे बदलने वाला शौकीन व्यक्ति कहा है।^{१७} उन्हें हम सदैव एक रूप में नहीं देख सकते। चेहरे पर दाढ़ी और मुँह बदलने का तो उन्हें बेहद शौक है। उनके इस शौक का वर्णन कृष्ण चन्दर इन शब्दों में करते हैं- “पहली बार जब मैं उन्हें मिला तो उनके चेहरे पर पतली-सी दाढ़ी मुँह थी। दूसरी बार मिला तो पतली मुँह के नीचे ठोड़ी पर पतली-सी दाढ़ी आ गयी। तीसरी बार मिलने पर दाढ़ी और मुँह दोनों गायब।” जिस प्रकार वे अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन करते हैं उसी प्रकार उनका मूड भी बदलता रहता है। कभी वे खुश नजर आते हैं तो कभी परेशान, लेकिन उनकी खासियत यह है कि वे अपनी परेशानी का पता नहीं चलने देते। वे हरदम मुस्कराते रहते हैं।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखते हैं- “मैंने अनुभव किया कि राजेन्द्र का हृदय कवि का है, मानस कथाकार का है, समूचा जीवन और चरित्र मित्र और साथी है। ऐसा निष्कपट व्यक्ति, भीतर-बाहर एक समान प्रसन्न और करुण चरित्र मुझे कम ही मिले हैं।” सुरेश नीरव उनके व्यक्तित्व को विवादास्पद कहते हैं- “राजेन्द्र अवस्थी एक अजीब-सा व्यक्ति है, जो किसी भी क्षण अपना हो सकता है और किसी भी क्षण अपने ही हाथ को काटकर फेंक सकता है।”

० मित्र-मण्डली के प्रति स्नेहिल

अवस्थी जी स्वभाव से बड़े स्नेहिल हैं। उनके इस स्वभाव का प्रमाण उनकी मित्र-मण्डली है। अवस्थी अपनी मित्र मण्डली में बेहद लोकप्रिय हैं। उनके प्रमुख मित्रों में राजेन्द्र सिंह बेदी, ख्वाजा अहमद अब्बास, गुलाबदास ब्रोकर, धर्मवीर भारती, गीतकार शैलेन्द्र, बासु भट्टाचार्य, कृष्ण चन्दर, डॉ. गंगाप्रसाद विमल, मोहन राकेश और लक्ष्मीनारायण लाल रहे हैं। फिल्मी जगत के अभिनेताओं तथा कलाकारों की भी उनसे अच्छी मित्रता रही। उन्होंने बताया कि- “जब मैं बम्बई में था और वहाँ फिल्मीस्तान में रणजीत स्टूडियो खोला तथा वहीदा रहमान और फिल्म जगत के अन्य लोगों से मेरी अच्छी दोस्ती रही है।”^{१८}

० असाधारण व्यक्तित्व

अवस्थी जी का व्यक्तित्व असाधारण है। उनके असाधारण व्यक्तित्व के बारे में भगवान् स्वरूप चैतन्य जी प्रशंसा भरे शब्दों में लिखते हैं- “जहाँ तक मेरी दृष्टि, रही है राजेन्द्र अवस्थी हर पल चिंतन में डूबे हुए थे। हर क्षण साहित्य में रमे हुए थे। जिन्दगी के सवालों से कटे हुए किसी अहंवादी व्यक्तित्व का नाम नहीं वरन् दोस्तों के बीच, दोस्तों से दोस्ती की बातें करते हुए, बातचीत का पुरा मजा लेते

हुए आत्मीयता के इन क्षणों के बीच, अपने जीवन के रचनात्मक क्षणों को जीते हुए या फिर उनकी तलाश करते हुए, एक ऐसे ही असाधारण व्यक्तित्व का नाम है, जो अपने भीतर मौजूद सृजन चेतना और विचार-ऊर्जा के प्रवाह को अपने 'रचनाक्षण' को पूरी जिम्मेदारी के साथ बचा लेता है।^{१९}

० ईमानदार व्यक्तित्व

अवस्थी जी का जन्म एक धार्मिक परिवार में हुआ है तथा उनका पुरा बचपन गाँवों और कस्बों में आदिवासियों के साथ व्यतीत हुआ है। अतः इन वातावरणों का प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ना स्वाभाविक ही हैं। आदिवासियों और गाँवों के लोगों का भोलापन, उनकी आत्मीयता, सहजता, निस्वार्थभाव आदि का प्रभाव अवस्थी जी पर रहा है। अवस्थी जी के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी है कि उनके पास वे ही व्यक्ति आ सकते हैं, जो ईमानदारी से पेश आयें अथवा सादगी के पक्षपाती हो। उनके व्यक्तित्व की इसी विशेषता के कारण अनेक व्यक्तित्व उनके प्रतिद्वंद्वी बन जाते हैं। फिर भी अवस्थी जी घबराते नहीं। वे इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि विजय हमेशा सत्य की होती है। इस प्रवृत्ति के संबंध में उनके ये विचार बहुत ही उचित जान पड़ते हैं- “इस झूठ और फरेब की दुनिया में जहाँ कहीं भी सत्य मिलता है, मैं शेर हो जाता हूँ। इसलिए मेरी मित्रता भी झूठे आदमियों से नहीं हो पाती, सच्चे आदमी मेरे आत्मीय बन जाते हैं परन्तु मनुष्यता की इस खोज में मुझे हर ओर से प्रतिद्वंद्विता मिली है, हर एक व्यक्तित्व विवादास्पद बन गया है और हर ‘झूठ’ मेरे संदर्भ में दोस्तों द्वारा ‘सच’ सिद्ध किया जाता है। मैं इससे भयभीत नहीं हूँ। सच्चाई और ईमानदारी के सामने भय टिकता नहीं है, परन्तु संवेदनाओं के तन्तु तनाव तो पैदा कर ही जाते हैं। “बालमन पर जो प्रभाव पड़ा

है उसके कारण अवस्थी जी आज भी महानगरीय जीवन से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पा रहे हैं। इसका कारण ग्रामीण और महानगरीय समाज के मूल्यों का अंतर है। अवस्थी जी इस स्थिति को स्वयं स्वीकार करते हैं- “मेरे बालमन पर पड़ी उनकी छाप आज भी गहरी है, लेकिन उसके बाद महानगरों और फिर समूची दुनिया का वातायन मेरे सामने उजागर हुआ। परिणाम यह हुआ कि अब बरसों से एक झूठे आवरण में, आरम्भिक जिन्दगी में मिले मूल्यों के विपरीत मुझे जीना पड़ रहा है। “यथार्थवाद और इन्सानियत का पक्षधर होने के कारण अवस्थी जी का हृदय छल, कपट और बेईमानी को सहन करने में असमर्थ है। उन्होंने अपने इस असंतोष को साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखा है। वे चाहते हैं कि दुनिया में सब कुछ इस तरह बदल जाये जिससे मनुष्य की मनुष्यता बनी रहे। अवस्थी जी इन्हीं विचारों को ‘मछली बाजार’ की भूमिका में स्पष्ट करते हैं- “यह उपन्यास एक ऐसे वैज्ञानिक के सामने प्रस्तुत है जो ध्यान देगा कि नया समाज कैसा बने और मनुष्य से उसकी मनुष्यता न छिन जाए। सबको जीने का अधिकार है, लेकिन ताबूत में ढँके रहकर जीना मुझे व्यर्थ-सा लगते लगा है। उससे तो वे मजारें मुझे ज्यादा आकर्षित करती हैं, जो ताबूत से मुक्त होकर एक वीरानगी में भी आदमी की श्रद्धा का केन्द्र बन गई है।”^{२०} महानगरीय जीवन से तादात्म्य स्थापित न होने का महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि वे इस प्रकार की जिन्दगी जीने के आदी नहीं हैं। “मैं बहुत सहज और सीधी जिन्दगी जीने का आदी हूँ। मैं नहीं चाहता कि जिन्दगी आडम्ब्रों से भरी हो, जिसे जीने के लिए छल-छद्म अपनाना पड़े।”^{२१}

० विद्रोही व्यक्तित्व

राजेन्द्र अवस्थी के व्यक्तित्व में विद्रोह स्वर मुखरित होता है। उन्हें बँधी-

बँधी सी जिन्दगी या परम्पराओं से सख्त धृणा है इसलिए विद्रोह के स्वर हमें उनके समूचे साहित्य में दिखाई पड़ते हैं। 'समझौता' शब्द उनके जीवन-कोश से बाहर है। सुरेश यादव उनके विद्रोही साहित्य और व्यक्तित्व को लेकर कहते हैं- 'राजेन्द्र अवस्थी का साहित्य आने वाली दुनिया की पहचान का साहित्य नहीं होगा बल्कि शायद उसका एक अंग भी। उसी साहित्य का एक टुकड़ा आज भी जनवादी चेतना के साथ जुड़कर टूटे और पराजित लोगों के बीच खड़ा हुआ उन्हें विद्रोह के लिए मजबूर करता है। इसलिए मैं राजेन्द्र अवस्थी को एक विद्रोहोन्मुखी लेखक मानता हूँ।'^{२२}

सुरेश यादव का उपर्युक्त कथन हमें बिल्कुल सही प्रतीत होता है क्योंकि अवस्थी के समूचे साहित्य में भी कई स्थलों पर उनका विद्रोही स्वर मुखर हुआ है। उनके साहित्य में कहीं परंपराओं का विरोध है, कहीं मानव के शोषण का, कहीं सदियों से चली आ रही विवाह संस्था का, कहीं शासन की दुहरी नीति का तो कहीं भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी का। उनके विद्रोहोन्मुखी स्वर को उन्हीं के कथन से प्रमाणित किया जा सकता है- "आदमी जितना श्रम करता है, उसका हासिल उसे मिलना ही चाहिए। यदि श्रम का प्रतिफल उसे नहीं मिलता, उसका निरंतर शोषण ही हो रहा हो और आप अपना जीवन, यह जन्म विवश अवस्था में जीने के लिए बाध्य हो चाहे वह शोषण की राजनीति हो, समाज की व्यवस्था हो, घर की व्यवस्था हो, पुराने अंधविश्वासों की हो, मैं तो कहता हूँ कि इन सबसे विद्रोह किया जाना चाहिए।"^{२३} उनका यह भी मत है कि दूसरों की हिफाजत के लिए कुत्ता बनकर रह जाने से मरना अच्छा है क्योंकि वे आदमी के प्रभुत्व को अंगीकार करने की बात मानते हैं।

अवस्थी जी की दृष्टि बड़ी पैनी है। वह देश के कोने-कोने में ही नहीं अपितु

विदेशों में भी झाँकती है। वहाँ के समाज, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक भावना और आर्थिक व्यवस्था का सूक्ष्मता से विश्लेषण करती है। विदेशी स्थितियों का विश्लेषण करते समय उनकी प्रखर बुद्धि शीघ्रता से इस तथ्य को जान जाती है कि कौन हमारे राष्ट्र का भला चाहता है और कौन बुरा। राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार और राजनेताओं के चारित्रिक पतन को वे अपने साहित्य के माध्यम से हमारे सम्मुख रखते हैं।

० परिश्रमशील व्यक्तित्व

अवस्थी जी बड़े परिश्रमी व्यक्ति है। वे काम की अधिकता से घबराते नहीं बल्कि ऐसा करने से उन्हें सुख मिलता है। इसलिए वे सुबह से लेकर शाम तक कार्य में ही जुटे ही रहते हैं। उनके अत्यधिक व्यस्त रहने का कारण यह है कि वे एक प्रख्यात पत्रिका 'कादम्बिनी' के मुख्य संपादक, पत्रकार, अध्यापक और साहित्यकार हैं। सैलानी और अनेक संस्थाओं से संबंधित होने के कारण उन्हें कई जिम्मेदारियों को निभाना पड़ता है। इसी कारण से अवस्थी जी के पास समय का अत्यधिक अभाव रहता है।

अधिक व्यस्तता के बावजूद भी अवस्था जी शाम को इतना समय अवश्य निकाल लेते हैं कि वे अपने लिये जी सके। वे अपनी शाम किसी को नहीं देते। सुरेश नीरव इस सन्दर्भ में लिखते हैं- “अवस्थी जी से दुनिया की हर चीज माँगी जा सकती है। लेकिन उनकी शाम माँगना बड़ा कठिन है। शामों का इतिहास मैंने कई चेहरों से कई तरह से सुना है और कई बार सोच में पड़ा हूँ कि एक जिम्मेदार और व्यस्त व्यक्ति के लिए क्या अर्थ हो सकते हैं, तब मेरे सामने प्रसाद, सार्त्र और कप्का की जिन्दगी उभरी है और इन सबके बीच से एक ही स्वर मेरी पकड़ में आया

है कि हर बुद्धिजीवी किसी एक स्थिति में पहुँचकर कमजोर हो जाता है और उसकी कमजोरी है मांसल पसीने की सुगंध या दुर्गन्ध । जहाँ बुद्धि को ताक में रखकर यदि जिया न जाए तो शायद वह इतना अदना आदमी बन जाएगा कि जिन्दगी के विस्तृत आयामों को कई दिशाओं में बाँटकर टुकड़े-टुकड़े धूप की तरह वह कभी प्रस्तुत न कर सकेगा ।”^{२४}

अवस्थी जी अपनी उंगलियों में तीन-चार अँगुठीयाँ पहनते हैं । ‘कादम्बिनी’ का प्रकाशन करने लगे तब से वे भविष्यवालों की ओर आकर्षित हुए थे । लेकिन राजीव गांधी के बारे में जो भविष्यवाणी की गयी थी वह गलत निकलते ही वे भविष्यवालों का विरोध करने लगे । अँगुठियाँ पहनने के बारे में अवस्थी जी कहते हैं भविष्यकार ही मुझे अँगुठियाँ पहनने के लिए कहते हैं । तब यह बात मेरे दोस्तों को पता चलती है तो वे दोस्त या स्वयं भविष्यकार मुझे अँगुठियाँ दे देते हैं । इसमें न सोना मेरा होता है न पत्थर ।”^{२५} लेकिन अवस्थी जी अंधविश्वासी नहीं हैं । पर भविष्यवालों की बात पर विश्वास करते हैं । वे स्वयं कहते हैं- ‘प्रो. सुंदरम वाकई बहुत अच्छे ज्योतिषी है । उन्होंने श्रीमती इन्दिरा गांधी के बारे में जो भविष्यवाणी की थी वह सत्य हुई । वे मेरे बहुत गहरे दोस्त हैं । वे ही मेरे लिए श्रीलंका से नीलम लाए हैं । प्रो. सुंदरम जी का कहना है कि शनि की दशा में यह नीलम बहुत उपयोगी है ।”

० अवस्थी जी पर प्रभाव

विदेश यात्रा के कारण अवस्थी जी पर विदेशी संस्कृति का ज्यादा प्रभाव रहा है । इसकी प्रतीति हमें उनकी रचनाओं में मिलती है । वैसे तो अवस्थी जी कहते हैं मुझ पर किसी का प्रभाव नहीं है । “जिसमें जो अच्छाई मिली वो ही ले ली

और उनका ही प्रभाव पडा ।” अवस्थी जी पर विदेशियों के मुक्त जीवन का प्रभाव पडा है । वे कहते हैं हमारे यहाँ स्त्री स्वयं कमाती नहीं । वह पति पर निर्भर होने के कारण परिवार, विवाह जैसी संस्था में बँधी हुई है लेकिन विदेशों में ऐसा कुछ भी नहीं है । विदेशों में १८ साल के बाद फादर और मदर उनके लिए फ्रेड बन जाते हैं ।” स्पष्ट है अवस्थी जी भी विदेशियों जैसा मुक्त जीवन चाहते हैं । साथ ही उन्होंने अपना बहुत-सा समय आदिवासियों में बिताया है । वे उनकी ‘घोटुल’ जैसी संस्था में रहे हैं । उनका भी प्रभाव उन पर पडा है, फिर भी वे सामाजिक रूढ़ियों में बँधे हुए हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अवस्थी जी व्यक्ति स्वतंत्रता के पक्षपाती, सैलानी प्रवृत्ति के यथार्थ समर्थक, पैनी दृष्टिवाले, प्रखर बुद्धियुक्त, निर्भीक और निश्चयात्मक प्रकृति के व्यक्ति हैं । उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें छिपाव या दुराव की भावना नहीं है । उनके पास कोई सामान्य व्यक्ति भी जाता है तो उससे हँसकर बातें करते हैं । उनकी दृष्टि में भेदभाव ऊँच-नीच आदि मूल्यों का कोई स्थान नहीं है । वे समानता को मानने वाले हैं ।

० राजेन्द्र अवस्थी का कृतित्व

हम राजेन्द्र अवस्थी के लेखानारम्भ के सम्बन्ध में देख चुके हैं कि उनकी साहित्य साधना जीवन के आरम्भिक काल में ही शुरू हुई और हिन्दी साहित्य जगत में उनका आगमन सन् १९५६ में ‘सुमित्रा’ पत्रिका में प्रकाशित ‘उलझन’ कहानी से हुआ, तब से वे साहित्य साधना में लगन के साथ जुड़े हुए हैं । कहानी लिखते-लिखते उनकी रुचि उपन्यासों की ओर भी बढ़ गई । उन्होंने अपना उपन्यास लेखन ‘सूरज किरण की छाँव’ नामक आँचलिक उपन्यास से शुरू किया । अवस्थी जी ने

सिर्फ उपन्यास और कहानियाँ ही नहीं लिखीं बल्कि यात्रा वृत्तांत, नाटक, वैचिरक साहित्य आदी भी लिखा। उन्होंने संपादन तथा अनुवाद कार्य भी किया।

• उपन्यास साहित्य

अवस्थी जी का हिन्दी साहित्य जगत में आगमन कहानी द्वारा हुआ। उपन्यास लेखन में अवस्थी जी 'धर्मयुग' के लिए 'जलता सूरज' नामक कहानी लिख रहे थे। लिखते-लिखते यह कहानी १३-१४ पृष्ठों की हो गई। तब उन्होंने सोचा कि इस कहानी पर तो उपन्यास लिखा जा सकता है। इस प्रकार 'जलता सूरज' कहानी को उन्होंने 'सूरज किरण की छाँव' उपन्यास में परिवर्तित कर दिया।

अवस्थी जी के अब तक प्रकाशित उपन्यास इस प्रकार हैं-

सूरज किरण की छाँव (१९५८), जंगल के फूल (१९६०), उतरते ज्वार की सीपियाँ (१९६८), जाने कितनी आँखें (१९७०), बहता हुआ पानी (१९७१), अकेली आवाज (१९७६), बीमार शहर (१९७६) ('पाप के परे' का परिवर्तित रूप), मछली बाजार (१९८१) भंगी दरवाजा (१९९२)।

• कहानी साहित्य

अवस्थी जी के कहानी लेखन के पीछे एक छोटी सी घटना प्रेरक सिद्ध हुयी है। इस सम्बन्ध में वे स्वयं कहते हैं- "एक दिन जबलपुर में ही काली का भेष धारण करके आटा माँगने एक लडकी आयी। अपनी रुढ़ि विरोध वृत्ति के कारण मैंने उसे भगाना चाहा। इस पर उसने गालियाँ दी और शाप दिया। माँ ने मुझे डाँटा और आटा देने आयी लेकिन मैंने माँ को आटा देने से मना कर दिया। अपनी स्वाभाविक वृत्ति के अनुरूप ही मैंने यह किया था, किन्तु घटना क्रम ने कुछ और ही मोड़ लिया। यह मात्र एक संयोग ही था कि उसी शाम में बुखार से पीड़ित हो गया। इसी घटना

से उन्होंने कहानी लिखना शुरू किया ।

अवस्थी ने सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक, सांस्कृतिक तथा समस्यात्मक कहानियाँ लिखी हैं । अवस्थी जी की कहानियाँ निम्नलिखित संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं-

• लमसेना (१९७६)

इस संग्रह में सत्रह कहानियाँ संग्रहित हैं । संग्रह की सभी कहानियाँ आदिवासी जीवन पर आधारित हैं । इसमें संग्रहित कहानियाँ इस प्रकार हैं- 'विभाजन', 'लमसेना', 'लाल झण्डा', 'कमर में बंद कर गाँठ', 'भाई बहन का ब्याह', 'ऊसर खेत', 'एक प्यास पहेली', 'सिरदार', 'डूबते हुए क्षण', 'महुआ आम के जंगल', 'जलता सूरज', 'तीर का तिनका', 'हिरौदा', 'त्राहिमाम', 'जडबंधन', 'इस पार उस पार' और 'कगार का पानी'।

• एक फिसली हुयी माछली (१९७८)

प्रस्तुत संग्रह में पंद्रह कहानियाँ हैं- 'भूचाल', 'वह एक अकेला', 'मुँहासे', 'मसहरी', 'दो जोड़ी आँखें', 'फिसली हुयी मछली', 'तलाश', 'एक सिपाही की मौत', 'संघर्ष की एक रात', 'पानी के पर्दे', 'तीन सौ ताजमहल', 'अमर बेल', 'खुली खिडकी', 'दो चोटी रिबन' और 'एक असफल रोमांस' ।

• मेरी प्रिय कहानियाँ (१९८२)

इसमें संग्रहित बार कहानियाँ इस प्रकार हैं- 'अपना शहर', 'जनसेवा', 'प्रतीक्षा', 'पीढियाँ', 'वह एक अकेला', 'भूचाल', 'अपनी मुक्ति', 'मुँहासे', 'एक प्यास पहेली', 'लमसेना', 'डगरपोल' और 'दरोगा' ।

◦ दो जोड़ी आँखें (१९८३)

प्रस्तुत संग्रह में नौ कहानियाँ हैं, सभी कहानियाँ नगरीय जीवन से सम्बन्धित हैं- 'जनसेवा', 'भूचाल', 'शीशे के पर्दे', 'तनहाई', 'पानी के पर्दे', 'दो जोड़ी आँखें', 'एक फिसली हुयी मछली', 'दरोगा' और 'लावारिश लाशे' ।

◦ एक रजनीगंधा चोरी (१९८३)

इसमें संग्रहित चौदह कहानियाँ इस प्रकार हैं- 'एक रजनी गंधा चोरी', 'बंगला नम्बर दस', 'अपना शहर', 'पीढियाँ', 'वह एक अकेला', 'अपनी मुक्ति', 'चढते ज्वार की मछलियाँ', 'तीन सौ ताजमहल', 'कोई टूटने न पाये', 'दो जोड़ी आँखें', 'एक फिसली हुयी मछली', 'पानी के पर्दे', 'शीशे के पर्दे' और 'तनहाई' ।

◦ प्रतीक्षा (१९८५)

इस संग्रह में ग्यारह कहानियाँ संग्रहित हैं- 'प्रतीक्षा', 'जनसेवा', 'अपना शहर', 'पीढियाँ', 'अपनी मुक्ति', 'लावारिश लाशे', 'तनहाई', 'दो अबोल किनारे', 'एक तिनका', 'एक सिहरन', 'हमदर्द और 'लरजती हवा' ।

◦ ग्यारह राजनैतिक कहानियाँ (१९८६)

नाम से ही स्पष्ट है कि इस संग्रह में ग्यारह राजनैतिक कहानियाँ संग्रहित हैं- 'बंगला नम्बर दस', 'जनसेवा', 'प्रतीक्षा', 'एक सिपाही की मौत', 'संघर्ष की एक रात', 'लाल झण्डा', 'मुँहासे', 'दरोगा', 'तलाश', 'भूचाल' और 'लावारिश लाशे' ।

◦ महुआ आम के जंगल (१९८७)

इस संग्रह में कुल सोलह कहानियाँ संकलित हैं । ये सभी कहानियाँ आदिवासी जीवन पर आधारित हैं । कहानियाँ इस प्रकार हैं- 'लमसेना', 'भाई बहन का ब्याह', 'ऊसर खेत', 'चाँद के पीछे चाँदनी के नीचे', 'हिरौदा', 'सिरदार', 'विभाजन',

‘बेबात की बात’, ‘जड़ बंधन’, ‘महुआ आम के जंगल’, ‘जलता सूरज’, ‘माया माटी और मानव’, ‘कमर में बंद एक गाँठ’, ‘एक प्यास पहेली’, ‘तीर का तिनका’ और ‘लाल झण्डा’ ।

कहानी और उपन्यास के अलावा राजेन्द्र अवस्थी जी ने एक नाटक भी लिखा है- ‘बूची टेरेस’ (प्रकाशन सन् १९७९) यह नाटक उनके ‘बीमार शहर’ नामक उपन्यास का नाट्य रूपांतर है । प्रस्तुत नाटक में ‘बूची टेरेस’ में रहनेवाले सभी अविवाहित पात्रों के जीवन को व्यक्त करते हुए विवाहित जीवन की घुटन और दर्द को अभिव्यक्त किया गया है ।

◦ यात्रा वृत्तांत

दोस्तों की दुनिया (१९८०), सैलानी की डायरी (१९८४) और हवा में तैरते हुए (१९८६) ।

◦ वैचारिक साहित्य

शहर से दूर (१९७७) और काल चिन्तन (१९८२)

◦ संपादन कार्य

बाईस प्रेम कहानियाँ (१९८६), सत्रह आंचलिक कहानियाँ (१९८६) और श्रेष्ठ भारतीय कहानियाँ (१९८७) ।

◦ अनुदित साहित्य

जीवन के पृष्ठ (१९८४) और युग-पुरुष नेहरू (१९८४)

उपर्युक्त साहित्य लेखन को देखते हुए हम कह सकते हैं कि उनकी लेखनी अबाध गति से चलती ही रही । अवस्थी ने हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं को समृद्ध किया है । अवस्थी जी ने कहानी संग्रहों का संपादन भी किया है । अनेक

हिन्दी कृतियों का अनुवाद करके उन्होंने भिन्न भाषा के साहित्य को हिन्दी में लाने का काम किया है। अवस्थी जी ने विदेशों की यात्राओं के वृत्तांत भी बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किये हैं।

इस प्रकार राजेन्द्र अवस्थी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व कई आयामों में विकसित हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

१. राजेन्द्र अवस्थी से डॉ. भाउसाहब मा. परदेशी का साक्षात्कार दिनांक २ जून, १९९२, नवभारत टाइम्स कार्यालय, दिल्ली ।
२. डॉ. सविता सौरभ, राजेन्द्र अवस्थी का कथा संसार- पृ.११४
३. सुरेश नीरव, राजेन्द्र अवस्थी: इक्कीसवीं सदी की द्रष्टि- पृ.१२३
४. राजेन्द्र अवस्थी द्वारा प्राप्त पत्र, दिनांक २८ अगस्त, १९९४
५. राजेन्द्र अवस्थी से साक्षात्कार, दिनांक २ जून, १९९२ नवभारत टाइम्स कार्यालय, दिल्ली ।
६. सुरेश नीरव, राजेन्द्र अवस्थी: इक्कीसवीं सदी की द्रष्टि- पृ.१२
७. अवस्थी से साक्षात्कार, दिनांक २७ मई, १९९२ नवभारत टाइम्स कार्यालय, दिल्ली।
८. डॉ. सविता सौरभ, राजेन्द्र अवस्थी का कथा संसार- पृ.६
९. अवस्थी से साक्षात्कार, दिनांक २७ मई, १९९२ नवभारत टाइम्स कार्यालय, दिल्ली।
१०. राजेन्द्र अवस्थी: मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका- पृ.११५
११. डॉ. सविता सौरभ, राजेन्द्र अवस्थी का कथा संसार- पृ.२२
१२. दुर्गाप्रसाद शुक्ल से साक्षात्कार (अवस्थी जी के गहरे दोस्त) दिनांक १ जून, १९९२ नवभारत टाइम्स कार्यालय, दिल्ली ।
१३. सुरेश नीरव, राजेन्द्र अवस्थी: इक्कीसवीं सदी की द्रष्टि- पृ.१७,२७
१४. राजेन्द्र अवस्थी से साक्षात्कार, दिनांक २ जून, १९९२ नवभारत टाइम्स कार्यालय, दिल्ली ।

१५. राजेन्द्र अवस्थी: मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका- पृ.१५
१६. डॉ. सविता सौरभ द्वारा अवस्थी जी के साक्षात्कार के आधार पर राजेन्द्र अवस्थी का कथाकार- पृ.२१,२२
१७. सुरेश नीरव, राजेन्द्र अवस्थी: इक्कीसवीं सदी की दृष्टि- पृ.११२
१८. अवस्थी से साक्षात्कार, दिनांक २ जुन, १९९२ नवभारत टाईम्स कार्यालय, दिल्ली।
१९. सुरेश नीरव, राजेन्द्र अवस्थी: इक्कीसवीं सदी की दृष्टि- पृ.१०३,१०४
२०. राजेन्द्र अवस्थी: मछली बाजार, भूमिका- पृ.४,५
२१. डॉ. सविता सौरभ, राजेन्द्र अवस्थी का कथा संसार- पृ.२८
२२. संपादक सुरेश नीरव, राजेन्द्र अवस्थी इक्कीसवीं सदी की दृष्टि में संग्रहित सुरेश यादव का लेख- पृष्ठ १८
२३. डॉ. सविता सौरभ द्वारा अवस्थी जी इक्कीसवीं सदी का दृष्टि में संग्रहित सुरेश यादव का लेख, पृ.३५
२४. सुरेश नीरव, राजेन्द्र अवस्थी: इक्कीसवीं सदी की दृष्टि- पृ.१७
२५. अवस्थी से साक्षात्कार, दिनांक २ जुन, १९९२ नवभारत टाईम्स कार्यालय, दिल्ली।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास एक परिदृश्य

आधुनिक युग में गद्य की विविध विद्याओं का विकास हुआ है। इन सभी गद्य-विद्याओं में उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय, आकर्षक एवं प्राणवान विधा मानी जाती है। आज उपन्यास साहित्य की जितनी अधिक उन्नति संसार की भाषाओं में हो रही है, उतनी अन्य किसी साहित्यांग की नहीं। इसकी लोकप्रियता ने संसार के सभी उच्च कोटि के साहित्यकारों, विचारकों का ध्यान आकृष्ट किया है। उपन्यास का सीधा संबंध जीवन से माना जाता है और विशाल, जटिल एवं व्यापक जीवन को परिभाषाबद्ध करना जितना कठिन है, उतना ही उपन्यासों की भी परिभाषा करना कठिन है। उपन्यास का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। व्यापक अर्थ में हम कह सकते हैं कि 'यह गद्य-साहित्य का अन्यतम रूप है, जिसका आधार कथा है... चाहे वह सीधे मनुष्यों की हो या मनुष्येतर जीव और निर्जीव प्रकृति का। वह सच्ची हो या कल्पित, उसे उपस्थित करने में कल्पना का प्रयोग आवश्यक है। कुतुहल की सृष्टि तथा मानवीय मनोवेगों के उद्दीपन द्वारा रोचकता और किसी नीति या सिद्धान्त सम्बन्धी विचारों की उत्तेजना द्वारा उसमें गरिमा का समावेश वाँछनीय है।'^१

ऐसा माना जाता है कि जो चीज जितनी ही सरल दिखती है, उसकी परिभाषा उतनी ही मुश्किल होती है। उपन्यास के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है। जितने विद्वान हैं उतनी परिभाषाएँ हैं, लेकिन अभी तक उपन्यास को पूर्णतः स्पष्ट करने वाली परिभाषा नहीं बन सकी है। फिर भी इस क्षेत्र में विद्वानों का कार्य सराहनीय माना जा सकता है।

० उपन्यास की परिभाषा :

‘उपन्यास’ की व्युत्पत्ति-मूलक परिभाषा इस प्रकार है- उप+न्यास अर्थात् ‘उप’ का अर्थ ‘समीप’ और ‘न्यास’ का अर्थ है ‘रखना’ । अर्थात् उपन्यास में अत्यन्त ही निकट से मानव जीवन का अंतः एवं बाह्य स्वरूप अभिव्यक्त होता है । “इस विशेष साहित्यांग के द्वारा ग्रन्थाकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है ।”^२

संस्कृत में ‘उपन्यास’ शब्द ‘उप’ और ‘नि’ उपसर्ग के साथ ‘अस्’ धातु से ‘प्रत्यय’ लगकर बना है । संस्कृत में ‘उपन्यास’ शब्द का अर्थ हैं फेंकना या सम्मुख रखना। अतः इस व्युत्पत्ति की दृष्टि से ‘उपन्यास’ शब्द का अर्थ केवल सम्मुख प्रस्तुत करना या होना ही है । इसके अतिरिक्त संस्कृत के नाट्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में ‘उपन्यास’ रूपक की प्रतिमुख संधि के उपभेद की संज्ञा है । इस प्रसंग में उसका अर्थ ‘उपन्यासः प्रसादनम्’ अर्थात् प्रसादन (प्रसन्न करने)को उपन्यास कहते हैं । इसकी दूसरी व्याख्या भी है, ‘उपपत्ति कृतो हार्थ उपन्यासः प्रकीर्तितः’- अर्थात् ‘किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप में उपस्थित करना उपन्यास कहलाता है ।”^३

सामान्यतः उपन्यास के आशय ‘आख्यायिका’, ‘कथा’, ‘गल्प’, ‘उपकथा’ आदि साहित्यांग है जो मनोरंजन के लिए लिखे जाते हैं । ‘उपकथा’ अर्थात् सुनने और पढ़नेवाले का दिल खुश करने के लिए बनाकर लिखा हुआ किस्सा ।”^४

संभवतः संस्कृत में उपन्यास शब्द के उपक्रम भूमिका बाँधना, विचार उपस्थित करना आदि अर्थ में होने के कारण बँगला भाषा में भी यह ‘कथा’ या ‘आख्यायिका’ के नाम से जाना जाता है ।

आज समस्त उत्तर भारत में एवं पश्चिमोत्तर प्रदेश में अंग्रेजी के शब्द ‘नोवेल’

को उपन्यास कहते हैं। मराठी में यह शब्द 'कादम्बरी', 'कन्नड' भाषा में 'कादम्बरी' तमिल में 'नोवेल' अर्थ में प्रचलित है।

लेकिन आधुनिक युग में उपन्यास के लिए अंग्रेजी के 'नोवेल' शब्द का प्रयोग किया जाता है। नोवेल अर्थात् नोवेल'^१ यानि 'नया और ताजा साहित्यांग' को उपन्यास कहा जाता है।''^५ अर्थात् जीवन की कथा उपन्यास है।

आधुनिक उपन्यास के सम्बन्ध में डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय का अभिमत है-
 "आधुनिक उपन्यास जहाँ एक ओर पुरानी कथाओं का आख्यायिकाओं से भिन्न है वहाँ दूसरी ओर वह केवल अपने शब्दार्थ 'उप'- पास और 'न्यास'- रखना, द्वारा यह भी सूचित करता है कि लेखक पाठक के निकट कुछ रखना चाहता है। पाठक के निकट कोई नवीन बात या मत प्रकट करना चाहता है। उसकी यह विशिष्टता आधुनिक युग की देन है। उपन्यास मध्ययुगीन धर्माधिकारी और नैतिक उपदेश देने वाले गुरु का आधुनिक उत्तराधिकारी है।''^६ इस आधार पर उपन्यास का अर्थ हुआ वह रचना जिसमें जीवन के अनेक पहलूओं का- प्रेक्षेपण निकट या समीप से किया गया हो।

इस तरह संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपन्यास का शाब्दिक अर्थ- 'समीप' या 'सम्मुख रखना' है।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्रजी ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है- 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना एवं उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।''^७

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास मानव-जीवन या उसके चरित्र का विश्वसनीय चित्र होता है। मनुष्य का जीवन ही उपन्यास का कार्यक्षेत्र होता है। जीवन

में होनेवाले कार्यकारण संबंधों को उपन्यासकार व्यक्त करता है । इसमें वह काल्पनिक घटनाओं की सहायता लेता है । बाबु गुलाबराय के शब्दों में- “उपन्यास कार्यकारण श्रृंखला से बँधा हुआ वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक- काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रक्षात्मक उद्घाटन किया जाता है ।”^८

डॉ. श्यामसुन्दर दास जी ने गद्यात्मकता की दृष्टि से उपन्यास की परिभाषा करते हुए लिखा है- “उपन्यास की कोटि में साधारणतः कल्पना- प्रसूत वह सम्पूर्ण कथा साहित्य आ जाता है जो गद्य की रीति से व्यक्त किया गया हो । उपन्यास वस्तुतः मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है ।”^९ इन्होंने उपन्यास को जीवनी और कविता की मध्य स्थिति माना है । उनका कहना है कि- “उपन्यास एक ओर जीवनी से और दूसरी ओर कविता से सम्बन्ध है । इन्हें उपन्यास के दो छोर कह सकते हैं ।”^{१०}

डॉ. त्रिभुवनसिंह ने भी उपन्यास की परिभाषा देने का प्रयास किया है, लेकिन इनकी परिभाषा बाबु गुलाबराय एवं डॉ. श्याम सुन्दरदासजी की परिभाषाओं का मिला-जुला रूप ही कहा जा सकता है । डॉ. त्रिभुवनसिंह के अनुसार, “श्रृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल और गूढ़ मानव चरित्र-निर्माण, उनकी समस्याओं, सक्रीय गतिविधियों तथा सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उनके स्वभावों एवं मन की महती शक्तियों का पूर्ण जीवन्त एवं यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा जिस साहित्य रूप द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, उसे उपन्यास कहते हैं ।”^{११}

डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने उपन्यास को मानव जीवन से सम्बन्धित बताते हुए

लिखा है कि “उपन्यास मूलतः मनुष्य के जीवन में साहित्यकार की बढ़ती हुई दिलचस्पी है।”^{१२}

भारतीय विद्वानों की भाँति यूरोपिय विद्वानों ने भी उपन्यास की परिभाषा अपने-अपने ढंग से दिया है ।

“यूरोपीय विद्वान राल्फ फाक्स ने कहा है कि उपन्यास केवल गद्य में लिखी हुई कथा ही नहीं है । उन्होंने उसे मानव-जीवन का गद्य माना है । फाक्स के विचार से उपन्यास कला का प्रथम गद्य रूप है जो मानव को समग्रता से अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है । वे कहते हैं कि उपन्यास गद्य की एक विशिष्ट यथार्थ दृष्टि को प्रस्तुत करता है, जो उसी की पहुँच में है, जो काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला अथवा संगीत द्वारा सम्भव नहीं । फाक्स ने अपनी पुस्तक ‘डेवलपमेन्ट ऑफ इंग्लिश नोवेल’ में लिखा है कि सामान्य रूप से उपन्यास उस गद्य आख्यान को कहा जाता है जो यथार्थ जीवन का यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करे । क्लारा डीव ने उपन्यास को यथार्थ जीवन का तथा उस काल का चित्र माना है, जिसमें वह लिखा गया है । उसके अनुसार उपन्यास की पूर्णता इस बात में है कि वह हमारी परिचित वस्तुओं और दृश्यों का चित्रण इस ढंग से करे कि वह सामान्य हो जाए और कम-से-कम उपन्यास पढ़ते समय पाठकों को यथार्थ का भ्रम होने लगे और वह उसके रंग में ही रंग जाए । लार्ड डेविड सेसिल ने उपन्यास को एक कलाकृति माना है । हेनरी जेम्स के विचार से, एक उपन्यास अपनी व्यापक परिभाषा के अनुसार ‘एक व्यक्तिगत और सीधी जीवन की छाप है, जो उसके मूल्य का निर्माण करती है तथा उसका महत्व निर्धारित करती है । यह महत्व कम या ज्यादा होगा उस छाप की मात्रा और गुण के अनुसार । किन्तु जब तक उपन्यासकार को अनुभव करने और कहने की स्वतंत्रता

न होगी तब तक ऐसी छाप या प्रभाव उत्पन्न न कर सकेगा । ‘ए ट्रीटाइज ऑन द नॉवेल’ के लेखक राबर्ट लिडेन ने उपन्यास को एक नया साहित्यांग माना है । अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसकी भिन्न-भिन्न प्रअकार की परिभाषाएँ की हैं।”^{१३}

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार “वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके विभिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं; उपन्यास उनका विस्तृत प्रस्तुतिकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं ।.... लोक या किसी जन समाज के बीच काल की गति के अनुसार जो मूढ़ और चिंत्य परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी-कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यास का कार्य है ।”^{१४}

डॉ. रामशोभीत सिंह के अनुसार “उपन्यास आधुनिक युग का अति समादृत रूप है।”^{१५}

उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से यह स्पष्ट है कि वास्तव में कोई परिभाषा उपन्यास के अर्थ को सम्पूर्ण अभिव्यक्ति देने में समर्थ नहीं है । किन्हीं दो विद्वानों की रायें आपस में नहीं मिलती हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उपन्यास मानव-जीवन का समग्र रूप से चित्रण करनेवाली गद्य की विद्या है ।

• उपन्यास का महत्व

आधुनिक युग में गद्य का बहुमुखी विकास हुआ है । उपन्यास वर्तमान काल के गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्राणवान विद्या के रूप में जानी जाती है । इसका कारण उपन्यास का मानव-जीवन के यथार्थ से धनिष्ठ सम्बन्ध है । “मनुष्य के जीवन

की झाँकी और उसके चरित्र की विविध परिस्थितियों में प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का जितना सफल उद्घाटन इस साहित्यिक माध्यम द्वारा किया जा सकता है उतना अन्य साहित्यिक विधाओं द्वारा नहीं। आधुनिक युग में उपन्यास की लोकप्रियता एवं सर्वाधिक महत्व का कारण भी यही है।”^{१६}

वैज्ञानिक और आर्थिक सक्रान्ति के साथ ही सामाजिक और मानव-मूल्यों का जो हास और विघटन हुआ है, उनका यथार्थ प्रतिबिम्बन उपन्यास में ही हो सकता है। जीवन के अनेक मधुर, कटु अनुभव सम्पूर्णता के साथ उसमें उतारे जा सकते हैं। “उपन्यास मानव जीवन के विविध पक्षों को समग्र रूप से चित्रित करनेवाला एक ऐसा साहित्य रूप है, जो अपने पूर्व की कई साहित्यिक परम्पराओं को आत्मसात करते हुए भी अभिनव आकर्षण के साथ प्रकट हुआ है।”^{१७}

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मानव-जीवन में अचानक जो विषमताएँ उत्पन्न हुई उससे जीवन और दुरुह बन गया। परिणाम स्वरूप धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्य विघटित होने लगे और आज हम खूँखवार नहीं हैं। भले ही हम इसे प्रकृति पर विजय पाने, वैज्ञानिक प्रगति और आर्थिक उन्नति के कारण सम्यता का विकास कह लें। किन्तु यह निश्चित है कि हम मानवता के साथ मानव के मौलिक अधिकारों, मानव-मूल्यों यहाँ तक कि मानव की भी जड़ काटते जा रहे हैं। अतः युगीन जीवन की जटिलता और विषमता को समग्र और सर्वांग रूप में ठीक-ठीक रुपायित करने के लिए कथा-साहित्य के अतिरिक्त और कोई भी विद्या समर्थ नहीं हो रही है। अतः कहा जा सकता है कि “जिस प्रकार पद्य में महाकाव्य तथा दृश्य काव्य में नाटक जीवन के अनेक पक्षों को उजागर करता है, उसी प्रकार कथा-साहित्य में उपन्यास-जीवन का सर्वांगीण निरीक्षण करने में समर्थ है।”^{१८}

इस सम्बन्ध में डॉ. शंकर वसंत मुद्गल लिखते हैं कि “आधुनिक साहित्य में पद्य के अंतर्गत महाकाव्य और गद्य के अंतर्गत उपन्यास का स्थान सर्वोपरि है।”^{१९}

आज विश्व की लगभग सभी भाषाओं में उपन्यास का प्रचार प्रचुर मात्रा में मिलता है। उपन्यास का मुख्य उद्देश्य जीवन को सम्पूर्णता एवं व्यापकता से प्रस्तुत करना है। वास्तविक जीवन की अनेक बातों को कल्पना के रंग में रंगकर अत्यंत आकर्षक ढंग से व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार मनुष्य का विविधरंगी जीवन उपन्यास में प्रतिबिम्बित होता है। साथ ही उपन्यास में तत्कालीन युग की झाँकी के दर्शन होते हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि उपन्यास में हम जीवन पढ़ते हैं और वास्तविक जीवन में सच्चे उपन्यास के दर्शन करते हैं। उपन्यास की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए डॉ. प्रताप नारायण टंडन कहते हैं-

“प्राचीन युग में महाकाव्य को साहित्य के विविध माध्यमों में जिस प्रकार से सर्वोपरि स्थान प्राप्त था, उसी प्रकार उपन्यास का महत्व निर्देशित करते हुए उसे भी आधुनिक जीवन का महाकाव्य कहा गया। उपन्यास के अस्तित्व तथा महत्व के प्रसार का मूल कारण यही माना गया कि मनुष्य के जीवन का समग्रता के साथ प्रतिनिधित्व करने में उपन्यास सक्षम है।”^{२०}

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी भी उपन्यास की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं कि- “उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है।” क्योंकि उसमें मानव-जीवन और मानव-चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है। वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है, और उनका उद्घाटन करता है। वे उपन्यास को हिन्दी-साहित्य के लिए एक नई वस्तु मानते हुए लिखते हैं- ‘उपन्यास इस युग का बहुत ही लोकप्रिय साहित्य है।’ शायद- ही कोई पढ़ा-लिखा नौजवान इस जमाने में ऐसा

मिले जिसने दो-चार उपन्यास न पढ़े हों। यह बहुत मनोरंजक साहित्यांग माना जाने लगा है। आजकल जब किसी पुस्तक को बहुत मनोरंजक पाया जाता है तो प्रायः कह दिया जाता है कि इस पुस्तक में उपन्यास का-सा आनन्द मिल रहा है। किसी-किसी यूरोपीयन समालोचक ने उपन्यास का एकमात्र गुण उसकी मनोरंजकता को ही माना है। इस साहित्यांग (उपन्यास) ने मनोरंजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओं का ही नहीं, नाटकों का भी रंग फीका कर दिया है क्योंकि पाँच मील दौड़कर रंगशाला में जाने की अपेक्षा पाँच सौ मील दूर से किताब मँगवा लेना कहीं आसान हो गया है, जो अपना रंगमंच अपने पत्रों पर ही लिए हुए है।”^{२१}

डॉ. त्रिभुवन सिंह भी उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य मानते हुए कहते हैं, “कविता के क्षेत्र में जो स्थान महाकाव्य का है, गद्य के क्षेत्र में वही स्थान उपन्यास का है।”^{२२}

इस तरह आज भारतीय विद्वानों की दृष्टि में उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य माना गया है। शिवदान सिंह चौहान उपन्यास की महत्ता के विषय में लिखते हैं-

‘विद्वानों ने उसे (उपन्यास को) आधुनिक युग का महाकाव्य बताया है, इसलिए कि इस रूप-विधान के अंतर्गत रचनाकार को आधुनिक युग की संश्लिष्ट वास्तविकता के अनुरूप ही विषय वस्तु, कथानक, चरित्र-चित्रण और व्यक्ति पात्रों की मनोवैज्ञानिक स्थितियों और प्रतिक्रियाओं आदि की संश्लिष्ट और मूर्त योजना करके समग्र जीवन को कलात्मक रूप से प्रतिबिम्बित करने का एक ऐसा सरल साधन या माध्यम प्राप्त हुआ है, जिसके क्षेत्र और संभावनाएँ अपरिसीमित हैं।’^{२३}

वेबस्टर ने अपनी परिभाषा में उपन्यास में यथार्थ जीवन के चित्रण की ओर

संकेत करते हुए लिखा है, “उपन्यास गद्यमय आख्यान अथवा उचित आकार का वृत्त है, जिसके कथानक में यथार्थ जीवन के प्रदर्शन का प्रयत्न करनेवाले और उनके कार्यों का चित्रण होता है।”^{२४}

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि उपन्यास जीवन के विविध अनुभवों का निचोड़ है। वह मनोरंजन के साथ-साथ मानव-हृदय का संस्कार भी करता है। इसमें अतीत की प्रतिध्वनि, वर्तमान का प्रतिबिम्ब और भविष्य का संकेत होता है। इन्हीं सब कारणों से मानव जीवन का गद्यमय आख्यात या आत्म-प्रकाशन होने वाली यह विद्या अन्य सभी साहित्यिक विधाओं से अधिक ग्राह्य एवं अधिक लोकप्रिय है। इसकी लोकप्रियता के संबंध में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार “आज के जमाने में उपन्यास एक ही साथ शिष्टाचार का समुदाय, बहस का विषय, इतिहास का चित्र और पॉकेट का थियेटर है।”^{२५}

० हिन्दी-साहित्य में उपन्यास का जन्म और विकास

मनुष्य स्वभाव से ही क्रियाशील प्राणी है, उसके लिए चुपचाप बैठा रहना असंभव है। वह कुछ करने और कुछ उत्पन्न करने के लिए व्याकुल रहता है। मानव स्वभाव की एक विशेषता यह भी है कि वह अपने को प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। मानव-मन की इन्हीं प्रेरणाओं से साहित्य का निर्माण होता है। ‘मानव-मन एवं स्वभाव की उपज ही साहित्य है।’^{२६}

यह सर्व मान्य है कि गद्य आधुनिक काल की देन है और उपन्यास गद्य साहित्य की देन है। “कुछ विद्वान उपन्यास को संस्कृत-साहित्य की ‘कादम्बरी’, ‘दशकुमारचिन्तम्’, ‘हितोपदेश’ और ‘पंचतंत्र’ से उद्भूत मानते हैं।”^{२७} परन्तु इसका

कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता जिसके आधार पर आज के उपन्यास को इस परंपरा का विकसीत रूप कहा जा सके । भारतीय विद्वानों की यह परंपरा रही है कि वे साहित्य के प्रायः सभी रूपों को प्राचीनता प्रदान करने के लिए उसका सम्बन्ध वेद आदि से जोड़ने का प्रयत्न करते रहे हैं । यही कारण है कि उपन्यास को संस्कृत कथा साहित्य के आधार पर विकसित होने वाली एक विशिष्ट साहित्यिक सृष्टि माना गया है ।

उपन्यास हिन्दी-साहित्य का नवीनतम रूप माना जाता है । जिस प्रकार मानवीय भावों का विकास होता रहता है, ठीक उसी प्रकार साहित्य का भी विकास होता रहता है, इस प्रकार आवश्यकतानुसार नये साहित्य रूपों का आविर्भाव भी होता रहता है । “उपन्यास साहित्य वर्तमान परिस्थितियों की उपज है ।”^{२८}

१९ वी शती के उत्तरार्ध में भारत में अंग्रेजी शासन की नींव दृढ़ हो चुकी थी और भारतीय जनता भी इससे प्रभावित होने लगी थी । यूरोप की वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप एक नई लहर उत्पन्न हुई जिसका प्रभाव विश्व-साहित्य, दर्शन, जीवन एवं कला पर भी पड़ा । भारतीय जीवन, दर्शन, साहित्य एवं कला में भी इसके फलस्वरूप नए परिवर्तन हुए । इस परिवर्तन ने जीवन और समाज के क्षेत्र में विषम परिस्थितियों को जन्म दिया, जिनका साहित्य के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव पड़ा । मानव जीवन तथा समाज की इन जटिलताओं, विषमताओं तथा नवीन समस्याओं को चित्रित कर एवं उनका समाधान प्रस्तुत कर उन्हें आदर्श रूप में प्रस्तुत करने के लिए तथा मानव कल्याण एवं मानव हित की भावना का लोगों में संचार करने के लिए उस समय एक नवीन साहित्य रूप की आवश्यकता महसूस होने लगी और संभवतः इस अभाव की पूर्ति के रूप में ही उपन्यास का जन्म हुआ ।

‘उपन्यास’ शब्द से आज हम जो अर्थ समझते हैं, वह आधुनिक साहित्य का नवीनतम रूप है। एक लम्बी अवधि तक भारत में अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप पाश्चात्य साहित्य का जो प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर पड़ा है, हिन्दी-उपन्यास संभवतः उसी का शुभ परिणाम है।

हिन्दी ही नहीं, वरन् समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं में- उपन्यास पश्चिम की देन है। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार “आधुनिक उपन्यास साहित्य का एक नया और संश्लिष्ट रूप विधान है, जिसका विकास पहले युरोप में हुआ, भारत में नहीं।”^{२९}

उपन्यास अंग्रेजी शब्द नॉवेल का हिन्दी पर्याय माना जाता है। “कुछ विद्वान नॉवेल शब्द की उत्पत्ति भी संस्कृत-साहित्य से मानते हैं।”^{३०} ‘नॉवेल’ का अर्थ है ‘नवल’, ‘नया’। यह शब्द जिस नवीन एवं विशिष्ट साहित्य-रूप के लिए प्रयुक्त होने लगा, उसे ही उपन्यास की संज्ञा दी गई।^{३१}

हिन्दी-उपन्यास की रचना की प्रेरणा बंगला-साहित्य से प्राप्त हुई। बँगला में भी उपन्यास रचना की मूल प्रेरणा अंग्रेजी-साहित्य से प्राप्त हुई थी। इस सम्बन्ध में डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं, ‘हिन्दी में उपन्यास रचना की प्रेरणा प्रत्यक्षतः बँगला और अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी से प्राप्त हुई है।’^{३२} हिन्दी में मौलिक उपन्यास की रचना के पूर्व ही बँगला उपन्यासों के अनुवादों को लोकप्रियता मिल चुकी थी। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि बँगला भाषा की देखादेखी से ही हिन्दी लेखकों का ध्यान नये ढंग के उपन्यासों की रचना की ओर आकृष्ट हुआ।

उपन्यास को अंग्रेजी-साहित्य से उद्भूत मानते हुए सुरेन्द्र कोहली ने लिखा है कि “उपन्यास एक विदेशी विधा है और उसकी परम्परा फ्रांस और रूस में विकसित

और सम्पन्न हुई तथा अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी को मिली ।”^{३३}

इस प्रकार, संक्षेप में कहा जा सकता है कि हमारा आधुनिक उपन्यास साहित्य मानव की आधुनिक विषम परिस्थितियों की देन है । भारत में उन्नीसवीं शती में उसके उद्भव की परिस्थितियाँ अनुकूल बन गई थी । संस्कृत की कथा- आख्यायिकाओं का प्रचलन, मध्य युग में मुस्लिम सभ्यता से संपर्क के फलस्वरूप संस्कृत और फारसी के प्रेमाख्यानों, शिक्षित वर्ग का उदय, बँगला उपन्यासों एवं अंग्रेजी नॉवेल के सम्मिलित प्रभाव के फलस्वरूप प्रारम्भिक हिन्दी-उपन्यास लेखकों का कथा-रचना-संसार निर्मित हुआ था । अपने क्रमिक विकास के फलस्वरूप आज हिन्दी-उपन्यास अपना अलग-अलग अस्तित्व बना चुका है ।

उपन्यासों को उद्भव काल से ही कटु आलोचनाएँ सहनी पड़ी । ‘श्री मान्टोगोमरो बेलगन’ इसकी आलोचना करते हुए लिखते हैं कि “उपन्यासों में रचनात्मक साहित्य ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं ।”^{३४} सभ्य लोगों के लिए उपन्यास पढ़ना भद्दी रुचियों का परिचय देना था और उपन्यास लिखना सम्मान की वस्तु नहीं थी । इस तरह आरम्भ काल में उपन्यासों को हेय दृष्टि से देखा जाता रहा । उसे घटिया साहित्य घोषित करने की चेष्टा होती रही, जैसा कि किसी भी नई वस्तु, नये साहित्य के उदय में होता है । मनुष्य किसी नई विचारधारा को शीघ्रता से अपनाने की उदारता नहीं कर पाता है, जिसका कारण पुरानी विचारधारा के प्रति उसका पुराना लगाव एवं मोह है । संभवतः यही कारण रहा होगा कि साहित्य की इस नई विद्या को अपनाने में शर्म महसूस की जाती रही । लेकिन अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण उपन्यास आज सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला साहित्य है ।

वर्तमान समाज की बढ़ती हुई विभिन्न परिस्थितियों ने ही इस सशक्त साहित्य

रूप को जन्म दिया है, जिससे वह मानव जीवन की विशेषताओं तथा उसके विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति देने में समर्थ हो चुका है। आज उपन्यास साहित्य जीवन के यथार्थ के अत्यन्त निकट पहुँच गया है। मानव की आन्तरिक पीड़ाओं, कुण्ठाओं, संत्रासों, वर्जनाओं के साथ उसकी बाह्य आवश्यकताओं को समग्र रूप से चित्रित करनेवाली अन्य कोई ऐसी सशक्त विधा नहीं है।

डॉ. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में “मानव स्वभाव के विविध पक्षों का सर्वांगीण ज्ञान, विभिन्न आमोदप्रद प्रसंग, मार्मिक व्यंग्य तथा हास्य की जितनी सुन्दर व्याख्या एवं चित्रण अत्यन्त चुनी एवं सशक्त भाषा में उपन्यासों के माध्यम से सम्भव है, उतनी विश्व के किसी भी अन्य साहित्य रूप के माध्यम से संभव नहीं।”^{३५}

आधुनिक काल में कथा-साहित्य का पुनरुत्थान कुछ विद्वानों ने सर्वप्रथम इशा अल्ला खाँ की ‘रानी तेकती की कहानी’ से माना है। यद्यपि इसकी रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इसके अतिरिक्त लल्लुलाल कृत ‘सिंहासन बतीसी’, ‘बैताल पच्चीसी’, ‘शकुन्तला’, ‘प्रेम सागर’ और सदल मिश्र कृत ‘नासिकेतोपाख्यान’ इस युग की प्रमुख कृतियाँ हैं। इसके साथ ही फारसी और संस्कृत के आधार ग्रन्थों से अनुवाद प्रस्तुत किए गए। इनमें किस्सा तोता-मैना, शुक सप्तति, पंचतंत्र आदि के माध्यम से नीति कथाएँ कही गईं। किन्तु उपन्यास-कला के विकास की दृष्टि से इसे अधिक महत्व नहीं दिया जा सका। फिर भी उपन्यास-कला के रूप के विकास में यह निश्चय ही एक महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है।

इसी समय हिन्दी-साहित्य के मंच पर एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व-भारतेन्दु का उदय हुआ। उपन्यास-कला की दृष्टि से उनकी मराठी में अनुवादित कृति पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा मानी जा सकती है किन्तु यह कृति अपूर्ण रह गई है। फिर

भी इस सम्बन्ध में डॉ. प्रतापनारायण टंडन का मानना है कि 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'पूर्णप्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' नामक हिन्दी का सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास प्रकाशित किया ।''^{३६}

हिन्दी-साहित्य के दुर्भाग्य से भारतेन्दु की जीवन-लीला इतनी संक्षिप्त रही कि वे अपने साहित्यिक जीवन के उत्तरकाल में उपन्यास नाम की नवीन साहित्य विधा की ओर केवल ध्यान ही दे पाए- उसके कला-रूप का वास्तविक अर्थ में प्रवर्तन नहीं कर पाए। आज भारतेन्दु को हम हिन्दी-उपन्यास का प्रवर्तक भले ही न स्वीकार करें परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने एक विशिष्ट दिशा का निर्देश कर अपने समसामयिक साहित्यकारों को उधर बढ़ने के लिए प्रेरित किया । उनकी साधना फलवती हुई और अनेक साहित्यकार एवं लेखक उपन्यास रचना में प्रवृत्त हुए । इस प्रकार हिन्दी-उपन्यास का सूत्रपात हुआ और उसकी अनेक धाराएँ प्रवाहित हो उठीं ।

हिन्दी-उपन्यास के आरम्भिक काल में उपन्यास के क्षेत्र में चमत्कार प्रियता एवं मनोरंजन की प्रवृत्ति ही क्रियाशील रही । जन-जीवन एवं उपन्यास के बीच बहुत बड़ी खाई थी। नवचेतना के उदय तथा सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के द्रुत परिवर्तन के उस युग में उपन्यास बेहद पिछड़ा जा रहा था । समाज का स्वरूप, राजनीतिक संगठन, आर्थिक व्यवस्था, नैतिक परम्पराएँ- सभी इतनी तेजी से बदल रही थी कि उनके साथ कदम मिलाकर चलना किसी साधारण साहित्यकार के बस की बात नहीं थी । इस युग में किसी ऐसे प्रबुद्धचेता प्रभावशाली साहित्यकार की आवश्यकता थी जो जन-जीवन और साहित्य के बीच की खाई को पाट देता । ऐसे समय में ही प्रेमचन्द का अभ्युदय हुआ । प्रेमचन्द ने उक्त युगान्तरकारी कार्य का बड़ी सफलता से सम्पादन किया । उनके साहित्य में राष्ट्रीय जीवन की हलचल, उथल-पुथल,

आशा-आकांक्षा, संघर्ष, उमंगे आदि परिलक्षित होती है। प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम उपन्यास के क्षेत्र में अनावश्यक आदर्शवादिता का बहिष्कार किया। इस तरह “हिन्दी-उपन्यासों में नया मोड़ देने वाले प्रेमचन्द अपने युग के ही नहीं, हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार माने जाते हैं।”^{३७}

हिन्दी-उपन्यास के विकास काल को निम्नलिखित काल-खण्डों में विभक्त कर उसका समुचित अध्ययन किया जा सकता है-

१. पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यास
२. प्रेमचन्द युगीन उपन्यास,
३. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास,

• पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यास

हिन्दी-साहित्य का पूर्व प्रेमचन्द युग प्रयोग का युग माना जाता है। प्रयोग के माध्यम से कोई भी साहित्य-विद्या अपनी उपयुक्त भूमि का निर्माण करने में प्रवृत्त होती है और अपनी सहज भूमि को पाकर ही उसके आन्तरिक सौष्ठव का सम्यक् प्रस्फूर्तन होता है। लेकिन इस प्रयोग-युग में भी अनुकरण की प्रधानता रही। कुछ विद्वान उपन्यास का प्रारंभ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से ही मानते हैं, जैसा कि पहले हम बता चुके हैं। भारतेन्दु काल में बँगला उपन्यासों के हिन्दी अनुवाद हुए और कुछ मौलिक उपन्यासों की भी सृष्टि हुई। भारतेन्दु युगीन उपन्यासों पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है “नाटकों और निबन्धों की ओर विशेष झुकाव रहने पर भी बंग-भाषा की देखादेखी नये ढंग के उपन्यासों की ओर ध्यान जा चुका था। अतः साहित्य के इस विभाग की शून्यता शीघ्र हटाने के लिए उनके अनुवाद आवश्यक प्रतीत हुए।”^{३८}

पूर्व-प्रेमचन्द युग के सम्पूर्ण औपन्यासिक कृतित्व में उद्देश्य की दृष्टि से हमें दो प्रमुख धाराओं का प्रवाह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। एक धारा में 'उपदेश की प्रधानता है' दूसरी में 'मनोरंजन का उद्देश्य प्रधान' है। इस 'मनोरंजन-प्रधान' उपन्यासों को कई नामों से जाना जाता है। इसमें तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी, डकैती, प्रेम आदि घटनाओं का कल्पनात्मक वर्णन रहता है। इनका उद्देश्य सिर्फ पाठकों का मनोरंजन करना ही है। ये उपन्यास 'मनोरंजन-प्रधान' या 'कल्पना-प्रधान' के रूप में स्वीकृत हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. त्रिभुवन सिंह ने लिखा है, "देवकी नन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी तथा किशोरीलाल गोस्वामी ने मनोरंजन को प्रधानता देकर घटना प्रधान उपन्यासों की धूम मचा दी। मनोरंजन मात्र इन उपन्यासों का उद्देश्य था।"^{३९}

जहाँ तक ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रश्न है- इस युग में इन उपन्यासों की संख्या प्रायः नगण्य मानी जाती है। वस्तुतः जो उपन्यास इस युग में रचे गए उनमें ऐतिहासिक उपन्यास के नाम पर तिलस्मी-ऐय्यारी, जासूसी और प्रेम-प्रसंगों की अवतारणा ही विशेष रूप से की गई। अतः हम समझते हैं कि पूर्व-प्रेमचन्द युग के सम्पूर्ण उपन्यास-साहित्य का समीचीन अध्ययन, मुख्यतः दो श्रेणियों में विभक्त कर किया जा सकता है।

१. उपदेश-प्रधान उपन्यास और

२. घटना-प्रधान उपन्यास।

• उपदेश-प्रधान उपन्यास

हिन्दी के आरम्भिक काल में लिखे गए उपन्यासों में श्री निवासदास के 'परीक्षा-गुरु' ने विशेष ख्याति पाई। इसे 'हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है।'^{४०} यह 'हितोपदेश' और 'पंचतंत्र' की शैली पर लिखा गया है। यह एक

शिक्षाप्रद उपन्यास है, जिसमें शिक्षा और उपदेशात्मकता की भावनाओं की प्रधानता है। यह प्रवृत्ति पं. बालकृष्ण भट्ट के 'सौ अजान एक सुजान' में और भी बढी-चढी दिखाई देती है। इन उपन्यासों में वर्णन की विशेषता और यथार्थता के साथ उस समय की हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं। राधाकृष्णदास के 'निःसहाय हिन्दु' में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व दिया गया है। पं. बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' में छात्रों को नैतिक शिक्षा का उपदेश दिया गया है।

उक्त तीन उपन्यासकारों के अतिरिक्त इस धारा के कुछ अन्य उपन्यासकार-अयोध्यासिंह उपन्यास 'हरिऔध, लज्जाराम मेहता आदि भी उल्लेखनीय हैं। हरिऔध जी के 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' में भाषा-सौष्ठव पर विशेष बल दिया गया है। लज्जाराम मेहता के 'आदर्श दम्पति', 'बिगड़े का सुधार', 'आदर्श हिन्दु', 'धूर्त-रसिकलाल' आदि हैं। इनमें लेखक का आदर्शवादी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है।

उपदेश-प्रधान उपन्यासों के अन्तर्गत एक गौण धारा पौराणिक उपन्यास की भी मानी जा सकती है। इन पौराणिक उपन्यासों का लक्ष्य भारतीयों को प्राचीन साहित्य एवं संस्कृति से परिचित कराना था। क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार बड़ी शीघ्रता से होता जा रहा था और शिक्षित वर्ग पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से अपनी संस्कृति और साहित्य की धारा से दूर बह चला था। इनके अन्दर स्त्री-शिक्षा-प्रसार, आदर्श नायक और नायिकाओं के सुन्दर चित्रण नमूने के लिए चित्रित करने की भावना वर्तमान थी। स्त्रियों के आदर्श के लिए अनसुया, सुभद्रा, चन्द्रलेखा, मदालसा, सीता और सावित्री जैसी, एवं पुरुषों के लिए वीर कर्ण, एकलव्य, परशुराम आदि चरित्रों

का चित्रण किया गया। इनमें ब्रजनन्दन सहाय कृत 'राधाकान्त', 'सौन्दर्य के उपासक' गोपालराम गहमरी के 'सास पतोहु', 'दो बहने' द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी के 'सावित्री-सत्यवान' रामचरित उपन्यास का 'देवी द्रोपदी' आदि मुख्य हैं।

पूर्व-प्रेमचन्द युग के उपदेश-प्रधान उपन्यासों में औपन्यासिक तत्व-विधान उतना उत्कृष्ट नहीं माना जा सकता है। यद्यपि इन लेखकों की दृष्टि जीवन पर केन्द्रित रही परन्तु जीवन के विविध-पहलूओं एवं विभिन्न सामाजिक चित्रों को ये प्रकट नहीं कर सके। समाज की नैतिक, पारिवारिक आचार-विचार सम्बन्धी शिक्षा देना ही इन उपन्यासों का उद्देश्य था।

इन उपन्यासों में जीवन की समस्या का केवल सतही तौर पर निर्देशन रहता था। सामाजिक समस्याओं की गहराई इनमें नहीं थी। इनमें मात्र उपदेश एवं नैतिकता की ही प्रधानता रही थी।

• घटना-प्रधान उपन्यास

सामाजिक नैतिक शिक्षा के उद्देश्य से रचे गये उपदेश-प्रधान उपन्यासों के समानान्तर दूसरी धारा मनोरंजन-प्रधान या घटना-प्रधान कल्पनात्मक उपन्यासों की प्रवाहित हुई। इस धारा का प्रवाह इस युग में अत्यन्त पृथुल रहा। इस धारा के उपन्यासकार विपुल साहित्य-स्रष्टा थे। इस समय सस्ते साहित्य की माँग बेहद बढ़ गई थी। प्रारम्भिक काल में लोक-रुचि कौतुहल और तिलस्म की ओर अधिक थी। अध्ययन और लेखन का एक मात्र उद्देश्य था कौतुहल तृप्ति द्वारा मनोरंजन। इस प्रवृत्ति की तृप्ति के लिए बाबु देवकीनन्दन खत्री मुख्य माने जाते हैं। इनके उपन्यासों का संसार जादू का संसार था। उनमें तिलस्म और ऐयारी का प्राधान्य रहा।

इस तरह 'तिलस्मी-ऐयारी' के उपन्यासों की धारा के अग्रणी लेखक बाबू

देवकी नन्दन खत्री माने जाते हैं।^{४१} इनके तिलस्मी एवं ऐयारी, उपन्यास सबसे प्रसिद्ध हुए। “कुछ लोगों ने तो सिर्फ ‘चन्द्रकान्ता’ पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी-यह ऐतिहासिक सत्य है।”^{४२} ‘चन्द्रकान्ता’ हमारे सामने आदर्श हिन्दू नारी का चरित्र रखती है। इनका दूसरा उपन्यास है ‘चन्द्रकान्ता संतति’। दोनों उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना रहा है। तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों की परंपरा में दुर्गाप्रसाद खत्री का ‘भूतनाथ’ और श्री रामलाल वर्मा का ‘पुतली-महल’ भी प्रसिद्ध उपन्यास माने जाते हैं।

इस बहिर्मुखी प्रवृत्ति का दूसरा रूप है- जासूसी उपन्यास। इनमें भी कौतुहल की तृप्ति है। गोपाल राम गहमरी इस धारा के प्रमुख लेखक माने जाते हैं। उन्होंने घटना-प्रधान जासूसी उपन्यास लिखा। इनके उपन्यासों में घटनाओं का एक क्रम पाया जाता है। इनके उपन्यासों में भाव की अपेक्षा बुद्धि का चमत्कार अत्रिदक पाया जाता है। इन्होंने चालीस वर्षों से लगभग डेढ़ सौ उपन्यास लिखे। “ये हमारे यहाँ के कानून डायल कहे जा सकते हैं।”^{४३} लेकिन पश्चिम के डायल जैसे उपन्यासकारों की सी सूक्ष्मता, विश्वासोत्पादनी शक्ति तथा बुद्धि चातुर्य इनमें नहीं आ पायें। विज्ञान के विषयों को लेकर भी कुछ उपन्यासों की रचना की गई थी। इन उपन्यासों में विज्ञान की सत्यता के साथ तिलस्मी-जासूसी उपन्यासों जैसी स्वच्छन्द कल्पना भी रहती थी। इन उपन्यासों में गंगाप्रसाद गुप्त का ‘हवाई नाव’, विनय गोपाल बख्शी का ‘चन्द्रलोक की यात्रा’ प्रमुख हैं।

घटना-प्रधान तिलस्मी-ऐयारी-जासूसी उपन्यासों की धारा के साथ-साथ कल्पना-प्रधान अर्थात् प्रेम-प्रधान उपन्यासों की परम्परा भी चल रही थी। यद्यपि तिलस्मी आदि उपन्यासों में भी प्रेम-चित्रण रहता था, पर इन प्रेम-प्रधान उपन्यासों में प्रेमाख्यानों

की ही प्रधानता रही । ‘किशोरीलाल गोस्वामी इस परम्परा के अग्रणी लेखक कहे जा सकते हैं।’^{४४} उन्होंने कौतूहल को तो कायम रखा किन्तु ऐतिहासिकता और सामाजिकता के साथ मनुष्य की सहज रुचि को जाग्रत करने वाली विलासिता और प्रेम का पक्ष अधिक चित्रित किया । इनमें प्रेम-प्रवंचना की अधिकता से कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गई है। इनके प्रेमाख्यानक उपन्यासों में ‘तारा’, ‘अँगुठी का नगीना’, ‘कुसुम कुमारी’, ‘लखनऊ की कब्र’ आदि हैं । फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे अपने कुछ अन्य उपन्यासों के द्वारा अन्य लेखकों की अपेक्षा समाज के अधिक निकट आये ।

पूर्व प्रेमचन्द युग में अन्य भाषाओं के अनुदित उपन्यास भी प्रकाशित हुए । आरम्भ में केवल मनोरंजन-प्रधान तिलस्मी, जासूसी आदि घटना-प्रधान उपन्यासों-जैसे अंग्रेजी से ‘लन्दन रहस्य’ आदि तथा उर्दू फारसी से ‘तिलस्मे-होशरुबा’, ‘ठग वृत्तान्तमाला’, ‘पुलिस वृत्तान्तमाला’ आदि का अनुवाद हुआ । किन्तु तत्पश्चात् बंगला, अंग्रेजी और मराठी के श्रेष्ठ उपन्यासों के अनुवाद भी निकलने लगे । फारसी नाटक मण्डलियों के प्रभाव से भी कुछ प्रेम-प्रधान उपन्यास नाटकीय शैली में लिखे गए । इनमें रामलाल वर्मा का ‘गुलबदन’ उर्फ ‘रजियाबेगम’ मुख्य है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पूर्व-प्रेमचन्द युग वास्तव में पुनर्जागरण और नवजागरण का युग था । इस युग में उपन्यास साहित्य की रचना नवीन सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए आरम्भ हुई थी । तत्कालीन समाज में व्याप्त अन्धविश्वासपूर्ण कुरीतियों को मिटाकर उन्हें नवीन युग के अनुकूल आचरण करने में समर्थ बनाने के लिए ही उपन्यासों की रचना की गई थी । इनकी रचना में सामाजिक उत्थान के उद्देश्य निहित थे । बँगला-साहित्य से हिन्दी लेखकों को रचना-संस्कार के

साथ ही राष्ट्रीय जागरण का आलोक भी प्राप्त हुआ। इस सम्बन्ध में माधव प्रसाद मिश्र की उक्तियों का समर्थन करते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं “जो हो रिक्तहस्ता हिन्दी ने बँगला के सच्चपूर्ण भण्डार से केवल उपन्यास शब्द को ही ग्रहण नहीं किया वरन् इसका बहुत-सा उपकरण भी इस लघ्वीयसी को उसी महीयसी से मिला है।”^{४५}

पूर्व-प्रेमचन्द युग की साहित्यिक परम्परा में सामाजिक उपन्यासों की परम्परा ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस परम्परा ने आगे चलकर प्रेमचन्द की उपन्यास रचना के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। प्रेमचन्द के आगमन के साथ ही हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में एक नये युग का आरम्भ हुआ। यह निर्विवाद सत्य है कि प्रेमचन्द ही इस नवीन युग चेतना के अग्रदूत बने।

० प्रेमचन्द युगीन उपन्यास

हिन्दी उपन्यासों के विकास क्रम में प्रेमचन्द-युग का विशेष महत्व है। इस युग में उपन्यास का अभूतपूर्व विकास हुआ। प्रेमचन्द जी ने हिन्दी-उपन्यास-साहित्य को मनोरंजन के स्तर से उठाकर उसे यथार्थ जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम किया।

प्रेमचन्द जी उन उपन्यासकारों में सर्वप्रथम माने जाते हैं, जिनकी दृष्टि महलों की ओर न जाकर सबसे पहले झोंपड़ियों की ओर गई। उनके उपन्यासों में शोषित और दलित जनता के प्रति सहानुभूति का पक्ष चित्रित हुआ है। सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ उन्होंने राजनीतिक समस्याओं एवं आन्दोलनों का भी चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में जो समस्याएँ उठायी गई हैं, वे समाज व्यापी हैं। वे गाँधीवादी आदर्श प्रणाली, सत्य और अहिंसा के प्रबल समर्थक थे। पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी वे भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। “वस्तुतः प्रेमचन्द

जी में आर्य समाज की तार्किकता, गाँधीजी की विनयशीलता और तिलक की तेजस्विता का अद्भुत समन्वय था। उनके गतिशील जीवन-दृष्टि के निर्माण में आर्य समाज, तिलक एवं गाँधीजी की विचारधाराओं का ही योग था।”^{४६}

प्रेमचन्द जी जनहित के पक्के समर्थक माने जाते हैं। उनका साहित्य जनता का साहित्य था। जनता के प्रति उनके हृदय में प्रगाढ़ आस्था थी। “जनता को समझने वाले, जनता के प्रति सहानुभूति रखने वाले, जन-जीवन को अपना जीवन समझने वाले, जनहित के लिए आत्माहुति देनेवाले भारत के राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी हुए तो हिन्दी-उपन्यास में प्रेमचन्द।”^{४७}

हिन्दी उपन्यास-साहित्य में प्रेमचन्द जी एक युग-प्रवर्तक के रूप में आये। उन्होंने उपन्यास-साहित्य में वास्तविक यथार्थ की अभिव्यक्ति को जन्म दिया। “उनका यथार्थ वह कठोर धरातल है जिस पर उनके आदर्श महल की दृढ़ दीवार खड़ी होती है।”^{४८}

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों का साधारणतः वर्गीकरण कर देना कठिन होगा, क्योंकि न तो हम उन्हें पूर्णतः घटना-प्रधान कह सकते हैं और न तो चरित्र-प्रधान ही। जैसा कि हम जानते हैं प्रेमचन्द जी के समय समाज की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। विभिन्न सामाजिक समस्याओं एवं उनके दुष्परिणामों से प्रेमचन्द जी भलीभाँति परिचित थे। “संभवतः चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामायिक समस्याओं-पराधीनता, जमीन्दारों, पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अन्धविश्वास, दहेज की कुप्रथा, घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिन्दगी, वृद्ध-विवाह, विधवा-समस्या, साम्प्रदायिक वैमनस्य, अस्पृश्यता, मध्यम वर्ग की कुण्ठाएँ आदि ने उन्हें उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया

था ।”^{४९} प्रेमचन्द जी ने एक-एक कर इन समस्याओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया । इन्होंने साहूकारों, सरकारी कर्मचारियों का यथार्थपूर्ण चित्रण किया है । अतः प्रेमचन्द जी के उपन्यासों को भारत का यथार्थ सामाजिक जीवन चित्रित करने के कारण सामाजिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है । चूँकि राजनीति भी समाज का अंग है अतः राजनीतिक समस्या-सम्बन्धी उपन्यासों को भी अध्ययन की सुविधा के लिए सामाजिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है ।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों को निम्न लिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

◦ सामाजिक उपन्यास

प्रेमचन्द जी सर्वप्रथम प्रसिद्ध उपन्यास ‘सेवासदन’ है । यह ‘बाजार-ए-हुस्न’ उर्दू उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर है । ‘सेवासदन’ से ही उनके औपन्यासिक जीवन का ही नहीं अपितु हिन्दी-उपन्यास के एक नये युग का भी प्रादुर्भाव हुआ माना जाता है । इनके अन्य उपन्यासों में ‘प्रेमाश्रय’, ‘निर्मला’, ‘गबन’, ‘प्रतिज्ञा’, ‘रंगभूमि’, ‘कर्मभूमि’, ‘गोदान’, ‘कायाकल्प’, ‘प्रेमा’, ‘रूठी रानी’, ‘वरदान’, ‘मंगल सूत्र’ (अपूर्ण) प्रमुख हैं । इन उपन्यासों के माध्यम से उस युग का सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन साकार हो उठा।

प्रेमचन्द जी ने हिन्दी-उपन्यास-साहित्य को जीवन की यथार्थता, आदर्श प्रेरणाओं, सजीव, प्रेरक, प्रभावोत्पादक, चरित्र-प्रधान एवं सुरुचिपूर्ण प्रसंगों से बाँधने का सफल प्रयास किया । साथ ही उन्होंने सुसंस्कृत एवं बुद्धिजीवी भारतीयों के मन से उपन्यास के प्रति तिरस्कार की भावना को दूर कर उपन्यास को सम्मानपूर्ण स्थान दिलाया ।

हिन्दी-उपन्यासों में नया मोड़ देने वाले प्रेमचन्द जी अपने युग के ही नहीं, हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार माने जाते हैं। जीवन की वास्तविक समस्याओं का चित्रण, सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण, स्वाभाविक, विश्वसनीय एवं मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण कथानक, विभिन्न वर्गों एवं विभिन्न पेशों के पात्रों का यथार्थ चित्रण, पात्रानुरूप एवं स्वाभाविक सजीव संवाद, युगधर्म की सजीवता, सुन्दर, सरल, परिष्कृत एवं प्रभावोत्पादक बालचाल की भाषा-शैली, जीवन की स्वस्थ प्रेरणाओं और आदर्शों का महान उद्देश्य आदि गुणों की अवतारणा हिन्दी-उपन्यास में सर्वप्रथम प्रेमचन्द्र जी की लेखनी द्वारा ही प्रस्तुत हुई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द जी ने ही हिन्दी-उपन्यास को अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम प्रदान किया। हिन्दी के उपन्यासकारों में इनको सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। भाषा के सटीक, सार्थक और व्यंजनापूर्ण प्रयोग में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के उपन्यासकारों को भी पीछे छोड़ जाते हैं। डॉ. प्रताप नारायण टंडन के शब्दों में 'प्रेमचन्द का अपना एक स्कुल था, जिसका अनुसरण उनके समकालीन एवं उत्तरकालीन अनेक उपन्यासकारों ने किया।'^{५०}

प्रेमचन्द जी के समकालीन सामाजिक उपन्यासकारों में 'जयशंकर प्रसाद' ('कंकाल', 'तितली'), 'भगवतीप्रसाद वाजपेयी' ('प्रेमपथ', 'त्यागमयी', 'अनाथ पत्नी'), 'वृन्दावनलाल वर्मा' ('लगन', 'संगम', 'कुंडली-चक्र', 'प्रत्यागत', 'प्रेम की भेंट') 'विश्वम्भरनाथ शर्मा' ('कौशिक' ('माँ', 'भिखारिणी') आदि उल्लेखनीय हैं।

० ऐतिहासिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यासों में किसी भी काल या देश की कोई ऐतिहासिक कथा उपन्यास की शैली पर चित्रित की जाती है। इस प्रकार के उपन्यासों में घटना, चरित्र

या घटना-चरित्र का ध्यान नहीं रखा जाता है। लेखक का मुख्य ध्यान कथा कहने पर रहता है। इन उपन्यासों में इतिहास और उपन्यास के तत्वों का समन्वय होता है। उसमें कल्पना एवं सच्चाई की प्रधानता रहती है। डॉ. सत्येन्द्र के शब्दों का उल्लेख डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह ने इस प्रकार किया है- “ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकाल का सबसे अधिक ध्यान रखा जाता है। इन उपन्यासों के लेखक की सफलता इस बात पर निहित रहती है कि वे जहाँ तक हो अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग करके तात्कालिक परिस्थितियों का बिम्ब ग्रहण करा दें।”^{५१}

प्रेमचन्द युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों की परम्परा में डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इनके द्वारा प्रवर्तित ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का आरम्भ उनके उपन्यास ‘गढ़ कुण्डार’ से माना जाता है। इसमें बुँदेलखण्ड की वीरभूमि का चित्रण किया गया है। मध्य युगीन भारत में दबे-बिखरे शौर्य का चित्रण, स्थानीय गौरव, स्थानीय रंगत, प्रकृति-चित्रण आदि इस उपन्यास की विशेषताएँ मानी जाती हैं।

इनके अतिरिक्त गोविन्द वल्लभ पत (सूर्यास्त), आचार्य चतुर सेन शास्त्री (खवास का ब्याह), निरालाजी (प्रभावती), भगवतीचरण वर्मा (पतन) आदि ने ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास में योगदान दिया।

० प्रकृतिवादी उपन्यास

प्रेमचन्द जी के नीतिनिष्ठ, आदर्शप्रवण स्वर का विरोध एवं उसका व्यावहारिक निदर्शन उन्हीं के युग में आरम्भ हो गया था। प्रेमचन्द जी अपने साहित्य में असत्य पर सत्य की विजय दर्शाने की जो चेतना लेकर चले थे, उससे उनके कई समसामयिक ओर परवर्ती उपन्यासकार सहमत नहीं हो सके। वस्तुतः इन उपन्यासकारों का मानना

था कि जीवन की कुरूपताओं और विषमताओं का जब तक उद्घाटन न किया जाए तब तक उनका उन्मूलन ही कैसे सम्भव है?

हिन्दी में प्रकृतिवादी उपन्यास के पीछे यूरोप की प्राकृतवादी यथार्थवादी परम्परा की प्रेरणा को स्वीकार किया जाता है। यहाँ संक्षेप में प्रकृतवाद का स्वरूप स्पष्ट कर देना आवश्यक है। “वस्तुतः पश्चिम में यथार्थवाद का प्रवर्तन पहले हो चुका था, उसी में से एक और विशिष्ट शाखा फूटकर निकली जिसे ‘प्राकृतवाद’ का नाम दिया गया। भौतिकवाद तथा यथार्थवाद की भाँति प्राकृतवाद भी अनात्मवादी दृष्टिकोण है। वह जीवन को एक आत्मनिर्भर व्यापार के रूप में देखता है। प्राकृतवादी साहित्य के अन्तर्गत वे कृतियाँ जाती हैं, जो यथार्थवादी पद्धति एवं सामग्री के द्वारा दार्शनिक प्रकृतिवाद के किसी स्वरूप की स्थापना करती हैं।”^{५२}

प्राकृतवाद वस्तुतः यथार्थवाद का ही विस्तार एवं विकास माना जाता है। लेकिन यह यथार्थवाद से भिन्न है। मार्टिन टर्नेल ने लिखा है- "It must be 'true to life', it must be scientific'. it must fund a place for the working classes but it must combine social investigation with contemporary moral history, must in short, be inspired by that religion with the Eighteenth century revered under the name of Humanity."^{५३}

प्राकृतवाद एक जीवन दर्शन है। प्राकृतवादी उपन्यासकार मानव जीवन को वैज्ञानिक ढंग से जानने और समझने का प्रयत्न करता है। प्रमुख का प्रत्यक्ष व्यवहार उसकी किसी न किसी आन्तरिक यान्त्रिकता या बाह्य विवशता का परिणाम होता है और साहित्यकार इन दोनों को वैज्ञानिक तटस्थता से उद्घाटित करते हैं। इन साहित्यकारों ने समाज में व्याप्त पाशविक यौन-वृत्ति के कुत्सित चित्रों के उद्घाटन

का प्रयत्न किया है। पाप और व्यभिचार के कुत्सित चित्रों में ये लेखक रम गए और जीवन के एक अन्धकार पक्ष को उभारने में ही इन लेखकों ने अपनी शक्ति का अपव्यय किया है।

प्रकृतिवादी की यह प्रवृत्ति प्रेमचन्द जी के सामने ही उभर उठी थी। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने स्वयं लिखा है- “वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य पशु है। काम और भुख उसकी सहजवृत्तियाँ हैं। उनके अनेक कार्य-कलाप इन्हीं वृत्तियों से प्रेरित और परिचित होते हैं। मनुष्य में पशु-वृत्तियाँ इतनी प्रबल होती जा रही हैं कि अब उसके हृदय में कोमल भावों के लिए स्थान ही नहीं रहा।”^{५४} लेकिन उन्होंने कला के उस रूप को अमांगलिक एवं त्याज्य भी बताया है जो व्यक्ति में सुरुचि न जगाये और उसके मन का संस्कार न करे।

हिन्दी-उपन्यास में प्रकृतिवादी उपन्यासकारों की परम्परा में आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा उग्र और ऋषभचरण जैन- इस लेखक त्रयी का उल्लेख किया जाता है। चतुरसेन शास्त्री के प्रकृतिवादी उपन्यासों में ‘हृदय की परख’, ‘हृदय की प्यास’, ‘अमर अभिलाषा’ और ‘आत्मदाह’ मुख्य हैं। बेचन शर्मा ‘उग्र’ ने अपने उपन्यासों- ‘चंद हसीनों के खतूत’, ‘दिल्ली का दलाल’, ‘बुधुआ की बेटी’, ‘शराबी’ आदि में समाज की बुराइयों को, उसकी नंगी सच्चाई को बिना लाग-लपेट के बड़े ही साहस के साथ, किन्तु सपाटबयानी में प्रस्तुत किया। उनके उपन्यासों की अश्लीलता एवं अशिष्टता उन्हें श्रेष्ठ कला के रूप में परिणत नहीं होने देती और न ही उनका सुधारवादी उद्देश्य पूरा हो पाया। इसी तरह ऋषभचरण जैन ने भी ‘उग्र’ जी की ही भाँति तत्कालीन समाज के वर्जित विषयों पर ‘दिल्ली का कलंक’, ‘दिल्ली का व्यभिचार’, ‘वेश्यापुत्र’ आदि उपन्यासों की रचना की।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रकृतिवादी उपन्यासकारों ने यौन-लिप्सा एवं अप्राकृतिक व्यभिचारों के उद्घाटन तथा चित्रण को ही अपने प्रयत्नों का लक्ष्य बनाया और अपना संतुलन खो दिया। अपने प्रयत्नों में एकान्ततः अन्धकार-पक्ष के उद्घाटन पर केन्द्रित रखने के कारण हिन्दी के इन उपन्यासकारों का व्यक्तित्व प्रतिभा, अनुभूतियाँ एवं व्यंजना शक्ति के बावजूद पूर्ण विकास नहीं पा सका।

० प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य :

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य मुख्य रूप से यथार्थ का साहित्य है। ऐसा यथार्थ जिसे किसी भी सच के दोनों सिरों से कोई लेना देना नहीं है। झूठ के सच से भी नहीं। प्रेमचन्द ने प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की विषय वस्तु की घोषणा करते हुए कहा था, “यों कहना चाहिए कि भावी उपन्यास जीवन चरित होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई-बडाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायेगा कि जिन पर उसने विजय पायी है। हाँ वह चरित्र इस ढंग से लिखा जायेगा कि उपन्यास मालूम हो। अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखलाना होगा। किसी किसान का चरित्र हो, या किसी देशभक्त का, या किसी बड़े आदमी का; पर उसका आधार यथार्थ पर होगा। तब यह काम उससे कठिन होगा जितना जब है; क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग हैं, जिन्हें बहुत से मनुष्यों को भीतर से जानने का गौरव प्राप्त हो।”^{५५}

प्रेमचन्द युग में यथार्थ के जो दो आयाम-सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दिखाई देते थे वे प्रेमचन्दोत्तर युग में विकसित हो गये। इसी कारण प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में प्रमुखः दो धाराएं दिखाई पड़ती हैं, सामाजिक धारा तथा मनोवैज्ञानिक धारा। इस काल की जो मनोवैज्ञानिक धारा थी वह प्रेमचन्द युग से भिन्न थी। यह मनोविज्ञान

की नई खोजों पर आधारित चेतन-अचेतन जैसी धारणाओं पर आधारित था । रामदरश मिश्र लिखते हैं, “मनोविज्ञान की इस नई धारा ने न केवल मनोविश्लेषण शास्त्रियों द्वारा उद्घाटित रहस्यों को अपनाया बल्कि प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद, प्रतीकवाद आदि गृहित मानवसत्त्यों को भी आत्मसात् किया । कहने का अभिप्राय यह है कि वह अन्तर्लोक की यात्रा है जिसमें बाहरी दुनिया से निरपेक्ष होकर या बाहरी दुनिया को अपनी ओर उन्मुख कर मानस सत्त्यों का साक्षात्कार किया गया है । इस अन्तर्यात्रा का परिणाम उपन्यास के गठन पर भी पड़ा और इस धारा के उपन्यासों के कथाविन्यास, पात्र रचना, देशकाल आदि का स्वरूप वह नहीं रहा जो प्रेमचन्द के उपन्यासों या सामाजिक उपन्यासों में दिखाई पड़ता है ।”^{५६}

सामाजिक उपन्यास प्रेमचन्द की परम्परा से है । प्रेमचन्द के सारे उपन्यास भी सामाजिक परम्परा के ही हैं । इसमें भी दो प्रकार का प्रभाव दिखलाई पड़ता है । कुछ सामाजिक उपन्यासों में मार्क्सवादी प्रभाव दिखलाई पड़ता है वो कुछ यथार्थ के प्रभाव में हैं । ऐसे उपन्यास प्रेमचन्द को परम्परा में आने के बाद भी कुछ अलग ही हैं । अलग इस मायने में है कि इनमें आदर्शोन्मुखता नहीं है जो प्रेमचन्द के उपन्यासों में पाई जाती है। इन पर मनोविज्ञान का काफी प्रभाव दिखलाई पड़ता है । जैसे ‘सूरज का सातवां घोड़ा’, ‘अंधेरे बंद कमरे’, ‘भूले बिसरे चित्र’ आदि उपन्यास सामाजिक उपन्यासों की श्रेणी में आने के बाद भी मार्क्सवादी प्रभाव लिये हुए हैं ।

इस युग के आंचलिक उपन्यास जनचेतना और यथार्थ से जुड़े हुए हैं । लेकिन इनकी दृष्टि और स्वरूप में भिन्नता है । ये एक प्रकार से नये तरह के उपन्यास प्रतीत होते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात के उपन्यास साहित्य में आंचलिक उपन्यास अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं । रामदरश मिश्र लिखते हैं, “नई कविता और नई कहानी में

जिस प्रामाणिक अनुभव की अभिव्यक्ति हुई, वही प्रकारान्तर से आंचलिक उपन्यासों में स्थापित हुआ। इस विशेष भू-भाग जन्य प्रामाणिक अनुभव ने कथा विन्यास, चरित्र-रचना और शिल्प-नियोजन को एक क्रान्तिकारी नवीनता प्रदान की। आंचलिक उपन्यासों को जनतांत्रिक भावना की सच्ची अभिव्यक्ति भी कह सकते हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् गाँवों या पिछड़े इलाकों तथा जन-सामान्य की आत्मसत्ता का जो महत्व अनुभूत हुआ है उसी का परिणाम है कि लेखकों ने किसी पात्र या मूल्य या जीवन परिपाटी को विशेष महत्व न देकर सुख-दुःख का सच्चा जीवन भोगने वाले यथार्थ लोगों की ओर देखा और उनके माध्यम से एक भू-भाग की समूची जिन्दगी को उसकी समस्त सघनता और संश्लिष्टता के साथ उद्घाटित किया।^{५७} इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों में भी यथार्थवाद का प्रभाव दिखाई देता है। लेकिन ऐसा सभी उपन्यासों में दिखाई नहीं देता है। समाजवादी उपन्यासकारों ने मार्क्सवादी दृष्टि को प्रधानता दी, मानववादी उपन्यासकारों ने नव मानवीय और सामाजिक दृष्टि अपनाकर इतिहास को वर्तमान की ओर उन्मुख किया। इतिहास में रुचि रखने वाले उपन्यासकारों ने इतिहास की घटनाओं तथा उसके सौन्दर्य को महत्व दिया।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों को हम स्वाधीनता पूर्व तथा 'स्वाधीनता पश्चात्' में भी बांटकर देख सकते हैं। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य को मुख्य रूप से किसी भी खाँचे में बाँटा नहीं जा सकता है। इस युग में उपन्यासों में कथा एवं शिल्प के आधार पर विभिन्नता दिखाई देती है। स्वतंत्रता पूर्व के कई उपन्यासकार स्वतंत्रता के पश्चात् भी लगातार लेखन में रहे और उनका साहित्यिक योगदान महत्वपूर्ण रहा। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मुख्य स्थान इन्हीं उपन्यासकारों का है। आंचलिक उपन्यास इस युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। मुख्यतः प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में प्रधान

भूमिका स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों की है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों को हम मोटे तौर पर मनोवैज्ञानिक, समाजवादी, ऐतिहासिक और आंचलिक उपन्यास में बाँटकर देखेंगे ।

० मनोवैज्ञानिक उपन्यास

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का तात्पर्य मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों से है । मनोविश्लेषणवाद मस्तिष्क के चेतन, उपचेतन और अचेतन में अचेतन की महत्व देता है। यही भाग मस्तिष्क में सबसे ज्यादा व्यापक और शक्तिशाली होता है । अवचेतन में मनुष्य की वे वृत्तियाँ रहती हैं जिन पर मनुष्य का कोई नियन्त्रण नहीं रहता है । इन्हीं वृत्तियों से मनुष्य का व्यक्तित्व आकार लेता है । अचेतन में मनुष्य की कुछ आदिम इच्छाएँ भी रहती हैं । फ्रायड इन्हें यौन वासनाएँ, एडलर इन्हें हीनता की भावनाएँ और युंग इन्हें जीवनेच्छाएँ मानता है । अचेतन मस्तिष्क का वह हिस्सा है जिसे बेलगाम तानाशाह कहा जा सकता है । यह अपनी इच्छा अनिच्छा को सिर्फ मानता है । बचपन की इच्छा अनिच्छा के कारण ही सबके लक्ष्य, व्यवहार, व्यक्तित्व आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं । अवचेतन वृत्तियों में ही मनुष्य का चरित्र छुपा रहता है । मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों ने साहित्य को बहुत ही प्रभावित किया । इसने साहित्य सृजन और आलोचना दोनों को ही प्रभावित किया । रामदरश मिश्र लिखते हैं, “इन मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों ने साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया । इन्होंने साहित्य की सर्जना और विवेचना दोनों को बहुत कुछ बदला और सच बात तो यह है कि मनोविश्लेषणवाद ने जीवन के समस्त स्वीकृत मूल्यों और यथार्थ के स्तरों को अस्वीकृत कर नए सिरे से जीवन सत्यों और मूल्यों के बारे में सोचने को बाध्य किया । मानव-चरित्रों के स्वीकृत प्रतिमानों को खंडित कर उनके भीतर स्थित नंगी वास्तविकता को अनावरित कर दिया । इसीलिए साहित्य की सर्जना और

विवेचना भी इस सिद्धान्त से काफी प्रभावित हुई। इस प्रकार की सर्जना और विवेचना का एक अलग ही स्कुल बन गया।^{५८} मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसको पढ़कर पाठक को यह नहीं लगता कि वह उपन्यास पढ़ रहा है। बल्कि उसे लगता है कि वह उपन्यास की कथा को जी रहा है। इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार हैं- जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी अज्ञेय, डॉ. देवराज।

जैनेन्द्र का हिन्दी उपन्यास साहित्य में सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि उन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य को प्रेमचन्द के प्रभाव से मुक्त किया। जैनेन्द्र अपने उपन्यासों में कथा नाममात्र की ही रखते हैं। वे मानव के मन-मंथन पर ही ज्यादा ध्यान देते हैं। इसी कारण उनके उपन्यासों में घटनाओं का संजाल नहीं होता है। पूरी कथा सीधे-सीधे चलती रहती है। यहाँ वातावरण भी प्रतीकात्मक रूप में दिखाई देता है। ये ज्यादातर संकेतों से ही काम चलाते हैं। जैनेन्द्र स्वयं कहते हैं, 'जो एकदम वास्तविकता में लिप्त है- वह फिर चाहे जितना भी बड़ा आदमी समझा जाता हो- सफल उपन्यासकार नहीं हो सकता। एकदम जरूरी है कि वह कुछ अबोध भी हो, मिस्टिक हो।'^{५९} डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं, 'जैनेन्द्र गाँधीवाद के अध्यात्मपक्ष पर बल देते हुए आत्मपीडन के द्वारा हृदय-परिवर्तन में विश्वास करते हैं। उनके अनुसार मानव में दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं- स्पर्धा और समर्पण। स्पर्धा अहं का सृजन करती है। समर्पण वृत्ति 'स्व' को 'पर' के लिए उत्सर्ग कर देने में अपनी सार्थकता अनुभव करती है। जैनेन्द्र ने 'अहं' की निस्सारता दिखाकर समर्पण द्वारा 'स्व' और 'पर' में अभेद स्थापित करने की चेष्टा की है। 'अहं' को विगलित करने में पीडा और व्यथा ही समर्थ है। व्यथा का तीव्रतम रूप कामगत यातना में प्राप्त होता है। इसीलिए जैनेन्द्र और व्यथा ही समर्थ है। व्यथा का तीव्रतम रूप कामगत यातना

में प्राप्त होता है। इसीलिए जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में काम-पीडा और समर्पण का चित्रण करके अहं का विसर्जन किया है। मानव की मूल प्रवृत्तियों के संघर्ष को समझने और उभारने के लिए जैनेन्द्र को अन्तर्मुखी होना पडा है।^{६०} प्रायः इनके सभी उपन्यासों में काम पीडा का दर्शन दिखाई पडता है। इनके प्रमुख उपन्यास हैं- 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'जयवर्धन'।

जैनेन्द्र का पहला उपन्यास वैसे तो 'परख' है किन्तु 'सुनीता' उपन्यास से उनके मनोविश्लेषणात्मक शक्ति का सर्वप्रथम परिचय मिलता है। यह उनके श्रेष्ठ उपन्यासों में से एक है। इसमें कुल तीन प्रमुख पात्र हैं। 'सुनीता' और 'श्रीकान्त' पति-पत्नी हैं। 'हरिप्रसन्न' श्रीकान्त का मित्र है। श्रीकान्त अपने मित्र को प्रसन्न रखने के लिए अपनी पत्नी 'सुनीता' को कहता है। हरिप्रसन्न सुनीता को क्रान्तिकारी दल में शामिल करने का प्रयास करता है। इसी बीच वह सुनीता को पूरा पाने का प्रयास करता है। लेकिन सुनीता को निरावरण देखकर पलायन कर जाता है। सुनीता घर वापस लौट आती है। उपन्यास में हरिप्रसन्न काम-कुण्ठा से ग्रस्त है। क्रान्ति के नाम पर वह अपनी हिंसा वृत्ति को सन्तुष्ट करता है। सुनीता के आत्मदान से वह कुण्ठा मुक्त हो जाता है। 'त्यागपत्र' उपन्यास में मृणाल के अभिशप्त जीवन की कथा प्रस्तुत की गई है। मृणाल अपने प्रेम सम्बन्ध के कारण दुःख उठाती है। पति से दुतकारी जाती है। विभिन्न परिस्थितियों में अनेक लोगों के साथ सम्बन्ध रखने के कारण घातक बीमारी से ग्रस्त हो जाती है। कई वर्षों तक पीडा और व्यथा सहने के बाद मृणाल अन्त को प्राप्त हो जाती है। रामदरश मित्र लिखते हैं, "त्यागपत्र हिन्दी का बहुचर्चित और महत्वपूर्ण उपन्यास रहा है। इसका कारण कृति की उपलब्धि में खोजना उतना सार्थक नहीं होता, जितना की उसके ऐतिहासिक आसंग में। जैनेन्द्र पात्रों को सामाजिक

यथार्थता की सार्थकता तो नहीं प्रदान करते, उनके कार्यों और व्यवहार को विश्वसनीयता भी नहीं दे पाते । ये पात्र देखने में बहुत सहज होते हैं । किन्तु वास्तव में वे विशेष प्रकार की व्यक्तिवादी भूख और लेखक के गूढ़ आरोपित दर्शन से परिचालित होते हैं । वे अपनी स्थितियों में सदा वह रास्ता चुनते हैं जो रास्ता सहज नहीं होता और जिसे सामाजिक चेतना और स्वास्थ्यवाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं चुनता । इसलिए जैनेन्द्र के पात्र सामाजिक विसंगति से फूटकर भी उसके प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते एक विशेष प्रकार की यातना लिये उसे प्यार करते हुए चलते हैं या वे सामाजिक विसंगति से फूटते नहीं, व्यक्ति की विसंगतियों में जीते सामाजिक परिवेश से बेखबर रहते हैं ।”^{६१} ‘जयवर्द्धन’ में कथा दो स्तरों पर चलती है- व्यक्तिगत और राजनैतिका। जयवर्द्धन देश का सर्वोच्च अधिपति है । इला अविवाहित होकर भी उसके साथ रहती है। आचार्य इला के पिता है जो दोनों को विवाह करने की अनुमति नहीं देते हैं । स्वामी विरोधी पार्टी का नेता है जो राजनीति में धर्म की रुढ़ियों को अनिवार्य मानता है । इन्द्रमोहन जयवर्द्धन का परम मित्र है । उपन्यास में हूस्टन अमेरिकी पत्रकार हैं जो सभी घटनाओं के साक्षी है । जैनेन्द्र के अन्य उपन्यास हैं- ‘कल्याणी’, ‘सुखदा’, ‘विवर्त’, ‘मुक्तिबोध’, ‘अनन्तर’, ‘अनामस्वामी’ और ‘दशाक’ ।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास मनोविश्लेषणात्मक होते हुए भी सामाजिक उपन्यास सरीखी प्रवृत्ति रखते हैं । इसके कारणों पर रामदरश मिश्र लिखते हैं, ‘एक तो जोशीली मनोवैज्ञानिकता के समर्थक होकर भी पूँजीवाद प्रभु व्यक्तिवाद के समर्थक नहीं है और समाजवाद में भी उनकी आस्था है । वे एक ओर तो व्यक्ति के मनः सत्य का उद्घाटन करते हैं, दूसरी ओर अभिजात वर्ग के अहं पर चोट करते हैं । अभिजात वर्गीय अहं पर चोट करने के लिए वे अपने प्रधान पात्रों को प्रायः पतित उपेक्षित

वर्ग से चुनते हैं। अहं का विलय सामाजिक जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करने से ही हो सकता है। जाहिर है अभिजात वर्गीय संस्कारों वाले पात्र सहानुभूति से वो जनजीवन के साथ जुड़ते हैं, संस्कारों से नहीं। यह सहानुभूतिमूलक सम्पृक्ति भी अहंकार जन्य ही होती है और चोट खाकर विसर्जित नहीं होती, टुकड़े-टुकड़े भले हो जाए। इसलिए इनके कथानक व्यक्तियों तक सीमित न रहकर बाहर समाज में भी निकलते हैं।^{६२} अपने उपन्यासों में इलाचन्द्र जोशी सामुहिक अचेतनवाद के नजदीक दिखाई पड़ते हैं। इन पर मार्क्सवाद का प्रभाव भी दिखाई देता है। इसी कारण वे अन्तश्चेतना का विश्लेषण करके चुप ही नहीं रह पाते बल्कि नकारात्मक वृत्तियों पर चोट भी करते हैं। इस तरह वे अपने लेखकीय दायित्व का भी निर्वाह करते हैं। इनके प्रमुख उपन्यास हैं- 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित', 'जिप्सी', 'जहाज का पक्षी'।

'सन्यासी' का नन्दकिशोर एक अहंकारी व्यक्ति है जो अपने ओडकार की तृप्ति के लिए कई स्त्रियों का जीवन नष्ट करता है। न वह स्वयं शान्ति पाता है और न ही दूसरे को शान्ति दे पाता है। अन्त में वह अपने को सामाजिक यथार्थ से जोते हुए सन्यासी हो जाता है तथा जेल चला जाता है। 'पर्दे की रानी' (१९४१ ई.) में एक वेश्या पुत्री निरंजना की कहानी है जिसके प्रति एक पुत्र-पिता मनमोहन और इन्द्रमोहन दोनों के आकृष्ट होने की कहानी है। दोनों ही निरंजना से भोग करना चाहते हैं और असफल होने पर विध्वंसक प्रतिक्रियाओं से गुजरते हैं। समय के साथ इन्द्रमोहन अपनी पत्नी शीला की हत्या कर देता है। निरंजना की धृणा के कारण इन्द्रमोहन भी आत्महत्या कर लेता है। 'प्रेत और छाया' (१९४५ ई.) में हीनता ग्रन्थि की भयंकर प्रतिक्रिया को दिखाया गया है। पारसनाथ को उसका अत्याचारी पिता

कहता है कि वह किसी और से पैदा हुआ है, उससे नहीं तो वह प्रेत छाया से धिर जाता है। वह लगातार अनेक स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करता है। अन्त में अपने पिता से ही उसे पता चलता है कि उसके पिता ने उससे झूठ बोला था। तब वह पाश्चाताप से भर उठता है। अन्त में वह हीरा से विवाह कर लेता है। 'निर्वासित' (१९४६ ई.) का महीप यौन कुण्ठा से ग्रस्त, यौन कुण्ठा का कारण है। वह आदर्शवादी होने के बाद भी चरित्र के मामले में दृढ़ नहीं है। वह लड़कियों से सहानुभूति ही पाता है प्रेम नहीं। प्रेम से हारा हुआ महीप क्रान्ति की योजना बनाता है। उसकी क्रान्ति दमित प्रेम की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पैदा होती है। अन्ततः गाँधीवादी बनकर लक्ष्मीनारायण सिंह को बचाने के सिलसिले में क्रान्तिकारियों से घायल होता है और जेल में कष्ट सहते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जिप्सी में 'नृपेन्द्र रंजन' 'मानिया' को प्यार करता है किन्तु शोभना भाभी से भी सम्बन्ध रखता है। अन्त में मंजुला जो मानिया का ही परिवर्तित रूप है से प्रेम हो जाता है। रामदरश मिश्र लिखते हैं, "प्रस्तुत उपन्यास में अभिजात वर्गीय धनी व्यक्ति के अहंकार, भोग लालसा तथा निम्न वर्ग की एक स्वतंत्र नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व-बोध, सुविधापूर्ण परवशता में उसकी मानसिक छटपटाहट, सहज ईर्ष्या, क्रोध, प्रतिशोध और तेज का जीवन्त चित्रण तो हुआ ही है साथ ही साथ वर्गीय सत्त्यों के पारम्परिक वैषम्य और द्वन्द्व तथा श्रमशील सामाजिक संस्थाओं की सेवा त्याग का भी सुन्दर अंकन हुआ है और उपन्यास की परिणति सामाजिक सेवा तथा रचनात्मक कर्मों में व्यक्ति के अहं के विसर्जन से हुई हैं। इसमें आए हुए व्यक्ति अपने परिवेश के संस्कारों और सत्त्यों में बहुत मूर्त और सजीव है। मानिया का चरित्र तो बहुत ही जीवन्त है। वह जिप्सी थी और अन्त में भी वह जिप्सी ही बची अर्थात् स्वतंत्र।" ६३

इलाचन्द्र जोशी के अन्य उपन्यास हैं- 'लज्जा' (१९२९ ई.), 'मुक्तिपथ' (१९४८ ई.) 'सुबह के भूले' (१९५१ ई.), 'ऋतुचक्र' (१९६९ ई.) 'भूत का भविष्य' (१९७३ ई.), 'कवि की प्रेयसी' (१९७६ ई.) आदि ।

अज्ञेय को मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्रौढता भरने का श्रेय जाता है । इनके पात्र गढे हुए नहीं प्रतीत होते हैं । जबकि जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक पात्र गढे हुए प्रतीत होते हैं । अज्ञेय ने जीवन की अनुभूति को यथार्थ जीवन से ही लिया है मनोविज्ञान का सहारा लेने की कोशिश नहीं की है । मनोविज्ञान कथा का आधार लेकर चलता है । कथा मनोविज्ञान के सहारे नहीं चलती है । रामदरश मिश्र अज्ञेय के उपन्यासों के पात्रों पर टिप्पणी करते हैं, “व्यापक अर्थ में इनके पात्र सामाजिक हैं किन्तु अपने व्यक्तित्व का विलय करके नहीं, उसे प्रबुद्ध करके ‘नदी के द्वीप’ की तरह धारा से संस्कार पाते हुए मगर अपनी इयता में अलग । व्यक्तित्व की प्रखरता के कारण इनके पात्र जीवन्त पात्र लगते हैं । जीवनानुभवों के ही अंग बन जाते हैं । अतः यह भी कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को सिद्धान्त बनाकर प्रस्तुत नहीं किया है, उनका आलोक लिया है और उस आलोक में जीवन जीते हुए मनुष्य की अनुभूतियों, बोधों, मनः स्थितियों, चेतन-अवचेतन स्थित सत्त्यों और उनके द्वन्द्वों तथा उनसे परिचालित प्रभावित होते हुए आचारों विचारों को ही गहराई और सूक्ष्मता से विवृत किया है ।”^{६४} अज्ञेय के प्रमुख उपन्यास हैं- ‘शेखरः एक जीवनी’ (१९४०-४४ ई.) ‘नदी के द्वीप’ (१९५१ ई.) ‘अपने-अपने अजनबी’ (१९६१ ई.) ।

‘शेखरः एक जीवनी’ अज्ञेय की एक सशक्त और प्रौढ रचना है । यह उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है । शेखर एक क्रान्तिकारी विद्रोही है । उसे फांसी

की सजा मिली है। शेखण एक अहंवादी व्यक्ति है और वह प्रत्येक सामाजिक बन्धन के प्रति विद्रोह करता है। उसके जीवन में अनेक स्त्रियाँ आती हैं, लेकिन वह राशि से प्रभावित होता है। उसकी मृत्यु के बाद भी वह शेखर के लिए प्रेरणा स्रोत बनी रहती है। कुछ विद्वान इस उपन्यास पर रोमा रोलाँ के जाँ क्रिस्टॉफ' का प्रभाव मानते हैं। शेखर: एक जीवनी अनेक प्रतिकूल आलोचनाओं के बाद भी हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है। 'नदी के द्वीप' अज्ञेय का दूसरा महत्वपूर्ण और विशिष्ट उपन्यास है। इसमें पत्र शैली, प्रत्यवलोकन शैली, चेतना-प्रवाह शैली, प्रतीकात्मक बिम्ब-विधान शैली सहित अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है। इसके प्रमुख पात्र भुवन, रेखा चन्द्र माधव और गौरा हैं। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं, 'नदी के द्वीप' में 'अज्ञेय' का व्यक्तिवादी जीवन दर्शन और स्पष्ट हुआ है। उन्होंने मध्यवर्गीय कुण्ठित जीवन के प्रतीक रूप में 'नदी के द्वीप' की कल्पना की है। नदी का द्वीप धारा से फटा हुआ है। मध्यवर्गीय जीवन भी शेष जनप्रवाह से फटा हुआ है। इस कल्पना को सामने रखकर 'अज्ञेय' ने अद्भुत सृष्टि की है। भुवन का व्यक्तित्व एक आत्मकेन्द्रीत व्यक्ति के आन्तरिक संघर्ष को स्पष्ट करनेवाला है। मन की बारीक पतों को खोलने में अज्ञेय को पूर्ण सफलता मिली है।"^{६५} 'अपने-अपने अजनबी' अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित उपन्यास है। उपन्यास का मुख्य विषय है 'मृत्यु से साक्षात्कार'। उपन्यास सेल्मा तथा योके की कहानी कहता है जो बर्फ से ढके घर में मृत्यु की प्रतीक्षा करती है। योके मृत्यु को झूठ मानती है। उसके लिए उसकी स्वतंत्रता ही सत्य है। वह खुश है कि उसने मृत्यु को स्वयं चुना है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, "यह सही है कि अस्तित्ववाद से अज्ञेय' ने कुछ बौद्धिक उत्तेजना पायी हो, पर अपने उत्तरकालीन कृतित्व में लेखक का यत्न यही

रहा है कि भारतीय परिस्थितियों में अस्तित्ववाद से भिन्न और अधिक संगत दृष्टि विकसीत हो जाये।”^{६६}

डॉ. देवराज का प्रमुख उपन्यास है ‘अजय की डायरी’ (१९६० ई.)। यह उपन्यास डायरी शिल्प में लिखा गया है। अजय नास्तिक स्वकेन्द्रित और बुद्धिवादी मध्यवर्गीय युवक है। वह पत्नी शीला से असन्तुष्ट है और हेमा के प्रति आकर्षित है। वह प्रेम में कायर है। इसी कारण वह विदेश भाग जाता है। लौटने पर उसे न तो पत्नी मिलती है और न ही प्रेमिका। रामदरश मिश्र लिखते हैं, “अजय तथा अन्य कई युग्मों के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्ग के खोखले प्रेम-सम्बन्धों को उद्घाटन किया है। प्रेम सम्बन्ध के अतिरिक्त मध्यवर्गीय परिवेश के अन्य अनेक प्रश्नों को उठाया गया है किन्तु केन्द्र में तो प्रेम सम्बन्धों की संवेदना और सोच ही है और सबके केन्द्र में अजय है। डॉ. देवराज दर्शन और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में अच्छे विचारक है इसलिए उनके लेखन में आधुनिक चिन्तन के बहुत सारे सूत्रों के दबाव लक्षित होते हैं और ये दबाव उनके सर्जनात्मक लेखन को काफी हद तक आहत करते हैं क्योंकि उसकी संवेदना के अंग नहीं बन पाते। इसलिए उनके उपन्यास समकालीन प्रश्न तो उठाते हैं किन्तु वे रचनात्मक समृद्धि तथा सहायता नहीं प्राप्त कर पाते। ‘अजय की डायरी’ के बारे में भी यह बात सत्य है।”^{६७} डॉ. देवराज के अन्य उपन्यास हैं- ‘पथ की खोज’ (१९५१ ई.), ‘बाहर-भीतर’ (१९५४ ई.), ‘रोडे और पत्थर’ (१९५८ ई.) ‘मैं वे और आप’ (१९६९ ई.) आदि।

० समाजवादी और सामाजिक उपन्यास

प्रेमचन्द के पश्चात भी अनेक उपन्यासकार हुए हैं जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को अपना लक्ष्य बनाकर चले हैं। इन उपन्यासों की दो श्रेणियाँ हैं-

समाजवादी और सामाजिक । समाजवादी उपन्यासों में एक विशिष्ट दृष्टि पाई जाती है । सामाजिक उपन्यासों में भी ऐसी दृष्टि पाई जाती है किन्तु वह पात्रों के माध्यम से उभर कर आती है । रामदरश मिश्र लिखते हैं, ‘सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन का चित्रण रहता है किन्तु उसे देखने की लेखक की कोई संस्थागत निर्दिष्ट दृष्टि नहीं रहती । यानि दृष्टि तो होती है किन्तु वह किसी प्रकार भी हो सकती है- लेखक की अपनी भी हो सकती है और किसी संस्था की भी । किन्तु समाजवादी उपन्यासों की एक निर्दिष्ट दृष्टि होती है वह दृष्टि लेखक की अपनी निजी दृष्टि नहीं हो सकती, यह मार्क्सवादी होती है । अर्थात् मार्क्स ने सामाजिक यथार्थ का जो विश्लेषण किया है, उसे ये उपन्यास नहीं छोड़ सकते । वास्तव में समाज जैना दीखता है वैसा ही नहीं है । इनके अनुसार सही रूप को देखने के लिए, उसके सत्यों का विश्लेषण करने के लिए एक दृष्टि चाहिए और वह दृष्टि मार्क्सवादी ही हो सकती है । मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखे गए सामाजिक साहित्य को प्रगतिवादी या प्रगतिशील साहित्य कहा गया है ।’^{६८} यथार्थ को भी भिन्न लोग भिन्न दृष्टि से देखते हैं । इसमें कुछ समाजवादी यथार्थवाद को आदर्शवादी ढंग से देखते हैं । वो कुछ जीवन जगत की बुराइयों को ही सत्य मानकर धृणा से भर उठते हैं । कुछ एक व्यक्तिवादी भी हैं जो विकृतियों को ही समाज का यथार्थ मानकर उनका चित्रण करने लगते हैं । मार्क्सवादी दृष्टि सिर्फ यथार्थ के सत्य पर ध्यान देती है । इस वर्ग के उपन्यासकारों ने किसान, मजदूर और मध्यवर्ग सभी वर्गों को अपनी कहानी के लिए चुना । इन पात्रों पर टिप्पणी करते हुए रामदरश मिश्र लिखते हैं, “नवीन मनोविज्ञान के प्रभाव से इन उपन्यासकारों ने जिन पात्रों का निर्माण किया है वे सीधे-सादे, जीवन ढोने वाले पात्र नहीं थे वरन् आधुनिक काल की जमीन से पैदा होने

वाली सारी द्वन्द्व चेतना से बने हुए पात्र थे । उनमें किसानों और मजदूरों के जो चित्र थे वे भी भोले-भाले गरीब निश्छल किसानों मजदूरों के चित्र नहीं थे बल्कि पुरानी चेतनाओं तथा बद्ध संस्कारों से ग्रस्त, नई जिन्दगी के लिए सामूहिक प्रयासों से भाग लेने वाले, अपने कर्म से सामाजिक जीवन की नींव मजबूत करने वाले तथा अपने निजी जीवन में छोटी-छोटी स्वार्थ वृत्तियों और हीन वासनाओं से अस्थिर हो जाने वाले किसान मजदूर थे ।”^{६९} इन उपन्यासकारों ने मध्यमवर्ग को ही अपनी कथा का हिस्सेदार बनाया । इस वर्ग के प्रमुख उपन्यासकार हैं- यशपाल, अमृतलाल नागर उपेन्द्रनाथ अशक, भगवती चरण वर्मा, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, राही मासूम रजा, विष्णु प्रभाकर आदि ।

यशपाल एक क्रान्तिकारी रहे हैं । वे स्पष्टतः प्राचीन मान्यताओं एवं रुढ़ियों के विरोधी हैं और नवीन विचारधारा के प्रबल समर्थक । वे स्पष्ट रूप से मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक हैं । उनके उपन्यासों में उनका जीवनानुभव तथा प्रगतिशील विचार दिखाई पड़ता है । यशपाल के प्रमुख उपन्यास हैं- ‘दादा कामरेड’ (१९४१ ई.), ‘दिव्या’ (१९४५ ई.), ‘झूठा-सच’ (१९५८ ई.) ‘मेरी तेरी उसकी बात’ (१९७४ ई.) । ‘दादा कामरेड’ उपन्यास की भूमिका में यशपाल स्वयं लिखते हैं, ‘दादा कामरेड में ‘पूँजीवाद’, ‘गाँधीवाद’ और समाजवाद के संघर्ष के बीच परिस्थितियाँ, व्यवस्था और धारणाओं में सामंजस्य ढूँढने का प्रयास किया गया है । रामदरश मिश्र लिखते हैं, “जो लोग ‘दादा कामरेड’ में राजनीति और रोमांस का समन्वय देखते हैं उन्हें यह जानना चाहिए कि यह समन्वय नहीं है यह एक मूल का विस्तार है । राजनीतिक कथा को मनोहर बनाने के लिए रोमांच की अवतारणा नहीं की गई है वरन् क्रान्ति की व्यापक दृष्टि से नारी की समस्या को मूल सामाजिक समस्या के अन्तर्गत ही देखा

गया है। यह आकस्मिक नहीं है कि सभी मानवीय और प्रगतिशील दृष्टिकोण वाले लेखकों ने नारी की समस्या को बहुत सहानुभूति से उठाया है। नारी शोषण के दुहरे पाट में पिसती रही है। शोषक वर्गों के घरों की भी नारियाँ शोषित हैं और शोषितों के यहाँ भी नारियाँ शोषित हैं। शोषित वर्गों के यहाँ भी नारियाँ शोषितों से भी शोषित होती है। इसलिए नारी की समस्या प्रगतिशील मानवीय दृष्टि के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है और सामाजिक समस्या का ही अपरिहार्य अंग है।^{७०} ‘दिव्या’ एक काल्पनिक ऐतिहासिक सृष्टि है। ‘दिव्या’ में ऐतिहासिकता के कलात्मक वातावरण के मध्य एक नारी के जीवन की सार्थकता को प्रस्तुत किया गया है। ‘झूठा-सच’ उपन्यास दो खण्डों ‘वतन और देश’ तथा ‘देश का भविष्य’ में विभक्त है। उपन्यासकार ने देश के बंटवारे के समय और उसके पहले-बाद के सांप्रदायिक विभीषिका में जलते हुए भारत और पाकिस्तान की जन-यातना का सजीव चित्रण किया है। विभाजन के साथ ही पुरी, तारा, कनक, शीलो, सूद, गिल, सोमराज, चड्ढा, असद आदि जैसे पात्रों की कथा भी चलती है। ‘मेरी तेरी उसकी बात’ यशपाल का अन्तिम उपन्यास है। इसमें लेखक ने सन् १९१९ ई. लेकर १९४५ ई. तक की प्रत्येक राजनीतिक घटना और उसके प्रभाव को चित्रित किया है। उपन्यास में रौलट ऐक्ट का विरोध, व्यक्तिगत सत्याग्रह, वाइराय की गाडी पर बम विस्फोट, नमक सत्याग्रह काम्युनिस्टों और कांग्रेस के बीच मतभेद, स्वतंत्रता आन्दोलन आदि घटनाओं को शामिल किया गया है। यशपाल के अन्य उपन्यास हैं- देशद्रोही (१९४३ ई.) बारह घण्टे (१९६२ ई.) अप्सरा का शाप (१९६३ ई.) क्यों फंसे (१९६८ ई.)।

अमृतलाल नागर का प्रमुख उपन्यास ‘बूँद और समुद्र’ (१९५६ ई.) है। यह उपन्यास व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को प्रस्तुत करता है। रामदरश मिश्र लिखते

हैं, 'बूँद और समाज' की पारस्परिक अवलम्बिता से ही दोनों की सत्ता बनी हुई है। इसी तरह समाज और व्यक्ति की भी। लेखक ने लखनऊ के एक मुहल्ले के जीवन के माध्यम से मानो पूरे देश के वर्तमान स्वरूप को उद्घाटित किया है। इसमें यथार्थ के दो स्वरूप हैं- एक तो यथार्थ है जिसे देश, समाज और व्यक्ति का बुनियादी यथार्थ कह सकते हैं जैसे पुरुष-स्त्री के सम्बन्ध और समाज के सम्बन्ध। दूसरा यथार्थ सतही है जो बुनियादी यथार्थ में रंग भरने के लिए आता है जिसे हम भाषा का यथार्थ भी कह सकते हैं या सामान्य जीवन की सामान्य घटनाओं का यथार्थ कह सकते हैं। वास्तव में कृति तभी गरिमावान और क्लैसिक होती है जब वह बुनियादी सत्तों अर्थात् बदलते हुए युगों के सन्दर्भ में गतिशील समाज के मूलभूत यथार्थों को पकड़ती है। कहा जा सकता है कि सतही यथार्थ को विस्तार देने के बावजूद 'बूँद और समुद्र' समाज के बुनियादी यथार्थ की रीढ़ पर खड़ा है।^{७९} अमृतलाल नागर के अन्य उपन्यास हैं- 'महाकाल' (१९४६ ई.), 'शतरंज के मोहरे' (१९५९ ई.), 'सुहाग के नुपुर' (१९६० ई.), 'बिखरे तिनके' (१९८२ ई.) तथा अग्निगर्भा (१९८३ ई.)।

उपेन्द्रनाथ 'अशक' के प्रमुख उपन्यास हैं- 'सितारों के खेल' (१९४० ई.), 'गिरती दीवारें' (१९४७ ई.), 'गर्मराख' (१९५७ ई.), 'शहर में घुमता आइना' (१९६३ ई.), 'एक नहीं किन्दील' (१९६९ ई.)। 'सितारों के खेल' में लेखक ने 'भाग्य' का महत्व दिया है। यह उपन्यास सती अनुसुइया के प्राचीन आदर्श की व्यर्थता को सिद्ध करता है। 'गिरती दीवारें' का कथानायक साहित्यकार, संगीतज्ञ, अभिनेता सभी कुछ है। समाज में बिना ठोस आधार के होने के कारण शोषित होता रहता है। वह प्रेम में भी सदैव असफल रहता है। उपन्यास में निम्नवर्गीय जीवन उभर कर सामने आया है। 'गर्मराख' के भी सभी पात्र निम्नवर्गीय वर्ग से आते हैं उपन्यास,

‘सत्या’, ‘जगमोहन’, दुरो, हरीश, आदि पात्रों की यौन कुण्ठा को उजागर करता है। ‘बड़ी-बड़ी आँखें’ एक प्रतीकात्मक उपन्यास है। उपन्यास व्यंग्य करता है कि चाटुकार, स्वार्थी, भ्रष्ट और अवसरवादी लोगों को लेकर उदार आदर्शवादी व्यवस्थापक भी देश को आगे नहीं बढ़ा सकते। ‘शहर में घुमता आईना’ एक वृहत् उपन्यास है जिसमें ‘गिरती दीवारे’ के बाद की कथा कही गयी है। उपन्यास में लाहौर का निम्नवर्गीय जीवन उभरकर आया है। ‘एक नन्हीं किन्दील’ और बांधों न नाव इस ठाँव (दो भाग) में भी ‘गिरती दीवारे’ के नायक चेतन को लेकर ही कथायोजना बनाई गई है। ‘निमिषा’ का नायक गोविन्द एक कलाकार है। यह उपन्यास उसके असफल जीवन तथा निम्नवर्गीय विवशता को प्रस्तुत करता है।

भगवती चरण वर्मा ने बहुत से उपन्यासों की रचना की है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं- ‘चित्रलेखा’ (१९३४ ई.), ‘टेढ़े मेढ़े रास्ते’ (१९४६ ई.) ‘भूले-बिसरे चित्र’ (१९५९ ई.) ‘सबहीं नचावत राम गोसाई’ (१९७० ई.)। ‘चित्रलेखा’ पाप और पुण्य को ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यास में यह बात उभरकर आती है कि पाप और पूण्य परिस्थिति वश होते हैं। इसके साथ ही उपन्यासकार ने परिस्थितियों की प्रबलता, व्यक्ति की निरीहता, प्रकृति की अपूर्णता और कुरूपता जैसे प्रकरणों को भी शामिल किया गया है। टेढ़े-मेढ़े रास्ते में भगवती चरण वर्मा ने तीन भाइयों दयानाथ, प्रभानाथ और उमानाथ के माध्यम से गाँधीवाद, आतंकवाद और साम्यवाद को टेढ़े-मेढ़े रास्ते के रूप में चित्रित किया है। उपन्यास में १९३० ई. के भारतीय सामाजिक-राजनीतिक परिवेश एवं जनमानस को प्रभावित करने वाली विभिन्न विचारधाराएँ भी उपस्थित हैं। ‘भूले बिसरे चित्र’ में भारतीय समाज की आधी सदी एक मध्यवर्गीय परिवार के चार पीढ़ियों के माध्यम से उभर कर आती है।

उपन्यास पाँच खण्डों में बंटा है। रामदरश मिश्र लिखते हैं, 'यह भगवती बाबु के उपन्यासों की ही परम्परा में एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें कथा पूरे राष्ट्रीय धरातल पर पीढ़ियों और वर्गों के संघर्षों के माध्यम से उभरती है। परिवार, वर्ग और राष्ट्र की गतिशील चेतना पचास वर्षों के काल की यात्रा करती हुई चुकते और उभरते हुए मूल्यों, सम्बन्धों तथा उनके द्वन्द्वों को बहुत सच्चाई से स्थापित करती है।'^{७२}

'सबहीं नचावत रामगोसाई' उपन्यास तीन परिवारों की तीन पीढ़ियों के माध्यम से सामन्तशाही की समाप्ति, पूँजीवाद का उदय और शासन पर उनका प्रभाव को रोचकपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। वर्माजी के अन्य उपन्यास हैं- 'तीन वर्ष' (१९३६ ई.), 'आखिरी दाँव' (१९५० ई.) 'अपने खिलौने' (१९५७ ई.) 'वह फिर नहीं आई' (१९६० ई.) 'सामर्थ्य और सीमा' (१९६२ ई.) 'थके पाँव' (१९६३ ई.), 'रेखा' (१९६४ ई.), 'सीधी सच्ची बातें' (१९५८ ई.) 'प्रश्न और मरीचिका' (१९७३ ई.) 'युवराज चूण्डा' (१९७६ ई.) 'धुप्पल' (१९८१ ई.), 'चाणक्य' (१९६२ ई.)।

धर्मवीर भारती के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' (१९४९ ई.) तथा 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (१९५२ ई.) प्रकाशित है। 'गुनाहों का देवता' एक भावुकता पूर्ण करुण प्रेमकथा है। इसके प्रमुख पात्र 'चन्दर', सुधा, पम्मी आदि हैं। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में इलाहाबाद के एक मुहल्ले के ऐसे निम्न मध्यवर्गीय जीवन को प्रस्तुत किया गया है जिसका वर्तमान कष्टदायी ही नहीं भविष्य भी अंधकारमय है। उपन्यास में माणिक मुल्ला कहता है, "देखो यह कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन् उस जिन्दगी का चित्रण करती है, जिसे आज का निम्न मध्य वर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विश्रृंखलता और इसलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अंधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है। पर कोई न

कोई ऐसी चीज है, जिसने हमें हमेशा अंधेरा चीरकर आगे बढ़ने, समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी हैं।”

मोहन राकेश के कुल तीन उपन्यास ‘अंधेरे बंद कमरे’ (१९६१ ई.), ‘न जाने वाला कल’ (१९६८ ई.) और ‘अंतराल’ (१९७२ ई.) प्रकाशित है। अंधेरे बंद कमरे में दिल्ली के अभिजात वर्गीय ‘हरवंश’ और उसकी पत्नी ‘नीलिमा’ के दाम्पत्य जीवन और उसकी विसंगतियों का चित्रण है। दोनों ही अपने व्यक्तित्व का विकास चाहते हैं और इसी कारण दोनों एक दूसरे के सहयोगी होने के साथ ही ईर्ष्या भी करते हैं। इस तरह दोनों एक बन्द अंधेरे कमरे में छटपटाते रहते हैं। ‘न जाने वाला कल’ में विद्यालयी राजनीति के अलावा भविष्य की आशंकाओं धिरे नस्ला के पारिवारिक सदस्यों के मध्य उपजता संत्रास प्रमुख मुद्दा है। ‘अंतराल’ में श्यामा, एक विधवा औरत है। उसकी एक बच्ची भी है। उसकी मुलाकात ‘कुमार’ से होती है। कुछ दिनों बाद दोनों की दुवारा मुलाकात बम्बई में होती है। इस बीच कुमार की शादी हो जाती है। दोनों एक-दूसरे से मिलकर भी नहीं मिल पाते हैं। दोनों के बीच एक अंतराल बना रहता है। मोहन राकेश अपने उपन्यासों में आधुनिक संदर्भ में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, उसकी जटिलता, विसंगतियों, तनावों, द्वन्द्वों एवं अन्तर्विरोधों का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

निर्मल वर्मा अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित एक महत्वपूर्ण लेखक हैं। उनके पाँच उपन्यास ‘वे दिन’ (१९६४ ई.), ‘लाल टीन की छत’ (१९७४ ई.), ‘एक चिथड़ा सुख’ (१९७९ ई.), ‘रात का रिपोर्टर’ (१९६९ ई.), ‘अंतिम-अरण्य’ (२००० ई.) प्रकाशित है। ‘वे दिन’ प्राग के परिवेश में रचा गया उपन्यास है। इसमें अकेलापन,

विजातियता, विश्वयुद्ध का संत्रास, जीवन के यथार्थता का बोध, उदासी, तनाव, अनिश्चय की छाया दिखाई देती है। 'लाल टीन की छत' एक बच्ची काया के किशोर से युवती बनने के बीच के समय की कथा है। इस समय के बीच काया अकेलेपन से जूझती हुई अनेक मानसिक स्तरों से गुजरती है। पूरी कथा संकेतात्मक रूप में प्रस्तुत की गई है। 'एक चिथड़ा सुख' में बिट्टी, इरा, मुन्नू और निती भाई के जीवन के अधूरेपन तथा अकेलेपन की कथा है। पूरी कथा मुन्नू की डायरी के माध्यम से कही गयी है। 'रात का रिपोर्टर' पत्रकार रिशी के माध्यम से जनतांत्रिक मूल्यों का समर्थन तो करता ही है तथा आपातकाल के अंधेरे को भी प्रदर्शित करता है। 'अन्तिम अरण्य' उपन्यास अपने-अपने कथ्य में भिन्न होने के साथ ही पूरी तरह से जीवन मृत्यु के दर्शन से भरा पड़ा है। उपन्यास में मेहरा साहब अपनी पत्नी 'दीवा' की मृत्यु के बाद जीवन से तटस्थ हो जाते हैं। धीरे-धीरे उनका जीवन ऐसा हो जाता है कि लगता है वे मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हों। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं, "उपन्यास के पात्र बूढ़े हैं। सब कुछ उनकी स्मृतियों से छनकर आता है। पात्र जीवन और मृत्यु के रहस्यों में उलझे दिखाई देते हैं, मृत्यु क्या है? क्या इसके साथ जीवन का अंत हो जाता है? क्यों जो आदमी मरता है, वह वही होता है जो पैदा होता है? जो जीवन हम जीते हैं वह क्या अपनी इच्छानुकूल अपनी शर्तों पर जीते है? ऐसा तो नहीं होता। वह तो ऐसे संयोगों से रचा जा रहा होता है, जिसके तर्कों पर हमारा वश नहीं होता। क्या जीवन जीते समय हम अपनी सही जगह पर होते हैं? प्रायः हम गलत जगह पर होते हैं, जिन्हें सही जगह मिल जाती है वे सुखी होते हैं। यह पूरा उपन्यास इसी तरह के दार्शनिक प्रश्नों की अनबूझ पहेली है।"^{७३}

भीष्म साहनी के उपन्यासों 'झरोखे' (१९६७ ई.) 'कडियाँ' (१९७० ई.),

‘तमस’ (१९७३ ई.), ‘बसन्ती’ (१९८० ई.), ‘मय्यादास की गाडी’ (१९८८ ई.), ‘कुन्तो’ (१९९३ ई.), ‘नीलु नीलिमा नीलोफर’ (२००५ ई.) में ‘तमस’ और ‘मय्यादास की गाडी’ महत्वपूर्ण और चर्चित है। ‘तमस’ भीष्म साहनी का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। इसमें स्वतंत्रता के तुरन्त पहले १९४७ ई. के मार्च-अप्रैल में हुए साम्प्रदायिक दंगों की पाँच दिनों की कथा समेटी गयी है। उपन्यास यह प्रदर्शित करता है कि कैसे बड़े लोगों की नीतियाँ जनसाधारण के जीवन को तुच्छ समझकर खिलवाड़ करती हैं। उपन्यास की कथा पर भीष्म साहनी कहते हैं, ‘एक संकटपूर्ण स्थिति की पृष्ठभूमि में विभिन्न धर्मों, वर्गों, विचारधाराओं के लोगों की प्रतिक्रिया और उनके कारनामों ही दिखाए गये हैं। इससे अधिक कुछ नहीं।’^{७४} ‘मय्यादास की गाडी’ भीष्म साहनी का दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें १९वीं शती के मध्य से २०वीं शती के पूर्वार्द्ध का इतिहास मय्यादास की गाडी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ‘मय्यादास’ खालसा राज्य के प्रति समर्पित सामन्तीय मूल्यों का प्रतीक है। धनपत उसके बाद की पीढ़ी में आता है। वह अंग्रेजों का वफादार तथा लिजलिजे किस्म का कमजोर और चापलूस पसन्द व्यक्ति है। धनपत का छोटा बेटा हुकुमत राय तीसरी पीढ़ी का पाश्चात्य पूँजीवादी एवं संस्कृति का प्रतीक है। वह इंग्लैण्ड से लौटन के बाद, हवेली (माडी) का पश्चिमीकरण ही नहीं करता बल्कि राय बहादुरी प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने का प्रयास भी करता है। मूलतः इस उपन्यास के माध्यम से भीष्म साहनी ने तीन पीढ़ियों की सामाजिक सांस्कृतिक चेतना के क्रमिक विकास का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किया है।

राही मासूम रजा के प्रमुख उपन्यास ‘आधा गाँव’ (१९६६ ई.), ‘कटरा बी आर्जू’ (१९७८ ई.) है। ‘आधा गाँव’ में गाजीपुर जिले के गंगोली गाँव के आधे

हिस्से में रहने वाले सैय्यद मुसलमानों की कथा कही गयी है। उपन्यास की कथा स्वतंत्रता से पहले प्रारम्भ होती है। स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे, जमींदारी की समाप्ति तथा नये राजनीतिक वर्ग के रूप में एक शक्तिशाली शोषक वर्ग के उदय की कहानी उपन्यास में है। समय के साथ गंगोली में साम्प्रदायिक तत्व उभरते हैं। देश के बंटवारे के कारण साम्प्रदायिक दंगे उभरते हैं। इसके फलस्वरूप लोगों के बीच नफरत उभरती है। सैय्यदों का वर्चस्व टूटता है और जमींदारी प्रथा समाप्त हो जाती है। उपन्यास में प्रगतिशील चेतना दिखाई देती है। राही मासूम रजा का दुसरा प्रसिद्ध उपन्यास 'कटरा बी आर्जू' है। यह एक मुहल्ले का नाम है जो इलाहाबाद में कही अवस्थित है। इसमें इसी मुहल्ले के मध्यवर्गीय लोगों तथा मजदूरों की कथा कही गयी है। कटरे में रहने वाले लोग अपनी आरजू पूरी कभी नहीं कर पाते हैं। आपातकाल से पड़नेवाले अमानवीय प्रभाव को भी उपन्यास उजागर करता है। राही मासूम रजा के अन्य उपन्यास हैं- टोपी शुक्ला (१९६९ ई.) हिम्मत जौनपुरी (१९६९ ई.) असन्तोष के दिन (१९८५ ई.)।

विष्णु प्रभाकर ने नाटककार, कहानी लेखक तथा जीवनीकार के रूप में ज्यादा ख्याति पाई। वे मूलतः मानवतावादी उपन्यासकार हैं। इन्होंने उपन्यास 'निशिकान्त' (१९५५ ई.), 'तट के बन्धन' (१९५५ ई.), 'स्वप्नमयी' (१९५६ ई.), 'दर्पण का व्यक्ति' (१९६८ ई.), 'कोई तो' (१९८० ई.), 'अर्द्ध नारीश्वर' (१९९२ ई.) की रचना की। इसमें 'निशिकान्त' तथा 'कोई तो' ने विशेष ख्याति प्राप्त की। 'निशिकान्त' में प्रथम विश्व युद्ध के बाद तथा द्वितीय विश्व युद्ध से पहले के भारतीय समाज की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ का चित्रण किया गया है। 'कोई तो' में सड़े-गले नैतिक मूल्यों जड़ मान्यताओं एवं जीवन के विविध क्षेत्रों में लक्षित मानव मूल्यों के पतन पर तीखा प्रहार किया गया है।

इन प्रमुख उपन्यासों के अलावा इस युग में महिला उपन्यासकारों ने भी अपनी सशक्त रचनाओं से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इन लेखिकाओं के उपन्यास में स्त्री की उपस्थिति उसके यथार्थ के साथ हुई है। विशेषकर मध्य वर्ग की स्त्री। उषा प्रियवंदा के उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' और 'पचपन खम्भे लाल दीवारे' में उच्च वर्ग की स्त्री होने के बाद भी उनकी स्थिति कमोवेश एक सामान्य स्त्री की ही तरह हैं। मन्नू भंडारी ने अपने उपन्यास 'आपका बंटी' में तलाकशुदा स्त्री का जीवन तथा माता-पिता के बीच मानसिक रूप से पिसते बच्चे का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। उपन्यास में एक नये प्रश्न को खड़ा करता है जो पहले नहीं उठाया गया। 'महाभोज' में मन्नू भंडारी ने राजनीति के अमानवीय दुष्चक्र में पीसते आम जनता की विडम्बना को स्वर दिया है। 'कृष्णा सोबती' अपने उपन्यासों में स्त्री विवशता के मध्य उसकी उर्जा तथा यौन साहसिकता को उठाती हैं। इनके प्रमुख उपन्यास, 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रों मर जानी', 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'जिन्दगीनामा' आदि है। लगभग सभी स्त्री लेखकों ने स्त्री जीवन के विभिन्न स्वरूपों के साथ कहीं-कहीं बृहतर स्तर पर समाज को भी रेखांकित किया है। इस युग की प्रमुख महिला लेखक तथा उनके उपन्यास निम्नवत् हैं- शशिप्रभा शास्त्री (सीढियाँ), मंजुल भगत (अनारों), मेहरुन्निसा परवेज (उसका घर), मृदुला गर्ग (अनित्य), निरुपमा सेवती (मेरा नरक अपना है), सुनीता जैसे (बिन्दु), सूर्यबाला (मेरे सन्धि पत्र) कुसुम अंसल (अपनी-अपनी यात्रा), नासिरा शर्मा (शाल्मली, सात नदियाँ एक समुन्दर), चन्द्रकान्ता (अपने-अपने कोणार्क) राजी सेठ (तत्सत), मैत्रेयी पुष्पा (चाक), कृष्णा अग्निहोत्री (वाले), चित्रा मुद्गल (एक जमीन अपनी), जगनसिंह (इच्छा पात्र) अरुणा कपूर (धूप आती है)।

० ऐतिहासिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी रचना के माध्यम से इतिहास को नये सन्दर्भों में प्रस्तुत कर उसे वर्तमान में जीवन्त कर देता है। ऐतिहासिक उपन्यास का उद्देश्य होता है इतिहास को स्थूलता के बजाय सूक्ष्मता से परखे। इतिहास का अर्थ घटनाएँ, पात्र या स्थूल आँकड़े नहीं होते हैं। रामदरश मिश्र लिखते हैं, “उपन्यासकार चाहे इतिहास की बहुत सी घटनाओं और पात्रों को ले या कुछ ही पात्रों या घटनाओं को या केवल वातावरण को, यदि वह कलाकार है तो वह इन सबका नियोजन इस ढंग से करेगा कि वर्तमान जीवन के प्रश्न और मानवमूल्य मुखर हो जाएं या यों कहें कि वह इतिहास के उन्हीं अंशों को चुनता है जो काल की मार खाकर भी जीवित बच गए रहते हैं और जो व्यापक सत्यों से दीप्त होने के नाते जीवन सत्यों से जुड़ जाते हैं। मानव मूल्यों और जीवन-छवियों की ज्योति उजागर करने के लिए कलाकार इतिहास या वर्तमान के अन्धकार और प्रकाश, आस्था और अनास्था, पाप और पुण्य हीनता और महत्ता को अन्तर्ग्रंथि रेखाओं से निर्मित समग्र परिवेश को उभारता है। इतिहास के अन्धकार काल में यदि कोई ऐतिहासिक पात्र-मानव-मूल्यों की ज्योति जलाने में समर्थ नहीं दीखता तो उपन्यासकार काल्पनिक पात्रों की सृष्टि करता है।”^{७५}

ऐतिहासिक उपन्यासकार मूलतः ऐतिहासिक परिवेश को उसके मूल्य, सौन्दर्य, सत्यता, सूक्ष्मता से प्रस्तुत करता है कि वह वर्तमान जीवन के साथ जुड़ जाता है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास युग के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं- वृन्दावन लाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, राहुल सांस्कृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर।

वृन्दावनलाल वर्मा की पूर्ण सृजनात्मक प्रतिभा ऐतिहासिक उपन्यासों को ही प्राप्त हुई है। उन्होंने 'गढ़ कुंडार' (१९२९ ई.), 'विराटा की पद्मिनी' (१९७६ ई.), 'झाँसी की रानी' (१९४६ ई.), 'कंचनार' (१९४८ ई.), 'मृगनयनी' (१९५० ई.) 'टूटे कांटे' (१९५४ ई.), 'अहिल्याबाई' (१९५५ ई.) 'भुवन विक्रम' (१९५७ ई.), 'माधवजी सिंधिया' (१९५७ ई.), 'रामगढ़ की रानी' (१९६१ ई.), 'महारानी दुर्गावती' (१९६४ ई.), 'कीचड़ और कमल' (१९६४ ई.), 'सोती आग' (१९६६ ई.) 'ललितादित्य', 'देवगढ़ की मुस्कान' (१९७३ ई.) आदि ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की। इसमें 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी', 'कंचनार' ने विशेष ख्याति प्राप्त की। 'गढ़ कुंडार' में १४ वीं शती के बुन्देलखण्ड के सामन्ती जीवन का जीवन्त चित्रण किया गया है। बुन्देलों का जातिगत गर्व, खंगारों की जातिगत हीनता निरुद्देश्यता वीरता, विश्वासघात, राष्ट्रीय भावना का अभाव, युद्ध की विभीषिका आदि उपन्यास में उभर कर आया है। इसके साथ ही कई प्रेम कथाएं भी उपन्यास की मुख्य कथा के साथ चलती हैं। 'विराटा की पद्मिनी' एक कलात्मक ऐतिहासिक उपन्यास है। विभिन्न घटनाओं को ऐतिहासिक सूत्रों के माध्यम से जोड़ा गया है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं, "मुगल शासन की निर्बलता, सामन्त राजाओं की स्वेच्छाचारिता, राजपूत राजाओं का विलास-जर्जर वीरत्व, नवाबों की लोलुपता राजपूत नारियों का उत्सर्ग, दरबारियों की चालबाजी तथा जनता की स्वतंत्र प्रियता, 'विराटा की पद्मिनी' में यह सभी कुछ साकार हो गया है। 'कुमुद' का व्यक्तित्व तो बड़ा ही महिमामय है। प्रेम का सहज संयमित रूप उसके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है। यह प्रेम जीवन में सक्रियता का संचार करता है और बलिदान की प्रेरणा देता है। उसके प्रति कुंजर का मूक समर्पण और त्याग प्रभावोत्पादक

है।^{७६} 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' उपन्यास चार खण्डों 'उषा के पुर्व', 'उदय', 'मध्याह्न और 'अस्त' में विभक्त है। पूरा उपन्यास रानी लक्ष्मीबाई के जीवन को विशुद्ध ऐतिहासिकता में प्रस्तुत करता है। 'कंचनार' में हासोन्मुखी सामन्त व्यवस्था के साथ ही नारी मनोविज्ञान तथा बालोचित चेष्टाओं की सफल अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यास में मुगल शासन के खत्म तथा अंग्रेजी शासन की स्थापना के मध्यकाल में उठनेवाले धार्मिक सम्प्रदायों को भी उपन्यास में सम्मिलित किया है। 'मृगनयनी' वर्मा जी की सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कला का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसकी कथा जटिल है। राजा मानसिंह राई ग्राम की अपूर्व सुन्दरी तथा तीरन्दाज लडकी से विवाह कर लेता है। उपन्यास जीवन और कला, स्वरूप और जनसेवा जैसे मुद्दों को लेकर चलता है। उपन्यास में कई ढेरों प्रासंगिक कथाएं भी हैं।

भगवती चरण वर्मा का उपन्यास चित्रलेखा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर गढ़ा गया है। उपन्यास में इतिहास की जगह पुण्य-पाप पर उठनेवाले दार्शनिक प्रश्न ज्यादा है। उपन्यास का वातावरण या देशकाल बदल भी दिया जाय तो उपन्यास की संरचना या उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। उपन्यास में समस्या प्रस्तुति के कारण चरित्रों के लिए स्थान नहीं मिल पाया है। उपन्यास की भाषा प्रांजल और दार्शनिक विचारों से भरी पड़ी है जिसके कारण कहीं-कहीं कथा बोझिल होने लगती है। मुख्यतः यह उपन्यास पूर्ण तथा ऐतिहासिक न होकर कुछ दार्शनिक उपन्यास है।

राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक उपन्यास 'सिंह सेनापति' (१९४४ ई.), 'जययौधेय' (१९४४ ई.), 'मधुर स्वप्न' (१९४९ ई.), 'विस्मृत यात्री' (१९५४ ई.), 'देवदास' (१९८० ई.) हैं। इसमें से 'सिंह सेनापति' ने विशेष ख्याति प्राप्ति की। इसमें लिच्छवि गणतंत्र की कहानी प्रस्तुत की गई है। सिंह सेनापति उपन्यास का

नायक है । वह राहुल सांस्कृत्यायन के आदर्शों का प्रतिमूर्त दिखाई पड़ता है । उपन्यास में राजतंत्र और गणतंत्र की तुलना करते हुए गणतंत्र की प्रधानता स्वीकार की गई है । रामदरश मिश्र लिखते हैं, 'मुख्य कथा इसमें अल्प है और उसी थोड़ी कथा को लेखक ने विश्राम करा-कराकर बहुत देर में मंजिल तक पहुँचाया है । बीच-बीच में अनावश्यक बातचीत और विनोद बहुत लम्बे रूप में चलते रहते हैं । उद्देश्य विशेष की सिद्धि के लिए उसमें बहुत सी ऐसी घटनाओं की सम्बद्धता में भी कमी आ गई है । इसमें अवान्तर घटनाएं मूल कथा में कोई विशेष योग नहीं देती । कथानक में कौतुहल का भी एकदम अभाव है । आगे आने वाली घटनाओं का स्पष्ट आभास पहले ही मिल जाता है क्योंकि इसमें मनोवैज्ञानिकता तो नहीं के बराबर है, विरोधी घटनाएं भी बहुत कम आती हैं तथा लेखक के पात्र, जिनके प्रति उसकी सहानुभूति है, हार खाना जानते ही नहीं ।' ७७

चतुरसेन शास्त्री के तीन उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' (१९४९ ई.) 'सोमनाथ' (१९५४ ई.) 'वयंरक्षामः' (१९५५ ई.) विशेष प्रसिद्ध हैं । 'वैशाली की नगरवधू' बुद्धकालीन भारत की उस गणतंत्र व्यवस्था का चित्र है जो समृद्ध थी किन्तु विलासिता और कुछ अमानवीय प्रथाओं के कारण हासोन्मुख होने लगी थी । इसमें 'अम्बपाली' के माध्यम से स्त्री की महिमा को प्रतिस्थापित किया है । स्त्री जीवन की कितनी बड़ी विडम्बना थी कि तत्कालीन समय में किसी नगर की सबसे सुन्दर स्त्री को नगरवधू बनकर रहना पड़ता था तथा वह पूरे नगर की सम्पत्ति समझी जाती थी । 'सोमनाथ' उपन्यास में गजनवी के सोमनाथ पर आक्रमण की कथा को प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास में गजनवी का चरित्र एक कवि, सहृदय, भावुक कवि के रूप में आया है जो उपन्यासकार की कल्पना से रंगा है । वयं रक्षामः में प्राग्वेद काल

की कथाएं ली गई हैं। इसमें वेद, ब्राह्मण, स्मृति, पुराण आदि के साथ ही मिश्र, मेसोपोयामिया, बैबीलोन, परसिया, यूनान आदि देशों की पुरातन कथाओं के सम्मिलित साक्ष्य पर देव, दैत्य, दानव, मानव, यक्ष, गरुड, बानर, महिष आदि प्रागैतिहासिक जातियों के जीवन एवं संस्कृति का काल्पनिक रूप खड़ा करके अतीत को रचा गया है।

यशपाल का 'दिव्या' (१९४५ ई.) उपन्यास ऐतिहासिक न होकर मात्र इतिहास की कल्पना से रंगा हुआ है। रामदरश मिश्र लिखते हैं, 'दिव्या इतिहास का विश्लेषण है, इसलिए ईसा पूर्व दूसरी शती की कथा आज भी हमसे कहीं न कहीं जुड़ती हुई अनुभव होती है। सामाजिक सम्बन्धों, परिस्थितियों, मूल्यों तथा व्यक्ति की नियति और जिजीविषा का जो स्वरूप इतिहास के इस अंचल में उभरा है। वह समय की लम्बी दूरियाँ पार करता हुआ हमें छू लेता है, हमारी निकट पहचान सा मालूम पड़ता है। इतिहास के रूप की तात्कालिकता, तो केवल उस चेतना को विश्वस्त आधार देने का नाम करती है जो इतिहास के एक बिन्दु से उठकर मनुष्य मात्र के मानवीय अनुभव से जुड़ जाती है। लेखक ने व्यक्ति और समाज के ढाँचे वेश विन्यास, आकार-प्रकार का बड़ा जीवन चित्र खींचा है, किन्तु उसका मूल उद्देश्य है सामाजिक सम्बन्धों, मूल्यों आदि की विसंगतियों और व्यक्ति की यातना, संघर्ष तथा गति का जीवन्त रूप प्रस्तुत करना।''^{७८}

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चार उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (१९४६ ई.) 'चारू चन्द्रलेख' (१९६३ ई.), 'पुनर्नवा' (१९७३ ई.) और 'अनामदास पोथा' (१९७६ ई.) लिखे हैं। अपने उपन्यासों में आचार्य द्विवेदी इतिहास की पुनर्रचना करते हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाणभट्ट के जीवन की रेखाएं,

तत्कालीन समाज व्यवस्था, आचार-व्यवहार, सामाजिक संस्कार, वेशभूषा, मनोविनोद पर्व एवं त्यौहार, धार्मिक वातावरण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। चारु चन्द्रलेख का नायक सातवाहन कोई प्रामाणिक व्यक्ति नहीं है। उपन्यासकार ने आधुनिकता के आईने से इतिहास को देखने का प्रयास किया है। इसमें तांत्रिक सत्यों को मनोवैज्ञानिक रूप देने का प्रयास किया गया है। 'पुनर्नवा' मध्यकालीन समय में हो रहे स्त्री शोषण के माध्यम से आधुनिक युग में हो रहे स्त्री शोषण को दिखाया गया है। 'अनामदास के पोथा' में रैक्क मुनि अपने जीवन की सार्थकता जनता की सेवा में समझते हैं। इसे रैक्क आख्यान के नाम से भी जाना जाता है। यह उपन्यास औपनिषदिक ज्ञान को लोकोपमुखी बनाने की कथा कहता है।

प्रगतिशील लेखक रांगेय राघव का ऐतिहासिक उपन्यास है 'मुर्दों का टीला' (१९४८ ई.) इसमें मोहनजोदड़ों की संस्कृति और सभ्यता को कथा का मुख्य आधार बनाया गया है। उपन्यासकार ने अपनी कल्पना से तत्कालीन सभ्यता और सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर श्रेष्ठि मणिबन्ध, दासी नीलुफर, आमेन-रा, विश्वजित, कलाकार विलिभितुर उसकी प्रेयसी वीणा, हेमा और उसकी प्रेमिका अपाप, राजकुमारी चन्द्रा आदि की कथा को प्रस्तुत करता है। रामदरश मिश्र लिखते हैं, "प्रस्तुत उपन्यास में कथानक बहुत ही रोचक और बेगवान होकर आया है। वह शोषक व्यवस्था से जन-जीवन के संघर्ष की कहानी है। इसके चरित्र अपने बाहरी और भीतरी दोनों रूपों में बड़े ही स्पष्ट, आकर्षक और व्यक्तित्व सम्पन्न हैं। लेखक ने चरित्रों के निर्माण में तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि का ध्यान तो रखा ही है आधुनिक मनोविज्ञान का भी सम्यक् उपयोग किया है। देशकाल के अंकन में बड़ी ही सजीवता है। शैली में प्रवाह- गाम्भीर्य और काव्योचित झनकार है।" ७९

अमृतलालने 'शतरंज के मोहरे' (१९५९ ई.) 'सप्त घुघट वाला मुखड़ा' (१९६८ ई.), 'एकदा नैमिषारण्ये' (१९७२ ई.), 'मानस का हंस' (१९७२ ई.), 'खंजन नयन' (१९८१ ई.), 'करवट' (१९८५ ई.) 'पीढियाँ' (१९९० ई.) आदि उपन्यासों में इतिहास के माध्यम से अतीत को वर्तमान से जोड़ने का प्रयास किया है। इसमें शतरंज के मोहरे तथा मानस का हंस को विशेष प्रसिद्धि मिली। शतरंज के मोहरे उपन्यास में उपन्यासकार ने लखनऊ के बादशाह नाजीउद्दीन हैदर उसकी बेगम बादशाह बेगम एवं शाहजादा नसीरुद्दीन के माध्यम से उस काल के कमजोर और नपुंसक बादशाहों की मानवीय यातना, अन्तर्द्वन्द्व और असफल आक्रोश के साथ ही षडयन्त्र, धोखा, प्रेम को जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया है। 'मानस का हंस' एक सार्थक और विशिष्ट उपन्यास है। यह तुलसी के जीवन पर आधारित ऐसी सर्जनात्मक कृति है जिसे ऐतिहासिकता की छाया नहीं चाहिए। उपन्यास में तुलसी की कथा तुलसी के माध्यम से ही कही गयी है जिसमें बेनीदास तथा बाल सखा राजा भगत सहयोग प्रदान करते हैं। कथाक्रम इतिहास के अनुसार ही है।

० आंचलिक उपन्यास

आंचलिक उपन्यास अंचल विशेष की कथा को प्रस्तुत करते हैं। आंचलिक उपन्यासकार उस अंचल विशेष का भोक्ता या समीप द्रष्टा होता है। वह अपने पूरे विश्वास के साथ वहाँ के पात्रों, वहाँ की समस्याओं, प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। आंचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष ही नायक की भूमिका में रहता है। उसके माध्यम से ही अंचल की बाहरी तथा आंतरिक कथा उभर कर आती है। आंचलिक उपन्यास की गति बहुदिशाओं में होती है। उपन्यासकार अंचल को कई कोणों से देखता है। इसी कारण यहाँ पात्रों का जमघट लगा रहता

है । इनमें से सभी पात्रों का आपसी संबंध गौण तथा अंचल से मुख्य होता है । आंचलिक उपन्यास का एक मात्र उद्देश्य होता है । अंचल के व्यक्तित्व के एक-एक पहलू को उजागर करना । रामदरश मिश्र लिखते हैं, “अंचल के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कहीं मोटी रेखाएं खींचता है, कहीं पतली, कहीं अवकाशों को भरने के लिए दो-चार बिन्दु अपनी तुलिका से झाड़ देता । अनेक पर्वों, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों व्यथा के अवसरों, गीतों, संघर्षों, प्रकृति के रंगों, पुराने-नए-जीवन मूल्यों आदि से लिपटा हुआ अंचल का जीवन अभिव्यक्ति के एक नए माध्यम की अपेक्षा करता है ।”

नागार्जुन आंचलिक एवं समाजवादी उपन्यास के बीच की कड़ी है । उनके उपन्यासों का मूल स्वर समाजवादी ही है । नागार्जुन प्रगतिशील लेखक और कवि है । अतः उनके पात्र जनसामान्य ही हैं । इनके प्रमुख उपन्यास हैं- ‘रतिनाथ की चाची’ (१९४८ ई.), ‘बलचनमा’ (१९५२ ई.), ‘नई पौध’ (१९५३ ई.), ‘बाबा बटेसरनाथ’ (१९५४ ई.), ‘दुःखमोचन’ (१९५७ ई.), ‘वरुण के बेटे’ (१९५७ ई.) ‘रतिनाथ की चाची’ की कथाभूमि मिथिला की है । उपन्यास की नायिका रतिनाथ की विधवा चाची गौरी है । उपन्यास में ग्रामीण जीवन की सामाजिक विषमता, संकीर्ण, विश्वासमयता, स्वार्थमयता के बीच गौरी की यातना और दुःख का सजीव चित्रण मिलता है । ‘बलचनमा’ जमींदार के यहाँ नौकरी कर रहे बलचनमा की कथा है । बलचनमा किसान जीवन की समस्त पीड़ाओं का साक्षी बनता है । पूरे उपन्यास में किसान का दुःख-दर्द और संघर्ष भरा पड़ा है । ‘नई पौध’, में कुछ युवा वृद्ध विवाह जैसी प्रथा का प्रबल विरोध करते हैं । ‘बाबा बटेसरनाथ’ उपन्यास में उपन्यास का कथावाचक बूढ़ा बरगद जैकिसुन के गाँव की कई पीढ़ियों और उनके क्रमिक विकास

की कहानी कहता है। 'दुःखमोचन' सामान्य उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमें मध्यवर्गीय पात्र दुःखमोचन के परोपकार तथा जनसेवा कार्य का आदर्शवादी वर्णन मिलता है। 'वरुण के बेटे' में मछुओं के जीवन की कथा है। इसमें मछुओं के जीवन संघर्ष और जागरण की कहानी है।

फणीश्वरनाथ प्रमुख आंचलिक उपन्यासकारों में से एक है। इनके प्रमुख उपन्यास 'मैला आंचल' (१९५४ ई.), 'परती परिकथा' (१९५७ ई.) हैं। 'मैला आंचल' में पूर्णियाँ जिले के मेरीगंज गाँव को कथा का केन्द्र बनाया गया है। मेरीगंज बड़ा गाँव है। यह तन्त्रिमा क्षत्रिय, कुशवाहा, क्षत्रिय, अमात्य ब्राह्मण तथा रैदास आदि टोलियों में विभक्त है। सन्थाल टोली को गाँव से अलग माना जाता है। गाँव हर स्तर पर पिछड़ा हुआ है। डॉ. प्रशान्त गाँव में मलेरिया सेन्टर चलाने आता है। जमींदार की पुत्री से प्रेम कर शादी पूर्व ही पिता बनता है। जमींदारों तथा सन्थालों के संघर्ष में जेल भी जाता है। अन्त में मेरीगंज का ही होकर रह जाता है। इस मुख्य कथा के साथ ढेरों छोटी कथाएं साथ में चलती हैं। उपन्यास में अंचल एक नायक की तरह उभरता है। यह उपन्यास शिल्प में एक नया याय जोड़ता है। 'परती परिकथा' रेणु का दुसरा प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें देश की स्वतंत्रता के बाद १९५३-५६ ई. की कथा समेटी गई है। उपन्यास का केन्द्र 'परानपुर' गाँव है। उपन्यास गाँव की कथा न कहकर गाँव के पश्चिम में फैले कोशी की भयानक बाढ़ से पैदा हुई परती की कथा कहता है। रेणु के अन्य उपन्यास हैं, 'दीर्घतपा' (१९६० ई.) 'जुलूस' (१९६५ ई.), 'कितने चौराहे' (१९६६ ई.) और 'पल्टूबाबु रोड' (१९७९ ई.)।

आंचलिक उपन्यासों में कुछ उपन्यासों का अपना विशिष्ट महत्व है। इसमें

उदशंकर भट्ट के 'सागर लहरें' और मनुष्य' रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' देवेन्द्र सत्यार्थी के ब्रह्मपुत्र, शैलेश मटियानी के 'हौलदार', राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' उल्लेखनीय है। 'सागर लहरें' और मनुष्य (१९५५ ई.) में बम्बई महानगर के पश्चिमी तट पर बसे मछुओं के गाँव बरसोवा को चित्रित किया गया है। उपन्यास मछुआरों के जीवन संघर्ष, अभाव, शक्तिहीनता, संगति, विसंगति की प्रमाणिक कहानी कहता है। 'कब तक पुकारूँ' (१९५७ ई.) में नटों के जीवन को चित्रित किया गया है। 'ब्रह्मपुत्र' (१९५६ ई.) उपन्यास असम के लोकजीवन पर आधारित है। इसकी कथा स्वतंत्रता के पहले की है। 'हौलदार' उपन्यास में कुमायूँ के पर्वतीय अंचल की कथा कही गई है। इसका नायक डूंगर सिंह की जीवन कथा है जो हवलदार बनने की इच्छा से फौज में जाता है और ट्रेनिंग में ही दुर्घटना में अपने पैर से तथा तन से लगडा होकर वापस आ जाता है। 'जंगल के फूल' मध्यप्रदेश की जंगली जातियों का जीवन संघर्ष चित्रित हुआ है। 'जंगल के फूल' मध्यप्रदेश की जंगली जातियों का जीवन संघर्ष चित्रित हुआ है। जंगल के आदिवासी अपनी वर्तमान स्थिति सेक्सन्तुष्ट तथा सामाजिक और राजनीतिक शोषण के विरुद्ध एकजुट है। 'पानी के प्राचीर' (१९६१ ई.) गोरखपुर जिले के दो नदियों से धिरे हुए एक पिछड़े भू-भाग की कथा प्रस्तुत करता है।

निःसन्देह स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास जिसे प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास युग भी कहा गया कथा की दृष्टि से ही नहीं अपनी शिल्प दृष्टि के कारण भी महत्वपूर्ण है। आत्मकथात्मक शैली, पत्र शैली, डायरी शैली रिपोतार्ज शैली, रेखाचित्र शैली का कुछ मिली जुली शैलियों के भी उपन्यास लिखे गये। चरित्र-चित्रण में चेतना प्रवाह, दीर्घदीप्ति, मुक्त आसंग, स्वप्न विश्लेषण, आदि शैलियों का प्रयोग किया गया है।

प्रेमचन्दोतर उपन्यास साहित्य शैली के साथ ही कथा मामले में विभिन्नता रखता है। इस युग में मनोविश्लेषणात्मक, व्यक्तिवादी, मानववादी, पकृतिवादी, सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पौराणिक, आंचलिक आदि विभिन्न प्रकार के उपन्यास लिखे गये। प्रेमचन्दोतर उपन्यास साहित्य ने हिन्दी साहित्य इतिहास को समृद्ध करने के साथ ही उपन्यास लेखन को एक नई दिशा भी प्रदान की।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास-साहित्य की सतत, अविरत धारा कई मोड़ों पड़ावों से गुजरती आज अलग-अलग आयामों में अपना अस्तित्व बनाये रखी है।

संदर्भ

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. १५५
२. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, डॉ. प्रतापनारायण टंडन, पृ. ११
३. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल, राम शोमितप्रसाद, पृ. १७
४. हिन्दी विश्वकोश, भाग-२, सं. डॉ. नगेन्द्रनाथ वसु, पृ. ३२६
५. चेम्बर्स कनसाइज डिक्सनरी, आर.एन. सचदेव, पृ. ६६०
६. हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ, डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय, पृ. १५
७. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. ४७
८. काव्य के रूप, बाबू गुलाबराय, पृ. १५५
९. साहित्यालोचन, डॉ. श्यामसुन्दरदास, पृ. ११२
१०. साहित्यालोचन, डॉ. श्यामसुन्दरदास, पृ. ११०
११. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. ६
१२. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ. १४३
१३. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. १३
१४. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ५१३
१५. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल, डॉ. रामशोमितप्रसाद सिंह, पृ. २५
१६. हिन्दी उपन्यास कला, डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. २२
१७. हिन्दी उपन्यास का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. रमेश तिवारी, पृ. ३४
१८. हिन्दी गद्य साहित्य का विकास, डॉ. आशा मेहता, पृ. ६३
१९. हिन्दी के महाकाव्यक उपन्यास, डॉ. शंकर वसंत मुद्गल, पृ. १८
२०. हिन्दी उपन्यास कला, डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. २०

२१. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. १२-१३
२२. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. ४०
२३. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, डॉ. शिवदानसिंह चौहान, पृ. १६३
२४. न्यू इंटरनेशनल डिक्सनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज, वेबस्टर, पृ. १६७०
२५. साहित्य का साथी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. ७५
२६. साहित्यालांचन, डॉ. श्याम सुन्दरदास, पृ. २८
२७. हिन्दी उपन्यास : स्वातन्त्र्य संग्राम के विविध आयाम, डी.डी. तिवारी, पृ. ६९
२८. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. ७९
२९. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, डॉ. शिवदानसिंह चौहान, पृ. १६३
३०. आधुनिक हिन्दी साहित्य में वस्तु-विन्यास, डॉ. सरोजनी त्रिपाठी, पृ. १८
३१. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. ८२
३२. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ. १२५
३३. हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत, डॉ. नरेन्द्र कोहली, पृ. २७३
३४. अ ट्रीटाइज ओन द नोवेल, रोबर्ट लिडेल, पृ. १४
३५. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. ८१
३६. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. ८२
३७. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. ११३
३८. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ४५५
३९. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. १७३
४०. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. ४३
४१. प्रेमचंद की उपन्यासकला का उत्कर्ष : डॉ. कृष्णदेव झारी, पृ. २२

४२. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. १७६
४३. काव्य के रूप, बाबू गुलाबराय, पृ. १८१
४४. प्रेमचंद की उपन्यास कला का उत्कर्ष : डॉ. कृष्णदेव झारी, पृ. २३
४५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. ४८४
४६. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ. १३८
४७. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, डॉ. गणेशन, पृ. ६०
४८. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ. १८२
४९. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. ५८३
५०. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृ. १२२
५१. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल, डॉ. रामशोमित प्रसाद सिंह, पृ. २५९
५२. हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ. १००
५३. द आर्ट ऑफ फ्रेन्च फिक्शन, मार्टिन टर्नेल, पृ. ९५
५४. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ. ७५
५५. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ. ३१.
५६. प्रेमचन्द, कुछ विचार पृ.१०४ (उद्धृत) डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी उपन्यास,
पृ.२४
५७. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.७१
५८. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.७८
५९. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.८५
६०. जैनेन्द्र, कहानी: अनुभव और शिल्प, पृ.६४,६५
६१. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी उपन्यासों का विकास, पृ.५७

६२. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.९५
६३. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.१०३
६४. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.१०६
६५. वही, पृ.१०९
६६. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ.१८३
६७. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.२३२
६८. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.१२६
६९. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.१२७
७०. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.१३१
७१. वही, पृ.१३४
७२. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.१४६
७३. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.१५०
७४. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ.२२९
७५. नन्द दुलारे वाजपेयी, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ.४३०
७६. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.१९०
७७. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी उपन्यास, पृ.९५
७८. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.२००
७९. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.२०४, २०५
८०. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा, पृ.२२६

तृतीय अध्याय

समाज एवं संस्कृति : तात्त्विक विवेचन

० समाज का स्वरूप

‘समाज’ शब्द ‘समष्टि’ की भाँति व्यापक है। यह विभिन्न अर्थों का संवाहक है, जिनकी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, जन-प्रचलित अर्थ एवं द्वितीय वैज्ञानिक अर्थ।

सामान्य: जनता में ‘समाज’ शब्द से अभिप्राय ‘कुछ व्यक्तियों का समूह’ समझा जाता है यथा-आर्यसमाज अर्थात् आर्यों का समूह, नागर-समाज अर्थात् नागरों का समूह, वानर समाज अर्थात् वानरों का समूह आदि।

हिन्दी के अधिकांश शब्द कोषों में भी समाज का ऐसा ही अर्थ मिलता है। कुछ प्रमुख शब्द कोषों में प्रदत्त अर्थ निम्नस्य है-

‘प्रामाणिक हिन्दी कोष’ में ‘समाज’ शब्द का अर्थ है- ‘समाज-पु. (सं.) (१) समूह, गिरोह (२) एक जगह रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का काम करने वाले लोगों का वर्ग, दल या समूह या समुदाय (३) किसी विशेष उद्देश्य से स्थापित की हुई सभा (सोसायटी, उक्त सभी अर्थों में)।^१

‘हिन्दी विश्वकोष’ में ‘समाज’ शब्द का अर्थ ‘समाज’- (सं.पु.) संवीयतेडत्रेति संजपत्र। (अजैवीघंडपौ:। प २/४/५६।) इति विभावी न। अजिब्रज्योरच। (मा ७/३/६१/) (१) समूह, संघ, गिरोह, दल (२) सभ्य (३) वैष्णवों का समाधि स्थान। (४) हस्ती, हाथी (५) एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसायादि करनेवाले वे लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते हैं, समुदाय (६) ब्राह्मणादि वर्ण की समा।^२

‘बृहत् हिन्दीकोष’ में ‘समाज’- पु. (सं.) मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति, आधिक्य, समान कार्य करने वालों का समूह, विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघटित संस्था, ग्रहों का योग, हाथी ।^३

‘भाषा शब्दकोष’ में ‘समाज’- संज्ञा (पु.) (सं.) समूह, सभा, समिति, दल, वृन्द, समुदाय, संस्था, एक स्थान निवासी तथा समान आचार विचार वाले लोगों का समूह, किसी विधेय उद्देश्य या कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की बनायी या स्थापित की हुई सभा, आर्य समाज । ‘कोऊ आज राम-समाज में बलशंभु को धनुर्कर्षि है ।’ राम ।^४

‘तुलसी शब्दसागर’ में, ‘रामचरितमानस’ में प्रयुक्त ‘समाज’ शब्द का अर्थ निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

‘समाज’ (१) लोगों का समूह, (२) समूह, (३) सभा, मंछली, परिषद् (४) उत्सव, जुलूस या अन्य कोई समारोह, (५) तैयारी, (६) सामान ।

‘रामचरितमानस’ की ‘राजत राज समाज मंह कौसल राजकिसोर’ (मा. १/ २४२) एवं ‘सिव समाज जब देखन लागे’ इन दो अर्द्धालियों में ‘समाज’ शब्द का प्रयोग क्रमशः सभा एवं समूह के अर्थ में हुआ है ।^५

संस्कृत भाषा के शब्दकोषों में भी समाज शब्द का अर्थ हिन्दी शब्दकोषों में वर्णित अर्थ से मिलता-जुलता ही है । ‘हलायुधकोषः’ एवं ‘ए प्रेक्विकल संस्कृत डिक्शनरी’ में ‘समाज’ शब्द का अर्थ निम्नस्य है-

१. हलायुधकोष- ‘समाज’- पु. (संवीयते त्रेति । सम्+अज्=धज् अजेव्यं धपोः, ‘इति विभावो न’ । ‘अति ब्रजज्योदच’ इति कुस्तव निषेधः) पशुभिन्नानां संघः संघातः उत्करः, हस्तीः, (७४५) समा, संसत,

आस्थानी, परिषत्, सदः धर्मव्यतिक्रमो हास्य समाजस्य ध्रुवं भवते ।

पत्रा धर्मः संयुक्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिंचित... इति भागवते । (६८६)^६

२. 'ए प्रेक्टीकल संस्कृत डिक्शनरी'- 'समाज' (sam-aja, m (conccourage) assembly, company (ord, mg) encounter- ing, meeting with (g-) maltitude, abundance.⁷

उपर्युक्त आधार पर कहा जा सकता है कि 'समाज' शब्द का जन प्रचलित अर्थ है- समूह, समुदाय, सभा, सभ्य, संस्था आदि ।

'समाज' शब्द का विस्तृत और विज्ञानिक विश्लेषण समाजशास्त्रियों ने किया है । उनके अनुसार समाज, समूह, समुदाय एवं सभा, शब्दों में पर्याप्त अन्तर है । समाज-शास्त्रीय परिकल्पना के परिप्रेक्ष्य में 'समाज' शब्द की परिभाषा विविध प्रकार से की गयी है । परन्तु आज भी कोई सर्वस्वीकृत एवं सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नहीं है । तथापि समाज-शास्त्रियों की परिकल्पना को कालक्रम एवं प्रस्तुतीकरण की सुविधा की दृष्टि से तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है ।

- (क) प्रथम समूह- सोलहवीं शताब्दी के पूर्व के समाजशास्त्रियों की समाज सम्बन्धी परिकल्पना (ख) द्वितीय समूह- सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक के समाजशास्त्रियों की समाज सम्बन्धी परिकल्पना एवं (ग) तृतीय समूह- उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के विद्वानों की समाज सम्बन्धी परिकल्पना ।

- क. सोलहवीं शताब्दी के समाजशास्त्रियों ने 'समाज' शब्द की दो प्रकार से व्याख्या की है ।

१. व्यापकतम अर्थों में 'समाज' शब्द 'मनुष्यों के मध्य सामाजिक सम्बन्धों

की सम्पूर्णता' को व्यक्त करता है ।

२. 'समाज' दोनों लिंगों एवं सभी आयु के मानव प्राणियों के ऐसे स्वतः सतत् प्रवाहमान समूह को समझा जा सकता है जो साथ-साथ रहने के लिए बाध्य है तथा जिसकी कम या अधिक अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं संस्थाएँ हैं ।^५
- ख. सोलहवीं शताब्दी तक राजनीतिक एवं सामाजिक-सैद्धांतिक व्यवस्था में 'समाज' राजनीतिक समुदाय से पृथक् नहीं समझा जाता था । सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दी के धार्मिक एवं राजनीतिक विकास की अवधि के मध्य एक व्यावर्तन विकसित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप फ्रेंच एवं अंग्रेज विचारकों ने 'समाज' एवं 'राज्य' दोनों को सह-स्थित से अधिक नहीं समझा । राज्य समाज के विस्तृत 'अस्तित्व का केवल एक अंश था । इस काल के विचारकों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि 'समाज' एवं 'राज्य' की पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र सत्ता वाले शब्द बन गये । 'समाज' के स्थान पर 'राज्य' एवं 'राज्य' के स्थान पर 'समाज' शब्दों का दुरुपयोग होना बन्द हो गया । इससे पूर्व ऐसा होता था ।
- ग. उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक समाजशास्त्र एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में स्थान नहीं ग्रहण कर पाया था । इस काल के विद्वानों के मतानुसार 'समाज' मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाले समूह' के रूप में था । काम्टे तथा स्पेन्सर ने आग्रहपूर्वक कहा है कि 'समाज' कुछ व्यक्तियों का संगठित नाम नहीं है परन्तु एक विशिष्ट

‘सत्ता’ है, जो उससे सम्बन्धित व्यक्तियों की व्यवस्था करती है ।^९

इसी काल में कुछ विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया कि ‘समाज’ आवश्यक रूप से अलौकिक शक्ति का गोचर पदार्थ है जिसकी मानव मनोविज्ञान के रूप में व्याख्या की जा सकती है एवं साथ ही वह एक ऐसा अवयव है जिसका न्यायोचित अन्वेषण किया जाना चाहिए परन्तु ये सभी विद्वान समाज के वास्तविक स्वरूप पर सहमत नहीं हो पाते हैं ।

बीसवीं शताब्दी के विद्वानों की ‘समाज’ सम्बन्धी विचारधारा में पर्याप्त मत वैभिन्न्य पाया जाता है । इस काल में समाज के सर्वाधिक व्यापक अर्थ के रूप में ‘विस्तृत मानवता’ या ‘मानव-जाति’ अथवा ‘मानव संगम का प्रामाणिक आधार’ शब्दों का उल्लेख मिलता है । एम. निन्सबर्ग,^{१०} आर.ऐम.मैकाइवर^{११} तथा टी. पार्सन्स^{१३} सभी ने लगभग यह मत व्यक्त किया है कि सामाजिक सम्बन्धों की पूर्ण बनावट ही समाज है । इस काल के डबल्यू. जी. समर एवं ए.एस.किलर^{१४} जैसे समाजशास्त्रियों ने ‘समाज’ एवं ‘एक समाज’ शब्द के मध्य व्यावर्तन प्रस्तुत किया । इनकी दृष्टि में ‘एक समाज’ ऐसे मानव प्राणियों का समूह है जो अपनी जाति की निरंतरता के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए सहयोगपूर्ण प्रयासों में जीवित रहता है ।

डबल्यू.जी.समर एवं ए.एस.किलर की भांति दूसरे विद्वानों ने सहयोग पर बल नहीं दिया । आर.लिंगनने^{१५} ‘एक समाज’ की परिभाषित करते समय कहा, ‘एक समाज’ ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो पर्याप्त समय तक साथ-साथ रहकर कार्य कर चुके हैं अथवा स्वयं को सुपरिभाषित सीमाओं में आबद्ध करके एक सामाजिक इकाई के रूप में विचार करते हैं ।

गिन्सबर्ग जैसे अनेक विद्वानों ने ‘समाज’ एवं ‘एक समाज’ एवं अन्य समूहों

के मध्य व्यावर्तन विस्मृत करते हुए 'समाज' की 'एक समाज' जैसी ही परिभाषा प्रस्तुत की है। निम्नवर्ग के शब्दों में 'समाज' सुनिश्चित सम्बन्धों एवं व्यवहार की पद्धतियों के सुसम्बद्ध व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो दूसरे व्यक्तियों से 'सहज ही अलग पहचाना आ सके।

इसी प्रकार जी. मिसले^{१६} ने भी 'एक समाज' एवं 'समाज' शब्द में कोई भेद न मानते हुए लिखा है- 'एक समाज' ऐसे व्यक्तियों की एक ऐसी संस्था है जो अंतः क्रियाओं से सम्बद्ध है।

उपर्युक्त कुछ परिभाषाओं में 'समाज' की परिभाषा 'समाज' के एक 'समूह' के रूप में की गई है। इस भ्रामकता को दूर करने के लिए ए.हबल्यु. ग्रीन.एस.बिल्सन एवं डबल्यु एल. कोल्फ ने प्रयास किया। ए.डबल्यु ग्रीन^{१७}, के शब्दों में 'समाज' सबसे बड़ा समूह है जिससे एक व्यक्ति सम्बन्ध रखता है।'

एस. विल्सन एवं डबल्यु.एल. कोल्फ^{१८} के शब्दों में 'समाज' एक ऐसा समूह है जिसके अंतर्गत सदस्य सामान्य जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं एवं दशाओं को पूर्ण करता है।

आर.इ.पार्क एवं ए.डबल्यु.वर्गस^{१९} ने समाज की और भी अधिक व्यापक स्तर पर परिभाषा की है। उनके मतानुसार, 'समाज मानव के सामुदायिक व्यवहार के लिए आवश्यक घटनाओं, रूढ़ियों, परम्पराओं, मनोभावों, आदतों एवं संस्कृति की सामाजिक विरासत है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज सामाजिक सम्बन्धों का पाश्व है। मनुष्यों की पारस्परिक क्रियाएं, अन्तःक्रियाएं एवं प्रतिक्रियाएँ ही समाज का निर्माण एवं विकास करती है। इनके माध्यम से ही समाज

की पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को उसके कल्याण के लिए अपने अनुभव हस्तांतरित करती है ।

० सांस्कृतिक स्वरूप

‘संस्कृति’, इन्द्रधनुष की भांति सतरंगी शब्द है । भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने इसकी विविध प्रकार से व्याख्या प्रस्तुत की है । ज्ञान की विचित्र शाखाओं, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मानव-शास्त्र, समाज-शास्त्र एवं मनोविज्ञान के ग्रंथों में संस्कृति की विविधमुखी विवेचना मिलती है ।

० संस्कृति सम्बन्धी भारतीय अभिमत

‘हिन्दी शब्दकोष’ में संस्कृति शब्द का अर्थ इस प्रकार है- संस्कृति (सं. स्त्री) सं- कृ-क्रिन् । १. शुद्धि-सफाई २. संस्कार, सुवार, परिष्कार ३. सजावट, आराइश ४. सभ्यता, रहन-सहन आदि की रुढ़ि, शाइस्तंभी ५. २४ वर्णों के वृत्तों की संज्ञा ।^{१०}

‘हिन्दी साहित्य कोष’ में संस्कृति शब्द की व्याख्या अपेक्षाकृत व्यापक दी गयी है। इस कोष में ‘संस्कृति’ शब्द का अर्थ- संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (ल) धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साम्य या परिष्कृत करना है । आज की हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द ‘कल्चर’ का पर्याय माना जाता है । संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं ।^{११}

हिन्दी के इतर विद्वानों ने ‘संस्कृति’ शब्द का अर्थ मानव-मूल्यों, विचारों एवं संस्कारों के रूप में प्रस्तुत किया है । श्री परशुराम चतुर्वेदी ‘संस्कृति’ की व्यक्तिपरक एवं समाजपरक व्याख्या करते हुए कहते हैं कि- ‘संस्कृति’ शब्द किसी व्यक्ति के पक्ष में बहुधा उसकी शिष्टता, सौजन्यता अथवा मानवता का बोधक होता है और

इन गुणों द्वारा उसकी किसी ऐसी स्थायी मनोवृत्ति वा ऐसे शील का पता चलता है जिसके कारण वह समाज में स्वभावतः उच्च कोटि का गिना जाता है ।^{२२}

डा. एन.के.देवराज के मतानुसार- ‘मानवता के आध्यात्मिक जीवन की सर्जना अथवा इसमें भाग लेने को संस्कृति कह सकते हैं । यदि हम इसे एक उपलब्धि समझें तो यह मानव की निरंतर विकसित होनेवाली ऐतिहासिक वस्तु है । संस्कृति का विकास मानव के आध्यात्मिक ज्ञान एवं भावों के प्रगतिशील संशोधन के क्रमिक विकास में सन्निहित है ।^{२३}

बाबु गुलाबराय एवं श्री गुरुदत्त ‘संस्कृति’ शब्द का संस्कारों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहते हैं कि- ‘संस्कृति’ शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना, अंग्रेजी शब्द ‘कल्चर’ में वहीं धातु है जो एंग्रीकल्चर में है । इसका भी अर्थ पैदा करना या सुधारना है । संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी । जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं ।^{२४}

श्री मुदत संस्कारों से उत्पन्न व्यवहार को संस्कृति बताते हैं ।^{२५}

डा. रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति की परिभाषा के स्थान पर संस्कृति एवं सभ्यता का व्यावर्तन प्रस्तुत किया है । उनकी दृष्टि में ‘संस्कृति’ सभ्यता की अपेक्षा महान चीज होती है । यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध । सभ्यता की अपेक्षा यह अधिक टिकाऊ भी होता है क्योंकि सभ्यता की सामग्रियाँ टूट-फूट पर विनष्ट हो सकती हैं लेकिन ‘संस्कृति’ का विनाश उतनी आसानी से नहीं किया जा सकता ।^{२६}

उपर्युक्त समग्र परिभाषाओं के सर्वेक्षण के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि भारतीय विचारकों ने संस्कृति शब्द का विवेचन शुद्धि, संस्कार, परिष्कार,

दर्शन, चिंतन, कला एवं आध्यात्मिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में किया है ।

० संस्कृति सम्बन्धी पाश्चात्य अभिमत

जे.सी.शैरप ^{२७} 'संस्कृति' की विवेचना करते हुए इसके दो कर्तव्यों पर बल देते हैं । आपके मतानुसार 'संस्कृति' मानव के समक्ष उच्च आदर्श एवं लक्ष्य प्रस्तुत करती है जो मानव के जीवन में प्रविष्ट होकर उसे नियन्त्रित करते हैं । दूसरे यह उस लक्ष्य को कुछ अंशों में अनुभव कराने के लिए मानव समग्र अवयवों, समस्त आन्तरिक शक्तियों एवं बाह्य यन्त्रों-हाथ-पाँव, नेत्र एवं कर्ण आदि को प्रशिक्षित करती है ।

हक्सले महोदय संस्कृति की व्याख्या करते समय सुसंस्कृत व्यक्ति के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- 'वास्तविक सुसंस्कृत मस्तिष्क वह है जो प्रकृति के मूलभूत सत्तों के ज्ञान एवं उद्यमों के नियमों से कोषान्वित है, जिसकी वासनायें दृढ-संकल्प से परिचालित होने के लिए प्रशिक्षित है, (जो) कोमल अंतःकरण का सेवक है (जो) प्रकृति अथवा कला एवं सब प्रकार के सौन्दर्य को स्नेह करना, सब प्रकार की नीचता को धृणा करना एवं स्वयं के समान दुसरो का सम्मान करना सीख चुका है ।'^{२८}

जॉन कॉपर पॉवस, सीले डॉ. आर.रीचर्ड्स नाइबर एवं टी. एस. इलियट प्रभूति विद्वानों ने संस्कृति को धर्म का स्थानापन्न रूप मानकर व्याख्या की है । इनकी दृष्टि में धर्म एवं संस्कृति की व्याख्या एक साथ ही की जा सकती है । इन चार विद्वानों के अभिमत इस प्रकार है-

अंग्रेज विद्वान जॉन कॉपर पॉवस ने संस्कृति की प्रकृति का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है । संस्कृति के सम्बन्ध में आपका मत है कि 'संस्कृति' बोधशील

होती है जो पराजय को स्वीकार कर सकती है एवं पराजय को विजय में परिवर्तित कर सकती है। साथ ही (संस्कृति) जाति, प्रजाति एवं राष्ट्र से ऊपर उठाने वाली सार्वभौमिक वस्तु है।”^{२९} इसी ग्रन्थ में कॉपर महोदय संस्कृति पर विचार करते हुये लिखते हैं, “यहाँ पर ‘संस्कृति’ की जिस वास्तविक प्रकृति को परिभाषित कर रहे हैं वह धर्म के स्थानापन्न की अपेक्षा कुछ नहीं है।”^{३०}

सीले ने कहा है, “वस्तुतः आधुनिक जगत में संस्कृति की शिक्षा एवं सिद्धान्त के विकास के मध्य धार्मिक संस्थाओं के पुनर्जीवन की प्रक्रिया के चिन्ह अपेक्षाकृत अधिक हैं जिन्हें हम धर्म के सच्चे पुनर्जीवन एवं सांसारिक प्रपंच की सच्ची विषहर औषधि के रूप में देखते हैं।”^{३१}

टी.एस.इलियट संस्कृति एवं धर्म का सम्बन्ध बताते हुए लिखते हैं- धर्म के अभाव में कोई संस्कृति प्रकटित अथवा विकसित नहीं हुई^{३२} आपके मतानुसार, ‘संस्कृति केवल विविध कार्यों का संचय ही नहीं बल्कि जीवन की पद्धति है।’^{३३}

सीले एवं टी.एस.इलियट की भांति डॉ. रिचर्डस नाइवर लिखते हैं, प्रश्न धर्म अथवा संस्कृति का ही नहीं है बल्कि दोनों का है। संस्कृति एवं धार्मिक ग्रन्थों की नीति प्राकृतिक नियमों से सम्बद्ध है और संस्कृति ईश्वर प्रदत्त स्वभाव में ईश्वर प्रदत्त बुद्धि का कर्म है।^{३४}

महान दार्शनिक टालस्टाय ने संस्कृति, कला, विज्ञान, सब प्रकार की कोमलता एवं आचरण की परिपूर्णता का विरोध किया है, क्योंकि इनकी इतनी विभिन्न विधियाँ हैं जिनमें मानव के सामान्य स्वभाव का विरोध किया जाता है एवं उसे ठगा जाता है।^{३५}

वस्तुतः टालस्टाय की वास्तविक श्रद्धा, परम्परागत, मौखिक, सम्प्रेषित, सांस्कृतिक, मूल्यों की अजस्र धारा में है, जिसके द्वारा विशाल मानव जाति के बहुसंख्यक वर्ग का भाग्य सदैव दिग्दर्शित होता रहा है।^{३६} टालस्टाय के इस मन्तव्य से स्पष्ट है कि सामान्य जनता में प्रचलित आस्था, विश्वास, परम्परायें एवं रीतिरिवाज ही समाज की वास्तविक संस्कृति का निर्माण करते हैं। इन्हें सीखने के लिए मानव को किसी शिक्षालय की शरण नहीं लेनी पड़ती। बल्कि व्यक्ति अपने पूर्वजों के मुँह से सुनकर एवं विस्तृत समाज में व्यक्तियों को वैसा करते हुए देखकर संस्कृति को ग्रहण करता है।

० संस्कृति एवं मार्क्स

वैचारिक जगत में कार्ल मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा का महत्वपूर्ण योगदान एवं स्थान है। कार्ल मार्क्स ने स्वतः संस्कृति या संस्कृति के स्वरूप का कोई स्पष्ट विवेचन कही नहीं किया तथापि साम्यवादी विचारक कैलवेज, जे.बाई. के मतानुसार इस क्षेत्र में उसका (मार्क्स का) प्रमुख योगदान सर्वोत्कृष्ट मूल्यों एवं सत्य, शिव, एवं सौन्दर्य सदृश मानवोपरि शून्य तथा सारहीन शब्दों की निरर्थकता प्रतिपादित करना था।^{३७}

ईडन तथा सैडलर पाल^{३८} दो साम्यवादी विचारकों के अनुसार, 'यह सत्य है कि संस्कृति अपने व्यापकतम अर्थों में उन समग्र उपलब्धियों को समाविष्ट करती है, जिनके द्वारा मानव प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त कर चुका है, (जिनके द्वारा) मानव सामाजिक पर्यावरण एवं स्वयं के जटिल व्यक्तित्व पर नियन्त्रण करता है तथा कला एवं विज्ञान के उन समग्र प्रकाशनों के द्वारा मानव अपनेपन की अभिव्यक्ति तथा जीवन के वैभव का आनन्द प्राप्त करने योग्य हुआ है। इस विस्तृत सन्दर्भ में संस्कृति

एकदम सभ्यता की कच्ची सामग्री एवं उसका सर्वश्रेष्ठ फल है ।’

संस्कृति के उपर्युक्त मार्क्सवादी विश्लेषण के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि सांस्कृतिक विचार एवं मूल्य समाज की वर्ग-संरचना एवं उन साधनों की उत्पत्ति है, जिनसे कि समाज के सदस्य अपनी आजीविका अर्जीत करते हैं ।

• संस्कृति एवं फ्रायड का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

‘संस्कृति की प्रकृति एवं उत्पत्ति से सम्बन्धित मार्क्स के विचारों की भांति फ्रायड के मनोविश्लेषण सम्बन्धी विचारों को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है । फ्रायड के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को आधार मानकर पाश्चात्य जगत के पाँच विद्वानों ने संस्कृति की उत्पत्ति एवं प्रकृति का विवेचन प्रस्तुत किया है । ये विद्वान हैं- लाइनल ट्राइलिंग, आर.जी.कोलिंगवुड, पी.ए.सोरोकिन, ग्लेडस्टन (प्रथम) एवं इ.बी.हाल्ट । इनमें ग्लेडस्टन प्रणीत तथा हाल्ट प्रणीत ग्रंथों में विषय सम्बन्धी सामग्री का अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट विवेचन है । यहाँ पर ग्लेडस्टन के विचार प्रस्तुत हैं- ‘संस्कृति’ उन आशाओं, आस्थाओं, आकांक्षाओं, विचारों एवं दृढ-विश्वासों की प्रतिमूर्ति है जो मानव के क्षेत्रों एवं युगों के मध्य व्यावर्तन करती है ।’^{३९}

प्रोफेसर जे.पीपर ने संस्कृति के सम्बन्ध में अपने सभी पूर्ववर्ती विचारकों से सर्वथा भिन्न मत प्रस्तुत करते हुए कहा है, ‘संस्कृति’ का अभ्युदय विलासिता के क्षेत्र में होता है ।’^{४०} आपकी विचारधारा के अनुसार संस्कृति का उद्भव एवं विकास उन्हीं व्यक्तियों के बीच हो सकता है जिसके पास प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के उपरांत विश्राम के हेतु अवकाश है ।

• संस्कृति का मानवशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय विवेचन

उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में सांस्कृतिक मानवशास्त्र के क्षेत्र में

इ.बी.टायलर के दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ । नामक ग्रन्थ में संस्कृति के विषय क्षेत्र को पारिभाषित करते समय टायलर महोदय कहते हैं- 'संस्कृति अथवा सभ्यता वह संकुल है जो समाज के सदस्य के रूप में एक मानव द्वारा प्रदत्त ज्ञान, विश्वास, कला, कानून, रीतिरिवाज, चरित्र सम्बन्धी नियम एवं इतर सामर्थ्यों और आदतों को समन्वित करता है ।'^{४१}

टायलर के उपरान्त लगभग आठ दशक तक मानवशास्त्री 'संस्कृति' की प्रकृति के विश्लेषण के सम्बन्ध में कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं कर पाए । बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में ए.एल.क्रोवर एवं क्लाइड क्लुकहान दो अमरीकी मानवशास्त्रीयों ने समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र पर लगभग ६०० ग्रन्थों का अध्ययन करके Culture: A Critical Review of Concepts and Definitions नामक ग्रन्थ का सृजन किया । इस प्रबन्ध में विद्वान लेखकों ने एक स्थल पर संस्कृति की बहुत संक्षिप्त परन्तु उपयुक्त परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'संस्कृति' एक मनोवैज्ञानिक सुरक्षात्मक व्यवस्था है ।'^{४२}

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सर्वप्रथम यह प्रस्थापित किया जा सकता है कि संस्कृति की विशेष उपलब्धि जीवन में मूल्यों का समावेश करना है । मानव जीवन में इन मूल्यों का समावेश उसके स्वयं के लक्ष्य, उद्देश्य, हित, भाव, व्यवहार, विश्वास, सांस्कृतिक कार्य एवं आचरण आदि के रूपांतरण, अनुकुलन एवं नियोजन आदि में परिलक्षित होता है ।

'संस्कृति' के सम्बन्ध में द्वितीय प्रस्थापना यह हो सकती है कि संस्कृति का लक्ष्य परम्परागत मूल्यों का सम्प्रेषण, नूतन मूल्यों का निर्माण एवं उनका मानव जीवन के समायोजन करने वाली कार्यप्रणाली का निर्धारण करना है । यहाँ परम्परा से प्राप्त मूल्यों से अभिप्राय मौखिक सांस्कृतिक परम्परा से है, जिससे कि बहुसंख्यक जनता

स्वतः अपनी आवश्यकतानुसार सांस्कृतिक विचार ग्रहण करती है। सांस्कृतिक परम्परा का यह भाग ग्रन्थ, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, भवन-निर्माणकला एवं अन्य ठोस वस्तुगत आकृतियों के माध्यम से साकार रूप प्राप्त करता है। मौलिक सांस्कृतिक परम्परा ही सम्पूर्ण मानवता के बहुमत के लिए सर्वोपरि एवं एकमात्र सांस्कृतिक अजस्र स्रोत है जिसके माध्यम से एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को सांस्कृतिक सम्पदा विरासत के रूप में प्रदान करती है।

संस्कृति के स्वरूप के सम्बन्ध में तृतीय प्रस्थापना के अन्तर्गत मानव जाति की क्षमता, दक्षता, योग्यता, परिज्ञान सम्बन्धी प्रक्रिया, पद्धति, संहिता, नीति, विधि, शैली एवं कला, भाषा, विज्ञान सम्प्रेषणीय बोध, दर्शन, चिंतन, अनुभव एवं व्यवहारादि को सम्मिलित किया जा सकता है।

० समाज एवं संस्कृति का सम्बन्ध

किसी सुनिश्चित अंचल अथवा भौगोलिक प्रदेश में बहुत से व्यक्ति निवास करते हैं। ऐसे व्यक्ति जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को परिपूर्ण करने के लिए परस्पर मिल-जुल कर कार्य करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप अनेकों प्रकार की सार्थक क्रियायें एवं अन्तःक्रियायें जन्म लेती हैं और उनका विकसीत रूप ही सामाजिक सम्बन्धों को जन्म देता है। इन सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए प्रत्येक सामाजिक प्राणी एक दूसरे की अपेक्षाओं के अनुकूल व्यवहार करता है। सामान्यतः मानव के व्यवहार के नियामक, निर्देशक एवं नियन्त्रक अंचल विशेष के मनुष्यों की आस्थाएं, मान्यताएं, परम्पराएं एवं कार्यप्रणालियां होती हैं जो उस समाज की संस्कृति का आधार निमित्त करती हैं।

वस्तुतः समाज एवं संस्कृति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व लुप्त हो जाता है। 'संस्कृति' का आधार 'समाज' है एवं 'समाज' को सुचारु रूप से संचालित करनेवाली पद्धति 'संस्कृति' है। जब किसी युग अथवा स्थान के समाज की 'संस्कृति' उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में समर्थ नहीं होती, तब सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रक्रिया के मध्य पुरातन सांस्कृतिक मूल्य क्षीण होते जाते हैं उनके स्थान पर नवीन मूल्य स्थापित हो जाते हैं। ये नवीन मूल्य वर्तमान एवं आयायी समाज तथा युग की आवश्यकताओं के अनुकूल होते हैं।

० समाज एवं साहित्य का सम्बन्ध

साहित्य किसी समाज की समस्त संवेदनाओं का कोष कहा जा सकता है, क्योंकि साहित्य में ही युग विशेष की सामाजिक मान्यताएं, सांस्कृतिक प्रतिमान तथा जीवन के मूल्य प्रतिफलित होते हैं।^{४३} साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से समाज के स्वरूप को अभिव्यक्ति प्रदान करता हुआ युगीन आकांक्षाओं के अनुकूल परिवर्तित समाज निमित्त करने के लिए आह्वान करता है एवं समाज साहित्यकार को सम्पूर्ण परिवेश एवं जीवन की आवश्यकता सुविधाएं प्रदान कर इस योग्य बनाता है कि वह समाज की वाणी को मूर्तरूप प्रदान कर सके। इस प्रकार समाज साहित्यकार का एवं प्रकारांतर से साहित्य तथा साहित्य सामाजिकता का संवाहक होता है।

विश्व के प्रत्येक समाज में सामाजिक संगठन एवं विगठन की प्रक्रिया निरन्तर प्रवाहमान रहती है। समाज के व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये सतत् संघर्ष करते रहते हैं। युगीन साहित्य उस समाज के संघर्ष को वाणी एवं नूतन दिशा प्रदान करता है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यास साहित्य में, हिन्दी

भाषी अंचलों के सामाजिक संघर्ष को पूर्ण परिवेश के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है ।

० साहित्य एवं संस्कृति का सम्बन्ध

साहित्य एवं समाज की भांति साहित्य तथा संस्कृति का सम्बन्ध सनातन, अटूट एवं सुश्रुंखलित है । साहित्य के निर्माण में युगीन संस्कृति मूलभूत पदार्थ का स्थान ग्रहण करती है एवं संस्कृति के निर्माण में साहित्य प्रेरक, संचालक एवं संरक्षक की भूमिका सम्पन्न करता है । जिस प्रकार किसी वस्तु के निर्माण हेतु कच्चे पदार्थ की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार साहित्य के निर्माण में साहित्यकार की युगीन संस्कृति से मूलभूत आधार सामग्री प्राप्त करने की आवश्यकता होती है । साहित्यकार समाज की विशिष्ट आशाओं, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, जीवन-पद्धतियों एवं कार्यप्रणालियों, मूल्यों, विचारों, भावों, आदतों आदि को अपनी सारग्राही एवं पैनी दृष्टि से ग्रहण कर सार्थक एवं आकर्षक शब्द विधान से कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है । इस प्रक्रिया के मध्य साहित्यकार का जीवन-दर्शन युगीन पाठकों एवं रसिकों के भाव-जगत को प्रभावित करता हुआ एक और संस्कृति के विकास में योगदान प्रदान करता है तो दूसरी ओर उसे लिपिबद्ध करता हुआ समकालीन संस्कृति को अक्षुण्ण भी बना देता है । इस प्रकार साहित्य संस्कृति का संरक्षक है और संस्कृति साहित्य की नियामक शक्ति बन जाती है ।

० आंचलिक उपन्यास साहित्य में समाज और संस्कृति

सम्प्रति, साहित्य की अभिव्यक्ति के सभी स्वरूपों में उपन्यास सर्वाधिक समृद्ध विधा है । इसके प्रमुखतः दो कारण हैं । सर्वप्रथम आज का साहित्यकार पहले की अपेक्षा कहीं अधिक तार्किक एवं वैज्ञानिक पद्धति पर विचार करता है तथा इस

प्रक्रिया के मध्य वयह अपने युगीन परिवेश से प्रभावित और परिचालित होता है तथा अपने परिवेश को भी प्रभावित एवं परिचालित करने का प्रयास करता है । इस लक्ष्य की पूर्तिके लिए उपन्यास सर्वाधिक सुविधाजनक माध्यम है । दूसरे उपन्यास ऐसी विधा है जिसके माध्यम से उपन्यासकार सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, शैक्षणिक आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को पूर्ण विस्तार के साथ अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है । इसलिए साहित्य की अन्य विधाओं की समकक्षता में उपन्यास की विधा में समसामयिक समाज एवं संस्कृति का चित्रण अपेक्षाकृत व्यापक स्तर पर मिलता है ।

साहित्य की औपन्यासिक विधा के समान ही आंचलिक उपन्यास साहित्य में समाज एवं संस्कृति को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है । वस्तुतः आंचलिक उपन्यासरूपी प्रासाद का आधार वह सुनिश्चित अंचल अथवा जनजाति का समाज एवं संस्कृति ही होता है जिसकी पृष्ठभूमि पर उपन्यास विरचित है । आंचलिक उपन्यासकार निश्चित एवं सीमित अंचल के सम्पूर्ण जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए उस समाज के सम्पूर्ण परिवेश के नियामक तत्वों से अपनी औपन्यासिक कृति का कथा-पार्श्व बुनता है । और यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि उपन्यासकार में उस विशिष्ट अंचल अथवा जनजाति के नागरिकों के जीवन को समझने, जानने एवं उसके लिए अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं को समर्पित कर देने की अटूट आकांक्षा हो । अंचल के मनुष्य एवं मृत्तिका से स्नेह किये बिना यह असम्भव है । सम्भवतः यह भावना ही 'मैला आंचल': 'परती: परिकथा' तथा आंचलिक उपन्यासों की मूलभूत जननी है ।

आंचलिक उपन्यास साहित्य में अंचलों के समाज और संस्कृति को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए उनके समाज तथा संस्कृति के आधार और नियामक भौगोलिक,

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक उपादानों का विस्तृत एवं व्यापक चित्रण किया गया है। किसी प्रदेश की भौगोलिक पृष्ठभूमि उसे प्रदेश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों एवं मूल्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करती है। इसीलिए आंचलिक उपन्यासकारों ने आंचलिक उपन्यासों में अंचल की भौगोलिक पृष्ठभूमि के नियामक तत्वों मैदान, पठार, तालाब, नदी, नाले, वृक्ष, बाण, हरे-भरे खेत एवं ऋतु आदि का चित्रण किया है।

आंचलिक उपन्यास साहित्य में अंचलों के सामाजिक परिवेश के नियामक उपादानों को विविध रूप एवं आकार-प्रकार में अवतरित किया गया है। सामान्यतः इन उपादानों के अन्तर्गत अंचलों के पुरुष एवं नारी पात्रों के सम्बन्ध तथा क्रिया-कलाप, पारिवारिक और जाति व्यवस्था एवं ग्राम पंचायत आदि आते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर काल में सरकारी एवं अ-सरकारी मानवोपकारी प्रयासों के परिणाम स्वरूप इन संस्थाओं में आए परिवर्तन के लक्षणों को आंचलिक उपन्यासकारों ने पूर्ण मनोयोग से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

आंचलिक उपन्यास साहित्य में चित्रित अंचलों की आर्थिक परिस्थितियों का बिम्बात्मक वर्णन मिलता है। अंचल के निवासियों के आर्थिक जीवन-स्तर, आय के साधनों की स्थिति, भूमि के उपजाऊपन एवं बंजरपन की स्थिति एवं भूमि पर आधारित सम्बन्धों की परम्परागत एवं परिवर्तित स्थिति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण मिलता है। इस प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया के मध्य आंचलिक उपन्यासकार सामान्यतः तटस्थ रहे हैं। न तो इन्होंने उसको अत्यन्त निम्न एवं दयनीय ही प्रदर्शित किया है और न अत्यन्त उन्नत एवं प्रगतिशील अवस्था में दिखाया है। प्रायः अंचलों में भूमि का अधिकांश स्वामित्व एक विशिष्ट वर्ग के हाथों में सन्निहित है एवं कुछ मध्यमवर्गीय

कृषक है तथा शेष कृषकों के खेतों पर काम करनेवाले श्रमिक एवं कृषि पर आधारित अन्य धंधे करनेवाले व्यक्ति पाए जाते हैं। आंचलिक उपन्यासकारों ने अंचलों के इन व्यक्तियों की आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ स्वतन्त्र भारत सरकार के समाजवादी लक्ष्यों से प्रेरित भूमि सम्बन्धी सुधारों, सामुदायिक विकास योजनाओं आर्थिक विकास की कर्णधार ग्राम पंचायतों के संचालन, प्रभाव एवं अभाव को अपने साहित्य में व्यापक स्तर पर वाणी प्रदान की है।

विगत ढाई दशक में भारतीय अंचलों में राजनीति परिवर्तन की सर्वाधिक संचालिका शक्ति रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के प्रत्येक नागरिक को राष्ट्रीय सरकार के निर्माण में योगदान प्रदान करने के लिए प्राप्त व्यस्क मताधिकार के कारण राजनीति प्रत्येक अंचल के प्रत्येक घर में प्रविष्ट हो गयी है। सम्प्रति, राजनीति मानव के धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावित कर रही है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत के अंचलों में अवतरित इस समय राजनीतिक चेतना के साथ-साथ विविध राजनीतिक दलों के कार्यकर्ताओं की विविध भूमिकाओं एवं योजनाओं, कल्याणकारी राज्य द्वारा संचालित योजनाओं एवं उनके अन्तर्गत सरकारी कर्मचारियों की सक्रियता एवं निष्क्रियता आदि को अपने साहित्य में स्थान प्रदान किया है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत भारतीय अंचलों के शैक्षणिक जगत में एक क्रांतिकारी लहर आयी है। भारत सरकार के प्रत्येक व्यक्ति को साक्षर बनाने के लक्ष्य के परिणामस्वरूप आंचलिक समाज में शैक्षणिक संस्थाओं का एक व्यापक पार्श्व परिलक्षित होता है। शिक्षण, संदेशवाहन एवं वातावात के साधनों के विकास एवं नागरिक समाज के सम्पर्क के विकास के कारण भारतीय ग्रामीण समाज में पुरातन एवं नवीन

मूल्यों एवं मान्यताओं में संघर्ष छिड़ा है। आंचलिक उपन्यासकारों ने अपने साहित्य में आंचलिक समाज की वर्तमान शैक्षणिक स्थिति एवं मूल्यों के संघर्ष की भली-भाँति मुखरित किया है।

भारतीय ग्रामीण जनता का प्रकृति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और इसीलिए उसके जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। देवी-देवता एवं पुजा स्थान मन्दिर-मस्जिद आदि उसके धर्म के प्रतिमान हैं। विगत ढाई दशक में विविध राजनीतिक विचारधाराओं एवं वैज्ञानिक यन्त्रों के प्रचार-प्रसार के धर्मप्राण ग्रामीण जनता के धार्मिक विश्वासों तथा आस्थाओं को प्रभावित एवं परिवर्तित किया है। आंचलिक उपन्यास साहित्य में आंचलिक समाज के धार्मिक प्रतिमानों, विश्वासों, आस्थाओं एवं मूल्यों तथा उनमें परिवर्तन के चरणों को उद्घाटित किया गया है।

भारतीय आंचलिक समाज में लोक संस्कृति के विविध उपादान अत्यन्त विकसित अवस्था में पाए जाते हैं। ये उपादान हैं- विविध प्रकार की कलाएँ, लोक-भाषा, लोक-गीत, लोक-कथा, लोक-नृत्य, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ एवं स्वांग। ये सभी उपादान अंचलों में निवासित जनता के सांस्कृतिक विश्वासों, मूल्यों एवं सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संवाहन एवं प्रतिबिम्बन करते हैं। आंचलिक उपन्यास साहित्य में अंचलों की लोक संस्कृति के प्रतिमानों के साथ-साथ वहाँ के निवासियों के व्यवहार की पद्धतियों, आदर्शों, आचरणों, व्यायाम एवं मनोरंजन के साधनों, रीति-रिवाजों, पर्वों आदि का व्यापक स्तर पर प्रस्तुतीकरण मिलता है।

निष्कर्षतः आंचलिक उपन्यास साहित्य में स्वतन्त्र भारत के आंचलिक जीवन के परम्परागत स्वरूप में अवतरित परिवर्तनों, ग्रामीण जनता की आशाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं, लोक-कल्याणकारी राज्य द्वारा संचालित विविध योजनाओं एवं

कार्यक्रमों से ग्रामीण जनता की उपलब्धियों तथा उनके मार्ग में आने वाली बाधाओं का कलात्मक निरूपण मिलता है । स्वतन्त्र भारत का आंचलिक उपन्यासकार अपनी लेखनी के माध्यम से करोड़ों ग्रामीणों एवं आदिवासियों के हृदय को मूर्तिमान करने का प्रयास करता है । अतः हिन्दी का आंचलिक उपन्यास साहित्य स्वतन्त्र भारत के विगत ढाई दशक के हिन्दी भाषी आंचलिक समाज का सांस्कृतिक इतिहास है ।

संदर्भ

१. प्रामाणिक हिन्दी शब्दाकोष, सम्पादक- रामचन्द्र वर्मा, पृ.सं. १२८३, द्वितीय संस्करण, प्र. हिन्दी साहित्य कुटीर, हाथी गली, बनारस ।
 २. 'हिन्दी विश्वकोष', खण्ड २३, पृ.सं. ५६९ ।
 ३. 'बृहद हिन्दीकोष', सम्पादक-कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दलाल श्रीवास्तव, पृ.सं.१४४१ ।
 ४. 'भाषा शब्दकोष' सम्पादक-रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' पृ.सं. १८१२
 ५. 'तुलसी शब्द-सागर' संकलनकर्ता- स्व. पं. हरगोविन्द तिवारी, सम्पादन- श्री भोलानाथ तिवारी पृ.सं. ४४५,४५ ।
 ६. हलायुधकोष' सम्पादक- जयशंकर जोशी, पृ.सं. ६९३ ।
 ७. 'A practical Sanskrit Dectonary' Edited by Arthur Authony Mac Donell, P. 337, 1954.
 ८. Insyclopedia of International Social Sciences, Vol. 14, p. 577.
 ९. 'The Society is not merely a Collective name for a number of individuals but is a distinctive 'entity' transcending the individuals who belong to it.'
- (H. Spencer, Principles of Sociology, London, William & Nongate, 3rd Edn, Rev. 1885 Vol. I, P. 435)
१०. M. Ginsburg, 'Sociology'- London, Oxford University Press, 1932, P. 39

୧୧. R. M. Maciver, 'Society; Its structure and changes' New- York, Long & Smith, 1932, P. 6
୧୨. T. Parsons, 'Society' in E.R.A. Silegman (Edn) Encyclopedia of Social Sciences, New-York. The Macmillan Co., Vol. 14, 1934, P.225
୧୩. 'A group of human being living in Co- operative effort to win subsistence and perpetuate the species' (W.G.Sumner and A.G.Keller, 'The Science of Society', 4 Vols, New Haven, Yale University Press, 1927, Vol. 1, P.7
୧୪. 'Any group of people who lived and worked together long enough to get themselves Organised or to think of themselves as a social unit with well defined limits' (R. Linton, 'The Study of man', New-York, Appleton Century, 1936, P. 91)
୧୫. 'A Collection of individuals united by certain relations or modes of behaviour which mark them off from other who do not enter into those relations or who differ from them in behaviour.' (Ginsburg,'Sociology, P. 40)
୧୬. 'A number of individuals connected by interaction' (K. Wolf (ed) The Sociology of George Simmel, Glencoe, The Free Press, 1950, P. 10)

१७. 'The largest group to which an individual belongs.
(A. W. Green, 'Sociology', New-York, Mc,Grow- Hill, 2nd Edn.
1956, P. 31)
१८. 'Within which the members share the basic elements and
conditions of common life.' (L. Wilson & W. L. Kolf, Sociological
Analysis, New-York, Harcourt Brace, 1949, P. 267).
१९. The social heritage of habit and sentiment, folkways and mores,
techniques and culture all of which are incident or necessary
to collective human behaviour.'
(R. E. Park & E. W. Burgess, 'Introduction to the Science of
Sociology. Chicago, University of Chicago Press, 2nd Edn.,
1924, P. 161)
२०. 'हिन्दी विश्वकोष', गयो विशंभाग, पृ. ४४०
२१. डॉ. वीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, प्र. एवं अन्य द्वारा सम्पादित, बनारस,
ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृ. ८०१
२२. परशुराम चतुर्वेदी, बीद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक, पृ. २, साहित्य भवन
प्रा.लि. इलाहाबाद, १९५८
२३. N.K. Devraj, "The Philosophy of Culture", Pg. 21
२४. बाबू गुलाबराय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', पृ. १, साहित्य प्रकाशन,
ग्वालियर.
२५. गुरुदत्त, 'धर्म, संस्कृति और राज्य', रतीय साहित्य सदन, नई दिल्ली, पृ. २८

२६. डॉ. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ. ६५२
२७. "Culture" he said, sets before a man a high ideal end to aim at which shall enter into and control his life, secondly, it trains all he inward powers and ourward instruments-hand, eyes, ear, so as to enable him in some measure to realize that end," Principal J.C. Shairp, "Culture and region in some of their relations, Pg. 10. 1870-71
२८. "A mind stored with a knowledge of the fundamental trusts of nature, and of the laws of her operations, one....whose passions are trained to come to heel by a vigorous wil, the servent of a tender conscience, who has lerned to love all beauty whether of nature or art, to hate all villeness and respect oher as himesef". (Huxley, 'Lay Semons') Address and Reviews, First Published in 1870, see 1903, Edn., P. 303.
२९. "Culture...becomes wisdom, a wisdom that can accept defeat, a wisdom that can turn defeat into victory....a universal thing, a braking down of the barriers of race, of class, of nation' (John C. Powys, 'What is Culture), Pg. 13
३०. What we are defining as the true nature of culture is nothing less than a substitute for religion' (Book Ibid), Pg. 95.

૩૧. It is in the growth of the doctrine and theory of culture in the modern whrod. Seeley said rather than in any mere signs of reviving activity in religious bodies that we sce the true revival of religion and the ture antidote of secularity" (Seeley, 'Natural Region' 1895, Pg. 168.
૩૨. "No Culture has appeared or developed, he says, except together a religion" (T.S. Eliot, Notes towards 'The Definitions of Culture' Pg. 15)
૩૩. Culture is not merely the sum of several activities but a way of life. (Pg. 41, Book Ibid)
૩૪. The Question is not of religion or a culture but of both religion and culture. The ethics of culture and the ethics of Gospal are reconciled in the theories of natural law and culture in the work of God-given reason in God-given nature, (Dr. H. Richard and Nibur, Christ & Culture' Pg. 141, Edn. 1952)
૩૫. He rejected culture, the arts, sciences and all the elegance and perfections of conduct because there were so many ways in which the moral nature of man is thwanted and deceived. (Cowell, F.R. 'Culture' Pg. 264)

૩૬. The faith of Tolstoy.... seems really to be a faith in the broad stream of traditional orally transmitted cultural values by which the destinies of great majority of human race always have been and still are guided, (Book Ibid, Pg. 265)
૩૭. His main contribution here was to deny that there could be any transcendental values and to render to words truth, beauty and goodness, empty and without content' (Calvez, J.Y. *La Perse De Karl Marx*, 1956, Pg. 435.)
૩૮. "Culture in the widest" it is true, was recognised, "as including all the achievements whereby man has gained the mastery over nature to control the social environment and his own complex personality and all the manifestations of art and science wherein man seeks self-expressions and whereby he is enabled to enjoy the splendour of life culture in this extended sense is at once the raw-material of civilisation and its finest fruit.' (Eden & Cedar Paul 'Proletarian Culture', June, 1921. Pg. 24
૩૯. "Culture is the embodiment of the hopes, faith, belief convictions and aspirations which give distinction to the realms and ages of man." (Gladstone-1, 'Freud and Contemporary Culture, 1957, Pg. 74)

४०. "The sphere of leisure... is no less than the sphere of culture"
(Piper J., "Leisure-The basis of Culture" Pg. 78)
४१. "Culture of civilization is that complex which includes knowledge, belief, art, law customs, moral and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society." (E.B. Tylor, "Primitive Culture, Pg. 1)
४२. "I now define culture with greater precision as a psychic defence system (Kroeber & Clyde Kluckhohn, 'Culture : A Critical Review of Concepts and Definitions,' Peabody Museum Papers, Vol. XL VII, No. 1 1952
४३. डॉ. रक्षापुरी, 'प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज', पृ. ७

चतुर्थ अध्याय

राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों का परिचयात्मक अनुशीलन

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न राजेन्द्र अवस्थी अपनी कई साहित्यिक खूबियों को लेकर साहित्य जगत में प्रशस्ति प्राप्त है। उनके उपन्यास साहित्य में सिर्फ आँचलिकता नहीं सामाजिकता, राजनैतिकता एवं ऐतिहासिकता भी है। उनका उपन्यास साहित्य एक ही प्रकार की तर्ज पर न लिखकर विविध तर्जों पर आधारित है। सामाजिक तह तक पहुँचकर मानवीय संवेदना को उभारना अपना लक्ष्य मानते हुए अवस्थी आन्दोलनों से दूर रहे हैं। उनका उपन्यास साहित्य अधिकतर जंगलों में बसने वाले आदिवासी जीवन केन्द्रित है। कहीं कहीं नगरीय समाज का भी निरूपण हुआ है। उनके उपन्यास साहित्य पर विशेष अध्ययन करने के पहले उनके द्वारा लिखित उपन्यासों की कथावस्तु संक्षेप में देख लेना आवश्यक है।

- सूरज किरन की छाँव
- जंगल के फूल
- उतरते ज्वार की सीपियाँ
- जाने कितनी आँखें
- बहता हुआ पानी
- अकेली आवाज
- बीमार शहर
- मछली बाजार
- भंगी दरवाजा

अतः इन सारे उपन्यासों की संक्षिप्त कथावस्तु ही शोध के प्रारंभिक वैचारिक बिन्दु को विस्तृत कर सकता है ।

१. सूरज किरन की छाँव :

कथाकार राजेन्द्र अवस्थी हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में अपनी विशिष्ट समस्यात्मक वनाचल छुअन के लिए विख्यात हैं और शिल्प की ताजगी के लिए पृथक पहचाने जाते हैं । उनकी साहित्य साधना जीवन के आरंभिक काल में ही शुरू हो गई थी । जब अवस्थी जी सातवीं-आठवीं कक्षा के विद्यार्थी थे तब से पद्य लिखना जानते थे । उनकी पहली कविता अंग्रेजी में लिखी गयी थी जिस पर उन्हें तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा एक पुस्तक 'वकृत्व कला' पुरस्कार में दी गयी थी । प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न व्यक्तियों की भाषण शैली का परिचय था । पुस्तक को पढ़ने के बाद अवस्थी जी हिटलर की भाषा कला से अत्यधिक प्रभावित हुए, जो उनके कथा-साहित्य की कला सामग्री के लिए सार्थक सिद्ध हुई ।

हिन्दी में अवस्थी जी के साहित्य-जीवन का प्रारंभ कहानियों द्वारा हुआ । कहानियाँ लिखते-लिखते उनकी रुचि उपन्यासों की ओर बढ़ गई । उन्होंने अपना उपन्यास लेखन 'सूरज किरण की छाँव' नामक उपन्यास से शुरू किया । अवस्थी जी ने सिर्फ उपन्यास और कहानियाँ ही नहीं लिखी बल्कि यात्रा वृत्तांत, नाटक, वैचारिक साहित्य आदि भी लिखा । उन्होंने संपादन तथा अनुवाद कार्य भी किया ।

बचपन से ही अवस्थी जी का विविध क्षेत्रों से संपर्क रहा । उनका बचपन मंडला क्षेत्र की गोंड आदिवासी जाति के बीच व्यतीत हुआ । उनकी पढाई देहांतों में हुई । उन्होंने जबलपुर से बी.ए. पास किया और नौकरी के लिए नागपुर गये । कुछ साल नागपुर में व्यतीत करने के पश्चात् बम्बई में फिल्मिस्तान में आफिस

खोला, लेकिन फिल्मी दुनिया की चाल-ढाल देखकर बिना फिल्म बनाये दिल्ली चल गये। दिल्ली में 'कादम्बिनी' पत्रिका का कार्यभार सम्भालने लगे। 'कादम्बिनी' का मुख्य संपादक होने के नाते और सैलानी प्रवृत्ति के होने के कारण विदेश भ्रमण किया। आदिवासियों के जीवन का परिचय प्राप्त करने हेतु आदिवासी कुमार गृह 'घोटुल' में रहे। स्पष्ट हैं कि अवस्थी जी ने वैविध्यपूर्ण समाज को बहुत करीब से देखा है। अवस्थी जी जहाँ रहे, जिस समाज में रहे उस समाज की बारीकियों को उन्होंने अपने उपन्यासों तथा कहानियों के कथ्य का अंग बनाया है। कथ्यगत वैशिष्ट्य उन्हें यथार्थवादी कथाकार की श्रेणी में लाता है।

'सूरज किरण की छाँव' कथाकार राजेन्द्र अवस्थी की एक ऐसी रचना है जिसका प्रकाशन सन् १९५८ में राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली द्वारा हुआ था। अवस्थी जी का यह पहला आदिवासी जीवन केन्द्रीत उपन्यास है, जिसमें उन्होंने मध्यप्रदेश के गोंड आदिवासियों की रुढ़ि-परम्परा, उनका जीवन, खान-पान, रहन-सहन आदि पहलुओं को सहज-स्वाभाविक रूप में उकेरा है। वैसे तो प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु लेखक ने अपने द्वारा रचित कहानी 'जलता सूरज' को व्यापक रूप देकर लिखा है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में अवस्थी जी अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं। उनकी प्रारम्भिक कहानियों में आदिवासी स्वर अधिक मुखर हुआ है। उनके कहानी संग्रहों में सन् १९८७, कृष्णनगर, दिल्ली से प्रकाशित 'महुआ के जंगल' आदिवासी संस्कृति का प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है। इस कहानी संग्रह में संगृहीत सोलह कहानियों में से एक कहानी 'जलता सूरज' है, जिसे व्यापक फलक पर चित्रित करके अवस्थी जी ने 'सूरज किरण की छाँव' उपन्यास की रचना की है। पहले तो 'जलता सूरज' कहानी अवस्थी जी 'धर्मयुग' के लिए लिख रहे थे, किन्तु

लिखते-लिखते यह कहानी १३-१४ पृष्ठों की हो गई, तब उन्होंने सोचा कि इस कहानी पर तो उपन्यास लिखा जा सकता है। अपने लेखन के परिवर्तन के संदर्भ में अवस्थी जी सविता सौरभ से पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं- “मैं बंजारी की कहानी लिख रहा था, लिखते-लिखते तेरह-चौदह पेज हो गये, हाथ थक गये तो मुझे लगा कि ये कहानी अभी और लिखी जा सकती है। फिर मैंने समेटकर रख दी और तय किया कि उसे उपन्यास बनाया जाय। तब उस कहानी को उपन्यास के रूप में पूरा किया।”^१ इसी कहानी को उन्होंने ‘सूरज किरण की छाँव’ उपन्यास में परिवर्तित कर दिया।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है, उसी के अनुरूप आचरण करता है। फलतः उसी समाज के अनुकूल उसका रहन-सहन, बोलचाल, वेश-भूषा आदि होते हैं। सफल उपन्यासकार का कर्तव्य है कि वह जिस समाज और युग का चित्रण कर रहा है, उसी के अनुरूप वह व्यक्तियों के रहन-सहन, बोलचाल अथवा भाषा तथा वेश-भूषा का चित्रण करे। ‘सूरज किरण की छाँव’ उपन्यास मध्यप्रदेश की सबसे बड़ी गोंड आदिवासी जाति पर आधारित है। अवस्थी जी की अधिकतर रचनाओं की प्रेरणा-स्रोत अपना परिवेश रहा है। उनका जन्म मध्यप्रदेश के जबलपुर नगर में हुआ था, किन्तु बाल्यावस्था बस्तर, मंडला आदि गोंड आदिवासी क्षेत्रों में व्यतीत हुई। इस संबंध में सुरेश नीरव द्वारा पूछे गये एक प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं अवस्थी जी ने कहा है- “मेरा जन्म देहात में हुआ था। जबसे मुझे याद है शायद मैंने अपने आपको पहली बार गोंड स्त्री की गोद में खेलता पाया था।”^२ क्यों गोंड स्त्री की गोद में खेलते पाया? इसका कारण बताते हुए अवस्थी जी लिखते हैं- “मेरे पिता शिक्षक थे और उनका स्थानांतरण होता रहता था।

अधिकांश समय वे बस्तर और मंडला क्षेत्र में रहे हैं।^३ इस प्रकार आदिवासी गोंड जाति के निकट रहने का परिणाम उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर प्रतिबिंबित होता है। आदिवासियों का भोलापन, उनकी आत्मीयता, सहजता, निस्वार्थभाव आदि का प्रभाव अवस्थी पर रहा है। अवस्थी जी के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी है कि उनके पास वे ही व्यक्ति आ सकते हैं, जो इमानदारी से पेश आये अथवा सादगी के पक्षपाती हों। उनके व्यक्तित्व की इसी विशेषता की प्रतीति हमें उनकी रचनाओं में मिलती है। वे आदिवासियों की 'घोटुल' जैसी संस्थाओं में रहे हैं। उनका भी प्रभाव उन पर पड़ा है। उनके कहानी लेखन के पीछे भी कुछ विशिष्ट घटनाओं को प्रेरक मानते हैं। एक जगह वे स्वयं कहते हैं- “एक दिन जबलपुर में ही काली का भेष धारण करके आटा माँगने एक लडकी आयी। अपनी रुढ़ि विरोधवृत्ति के कारण मैंने उसे भगाना चाहा। इस पर उसने मुझे गालियाँ दी और शाप दिया। माँ ने मुझे डाँटा और आटा देने आयी लेकिन मैंने माँ को आटा देने से मना कर दिया। अपनी स्वाभाविक वृत्ति के अनुरूप ही मैंने यह किया था, किन्तु घटनाक्रम ने कुछ और ही मोड़ लिया। यह मात्र एक संयोग ही था कि उसी शाम मैं बुखार से पीड़ित हो गया।”^४ जीवन की यही घटना अवस्थी जी के लिए कहानियाँ लिखने की प्रेरणा बनती रही और एक महान कहानीकार के रूप में वे हिन्दी कहानी जगत में अपना स्थान प्राप्त करते हैं, बाद में उपन्यास क्षेत्र में।

‘सूरज किरण की छाँव’ बस्तर के गोंड आदिवासी जीवन पर लिखा गया एक सशक्त उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास के बारे में हरिशंकर सक्सेना लिखते हैं- “‘सूरज किरण की छाँव’ की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि में आदिवासी क्षेत्र की पिछड़ी जातियों की जिन्दगी का लेखा-जोखा है, लेकिन उपन्यास के मध्य भाग में ग्रामीण अंचल के

परिवेश की अपेक्षा और ईसाई धर्मावलम्बियों के जीवन तथा मानसिक अंतर्द्वन्द्व को रेखांकित किया गया है। उपन्यास के अन्त में पहाड़ पर स्थित एक बड़े होटल के कारनामों का पर्दाफाश किया गया है। उपन्यास के कथ्य की इस तमाम उठा-पटक के बावजूद लेखक अपने-आप को आँचलिक कथा लेखन की एक महत्वपूर्ण कड़ी मानता है।^{१५}

आलोच्य उपन्यास का कथानक तेरह परिच्छेदों में विभाजित है। लेकिन परिच्छेदों को नाम न देकर अंकों में बाँटा गया है। उपन्यास की मुख्य कथा बंजारी नामक युवती के इर्द-गिर्द घुमती है। वह बंजारी से मिसेस बैजो जोसेफ, बैजो जोसेफ से मिस उषा और फिर मिस उषा से अपने पूर्वगत जीवन में आती है, यही इस उपन्यास की मुख्य कथा है। इसके अलावा प्रस्तुत उपन्यास में ग्रेसरी की कथा, मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन की कथा, रुबी और जोसेफ की प्रेमकथा, मिशनरियों के चुनाव की कथा आदि गौण कथाओं का भी समावेश किया गया है। ये कथाएँ मुख्य कथा के साथ-साथ चलती हैं। लेकिन मिशनरियों के द्वारा चुनाव लड़ना और उसमें उनकी हार के कथा अंश को हटा दिया जाय तो भी मुख्य कथानक में कोई बाधा नहीं आती। उपन्यास का कथानक मौलिक एवं यथार्थ है। गोंड आदिवासी जीवन की संवेदना के साथ-साथ कथानक में कहीं-कहीं महानगरीय जीवन की यांत्रिकता, बिखराव और मूल्यहीनता को भी चित्रित किया गया है। उपन्यास का विकासक्रम नितान्त कलात्मक एवं रुचिपूर्ण है। आदिवासियों का नृत्य, गाँव की पंचायत, आदिवासियों द्वारा मनाये जाने वाले नोरदाना पांडुम त्यौहार, विलियम द्वारा बंजारी को बर्बाद करना, गाँव का बाजार- हाट, बंजारी का स्कूल जाना, बंजारी को जोसेफ द्वारा होटल में बेचना और कपूर द्वारा उसे वेश्या व्यवसाय करवाना आदि

घटनाएँ उपन्यास में रोचकता, कौतुहल और जिज्ञासा की सृष्टि करती है ।

अतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास का कथानक एक तरफ शहरी जीवन की विरूपता का उद्घाटन करता है तो दूसरी तरफ गोंड आदिवासी जीवन के पुराने मूल्यों के प्रति अदम्य विश्वास एवं उत्साह व्यक्त करने में समर्थ है ।

आलोच्य उपन्यास की कथा के केन्द्र में बंजारी नामक गोंड आदिवासी युवती है । भोली-भाली बंजारी अपने गाँव के मुखिया के बेटे विलियम के प्रेम जाल में फँस जाती है । बंजारी विलियम को बेहद प्रेम करती है, किन्तु विलियम बंजारी को प्रेम की बजाय उसका सब कुछ लुटकर पंचायत करवाने पर मजबूर कर देता है । एक दिन गाँव की पंचायत बैठती है । पंचायत में विलियम बंजारी को प्रेमिका न बताकर अपनी बहन बताता है । पंचायत में विलियम की विजय होती है । विलियम को सच मानते हुए जाति की पंचायत बंजारी को अपनी जाति से बहिष्कृत कर देने का निर्णय सुनाती है । जाति से बहिष्कृत बंजारी न विलियम की रहती है न अपनी जाति की । असहाय बंजारी क्या करे? ऐसी स्थिति में गाँव के मुखिया को सोचना पड़ता है । वह बंजारी को लेकर चिंतीत रहता है । समय आने पर वह बंजारी का विवाह ईसाई युवक जोसेफ से करा देता है जो पहले गोंड आदिवासी था । जोसेफ बंजारी को लेकर पास वाले गाँव में चला जाता है । वहाँ जाकर बंजारी का नाम बंजारी न रहकर मिसिज बेंजो रख दिया जाता है ।

मिसिज बेंजो और जोसेफ एक दूसरे को हृदय से प्रेम करते हैं । उनका दाम्पत्य जीवन व्यवस्थित चलता है । वैसे तो कुछ दिन जोसेफ उसे ठीक रखता है किन्तु बाद में उसे बार-बार अपमानित, प्रताड़ित करता हुआ पिटाई भी करता है । जोसेफ देसाई मिशनरी में एक फादर के साथ काम करता है । वहीं बेंजों को ग्रेसरी नामक

सहेली मिल जाती है । अपनी सहेली की मदद से बेंजो अपने जीवन में कुछ करना चाहती है । ग्रेसरी और उसकी माँ से परामर्श लेकर बेंजो पढाई शुरू कर देती है किन्तु जोसेफ की लापरवाही और नर्स रुबी से नाजायज संबंध होने के कारण जोसेफ को नोकरी से निकाल दिया जाता है । एक दिन उनका व्यवस्थित दाम्पत्य जीवन कुछ उतार चढावों के बाद अव्यवस्थित बन जाता है । दोनों असहाय क्या करें? जोसेफ बेंजो को लेकर तामिया पहुँचता है । तामिया पहुँचकर जोसेफ की दानत बिगडती है । वह अपनी पत्नी बेंजो को एक होटल में मि. कपूर के हाथ बेचकर बम्बई भाग जाता है । बेची हुई बेंजो पालित पशु की तरह जहाँ अपना मालिक बेचता है वहाँ रहती है । असहाय बेंजो परिस्थिति को स्वीकारती मि. कपूर के साथ रहने लगती है । मि. कपूर के यहाँ आकर बेंजो मिस उषा बन जाती है । दिन बीतते जाते हैं एक दिन अचानक मिस उषा इसी होटल में अपनी सहेली ग्रेसरी और उसके पति को तथा अपने पूर्व प्रेमी कंगला को देखती है । जीवन की कंटकित राहों से थकी, असहाय आज की मि. उषा अपने सबसे पहले प्रेमी कंगला से अपनी मुक्ति की फरियाद करती है । सब मिलकर मुक्ति का आयोजन बनाते हैं । और अंत में वह ग्रेसरी और उनके पति तथा कंगला की मदद से इस नारकीय जीवन में छूटकारा पाती है । नरक की यातनाओं से मुक्त बंजारी खुले आसमान के नीचे श्वास लेती है । लम्बे नारकीय जीवन से मुक्त बंजारी अपने पूर्व प्रेमी कंगला के साथ अपने गाँव चली जाती है । वह जब गाँव वालों की सेवा करना चाहती है । उनके द्वारा जो सेवा होती है उसका उद्देश्य कुछ ओर होता है । वह चाहती है कि किसी बंजारी को इस प्रकार समाज से निर्वासित होकर बंजारी से मिसेज बेंजो और मिसेज बेंजो से मिस उषा न बनना पड़े और नारकीय जीवन न जीना पड़े ।

आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु पर प्रकाश डालते हुए डॉ.भाऊसाहेब परदेशी लिखते हैं- “अवस्थी जी ने प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासी क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों के बढ़ते प्रभाव को, शोषित आदिवासियों के दर्द को और आदिवासी समाज की परम्पराओं, रूढ़ियों को चित्रित किया है। प्रस्तुत उपन्यास आदिवासी लड़की की वेदनापूर्ण कहानी को उकेरता है। जो बंजारी से मिसेज बेंजो और मिसेज बेंजो से मिस उषा बन जाती है। भोली-भाली आदिवासी लड़कियों को अपने प्रभुत्व, पैसे और शादी करने के लालच देकर सम्पन्न व्यक्ति उनका जीवन लूटते हैं, इसका सुन्दर वर्णन उपन्यास में किया है।”^६

आलोच्य उपन्यास के अलावा भी अवस्थी के दूसरे कितने ही उपन्यास हैं। किन्तु हरेक उपन्यास की कथा भिन्न-भिन्न है। उपन्यास साहित्य सृजन में उनकी एक दृष्टि ने बम्बई जैसे महानगरीय जीवन की तडक-भडक में रहने वाले लोगों का दर्द, फिल्मी हथकंडे और फिल्म-दिवाने लोगों को अपने उपन्यास का कथ्य बनाया दूसरी दृष्टि ने परम्परागत चली आ रही विवाह प्रथा का विरोध किया तथा तीसरी दृष्टि ने जंगलों में रहने वाले आदिवासियों के जन-जीवन का सूक्ष्म यथार्थ और मार्मिक परिचय दिया है।

एक बात तो निश्चित है कि पात्रों के क्रिया-कलापों से ही कथावस्तु का निर्माण होता है। वस्तु कार्य है तो पात्र कारण, पात्र कार्य है तो वस्तु कारण। इस प्रकार वस्तु एवं पात्र उपन्यास में समान प्राधान्य रखते हैं। वस्तु के बिना पात्र नहीं और पात्र के बिना वस्तु नहीं। उपन्यासकार को जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना है। अतः वह ऐसे पात्रों का निर्माण करता है जो हमारे आस-पास की दुनिया के हों। अवस्थी जी भी एक सफल उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों में निहित सभी

पात्र यथार्थ जीवन से लिये गये हैं। वे युग सापेक्ष रचनाकार हैं। उनके उपन्यासों के पात्र अपने युग का प्रतिनिधित्व करते ही हैं साथ-ही-साथ युग की परिस्थितियों और परिवर्तन को भी स्पष्ट करते हैं। हमने सुविधा के लिए उपन्यास के गौण पात्रों का नामोल्लेख करके मुख्य पात्रों के चरित्र-चित्रण के संबंध में विवेचन किया है।

कहानी की तुलना में उपन्यास में पात्रों की बहुलता रहती है। आलोच्य उपन्यास में विस्तृत घटनाक्रम के अनुसार अनेक स्त्री-पुरुष पात्रों का समावेश किया गया है। किन्तु यहाँ कुछ उल्लेखनीय पात्रों पर प्रकाश डाला गया है। उपन्यास के प्रमुख पात्रों में बंजारी, कंगला, जोसेफ एवं गौण पात्रों में विलियम, ग्रेसरी, मिस्टर कपूर, सरया, पादरी गिस्पा को गिनाया जा सकता है। पात्र अपने देशकाल एवं परिवेश की उपज होते हैं। भाषा, बोली, प्रदेश, जाति, शिक्षा, प्रकृति आदि की सारी विशेषताओं, उनकी उच्चाइयों और बुराईयों को लेकर वे अवतरित होते हैं। उपन्यास की मुख्य पात्रा बंजारी भी अपने गोड आदिवासी समाज एवं समाज की विशेषताओं तथा बुराईयों को लेकर उपन्यास में प्रवेश करती है। वह गोड आदिवासी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। और दूसरे चरित्र भी अपने समाज एवं उस की बुराईयों एवं अच्छाईयों को लेकर अवतरित हुए हैं।

मुख्य कथा उपन्यास का अधिकारिक कथा होती है। जिसका संबंध उपन्यास के मुख्य पात्रों से होता है। आलोच्य उपन्यास में कंगला मुख्य पात्र है जो बंजारी का प्रेमी है जिसका चित्रण अवस्थी जी ने अन्य पात्रों के संवादों से किया है। कंगला बंजारी से एकनिष्ठ प्रेम करता है परन्तु बंजारी उसके प्रेम की गहराई को न समझकर विलियम नामक युवक के बहकावे में आती हैं। इसके परिणामस्वरूप कंगला का दिल टूट जाता है। झरपन उसकी दयनीय स्थिति का वर्णन इन शब्दों में करती है-

“कंगला अब भी तेरी याद नहीं भुला । दिन भर रोता रहता है । कहता है- बंजारी ने धोखा दिया है तो जिन्दगी क़ारी बिता दूँगा ।”^७ कंगला बंजारी को जीवन भर नहीं भूल पाता । अंत में वह बंजारी को धृणात्मक जीवन से छुटकारा दिलाकर अपना लेता है । आदिवासी युवक होने के कारण कंगला एक कुशल नर्तक के रूप में हमारे सामने आता है । कंगला प्रमुख रूप में एकनिष्ठ प्रेमी है । सरलता, सहृदयता, कठोर परिश्रमी आदि उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं ।

जोसेफ ‘सूरज किरण की छाँव’ उपन्यास का एक अन्य प्रमुख पात्र और नायिका बंजारी का असफल पति है । जोसेफ अत्यन्त स्वार्थी, बेईमान, अत्याचारी और चरित्रहीन व्यक्ति है । वह धन को सर्वोपरि मानता है । पैसों के लालच में वह अपनी पत्नी बंजारी को एक होटल में मि. कपूर के हाथ बेच देता है । बंजारी जोसेफ को दिलोजान से चाहती है किन्तु जोसेफ के मन में अपनी पत्नी के प्रति बिल्कुल प्रेम नहीं है । उसके व्यक्तित्व में एक प्रकार का पतन दिखाई देता है । अपनी पत्नी होते हुए भी वह रुबी नामक लड़की से नाजायज संबंध रखता है । उसके व्यक्तित्व में कौन-सी खराबी नहीं है? वह शराबी, निष्ठुर और कामचोर व्यक्ति है । वह अच्छी तरह से जानता है कि आज की दुनिया में जीवित रहना है तो धन के अलावा चापलूसी की भी आवश्यक है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जोसेफ में ऐसा एक भी गुण नहीं है तो सभ्य व्यक्ति द्वारा ग्रहण किया जा सके ।

‘सूरज किरण की छाँव’ उपन्यास का संपूर्ण कथानक बंजारी के आस-पास घूमता है । बंजारी प्रस्तुत उपन्यास की नायिका, बंगला की प्रेमिका और जोसेफ की पत्नी है । निश्चित ही उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में आदिवासी जीवन को उसकी पूर्णता में उद्घाटित करने के लिए बंजारी जैसे पात्र का निर्माण किया । वह आदिवासी

भोली-भाली युवतियों का प्रतिनिधित्व करती है। वह गाँव की सबसे खूबसूरत युवती है। उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास को यथार्थता प्रदान करने के लिए बंजारी जैसी सामान्य पात्रा को लिया है। बंजारी को अपनी छोटी सी भूल के कारण जीवन भर पछताना, छटपटाना पड़ता है। पूरे उपन्यास में वह छटपटाती है। उसकी छटपटाहट आदिवासी युवतियों की छटपटाहट है। बंजारी के पात्र को चित्रित करते अवस्थी जी ने गोंड आदिवासी समाज को लक्षित किया है। कंगला उसे जी-जान से चाहता है, किन्तु बंजारी विलियम के बहकावे में आकर सबकुछ खो देती है। पंचायत के निर्णय के अनुसार उसे जोसेफ से विवाह करना पड़ता है। वह जोसेफ को अपना पति स्वीकार करके जी-जान से प्रेम करती है, किन्तु जोसेफ उसे प्यार नहीं करता और अंत में पहाड़ पर ले जाकर मिस्टर कपूर को पाँच सौ रुपये में बेच देता है। असहाय बंजारी अपने पति के खिलाफ कुछ आक्रोश व्यक्त करती है। किन्तु कुछ नहीं कर पाती। वहाँ बंजारी को अपनी मर्जी के खिलाफ वेश्या व्यवसाय करना पड़ता है। इस तरह वह जीवन भर छटपटाती है। बंजारी अच्छी पत्नी है। जोसेफ जैसे चरित्रहीन व्यक्ति के साथ भी वह पत्नीत्व का निर्वाह तन, मन से करती है। उसमें गजब की सहनशीलता है। अपने पति जोसेफ से पिटने के बाद भी वह उस से माफी माँगती है। वह मिलनसार औरत है। अपने मिलनसार स्वभाव के कारण ग्रेसरी, मरियन, मैडम, मिस्पा और पटेल की लड़की लाजो से अच्छी दोस्ती है। अपने जीवन में पत्नी के अलावा सफल गृहिणी भी है। जब कभी आदिवासी समाज का खाना बनाना है तो बंजारी के हाथ का। वह बहुत अच्छे ढंग से भोजन बनाती है। जितनी सामाजिक है उतनी ही धार्मिक भी। धार्मिक प्रवृत्ति के कारण उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन दिखाई देता है। धर्म और ईश्वर में उसका अगाध विश्वास है।

उसके जीवन में, विचारों में प्रगतिशीलता दिखाई देती हैं। प्रगतिशीलता का गुण बंजारी में पढ़ने के बाद आता है। जोसेफ को बार-बार सहती है। अंत में जब जोसेफ उसे बेच देता है तो वह विद्रोही बन जाती है। वह मिस्टर कपूर का विरोध करती है। उसे जब मिस्टर कपूर से छूटकारा मिलता है तो वह समाज की परवाह किये बिना कंगला के साथ रहना पसंद करती है। अतः कहना चाहें तो कह सकते हैं कि बंजारी में आदिवासी जीवन की उस संवेदना का वर्णन है जो हरेक पाठक को सहज रूप में उपन्यास को पढ़ने से प्राप्त होती है। वैसे तो सामान्य उपन्यासों की तुलना में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों में पात्रों की संख्या ज्यादा होती है। पात्रों की यह भीड़ सृजनात्मक अभिप्राय से जुड़ी एक अनिवार्यता होती है। प्रस्तुत उपन्यास में राजेन्द्र अवस्थी उपन्यास के सभी पात्रों के समग्र व्यक्तित्व का आलेखन न कर केवल उतना ही करते हैं जितना विषय वस्तु की मांग के अनुरूप हो जिससे आदिवासी परिवेश की प्रवृत्ति को उजागर किया जा सके। उनके अधिकतर पात्र सामाजिक यथार्थ की गहरी पहचान को उभारते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पात्र संरचना की दृष्टि से आदिवासी जीवन संबंधी उपन्यासों ने कथा साहित्य को महत्वपूर्ण पात्र दिए हैं जो विभिन्न अँचलों की सांस्कृतिक पहचान के साथ मानवीय एवं सामाजिक सरोकारों के कारण विभिन्न जीवन संदर्भों में टकराते, संघर्ष करते एवं नये मूल्यों की तलाश में बैचन दृष्टिगत होते हैं।

२. जंगल के फूल :

आदिवासी जन-जाति जीवन की कथा को आधार बनाकर उपन्यास लिखने वालों में राजेन्द्र अवस्थी का नाम लिया जाता है। अवस्थी जी ने शोषित-उत्पीड़ित आदिवासियों की व्यथा-कथा को अपने उपन्यासों का कथ्य बनाया है। 'जंगल के

‘फूल’ उपन्यास लिखने से पहले वे गोंड आदिवासी जीवन पर ‘सूरज किरण की छाँव’ उपन्यास लिख चुके थे, जो हिन्दी उपन्यास साहित्य जगत में बहुत चर्चित रहा ।

प्रस्तुत ‘जंगल के फूल’ उपन्यास को यदि ऊपर से देखा जाय तो, वह सुलकसाए और महुवा की प्रेमकथा ही लगती है, परंतु वास्तव में महुआ और सुलकसाए की कथा तो इस उपन्यास की एक उपकथा ही है । लेखक ने झिरिया, झालर, भुसरी, सिरहा, गायता, गंगी आदि अनेक जंगलों के फूलों के माध्यम से बस्तर क्षेत्र के जन-जीवन को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । साथ ही आदिवासी जन-जीवन में शोषण का प्रतिकार करने के लिए उभरती चेतना को भी रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है ।

‘जंगल के फूल’ सन् १९६० में लिखा गया । राजेन्द्र अवस्थी का कुछ विशेष चर्चित उपन्यास है । इसमें मध्यप्रदेश की जंगल जातियों, आदिम जातियों का यथार्थ चित्र देने के साथ ही सन् १९०८ के राज्यव्यापी ‘भूमकाल’ या विद्रोह को भी प्रस्तुत किया है ।

श्री राजेन्द्र अवस्थी रचित ‘जंगल के फूल’ उपन्यास का कथानक मध्यप्रदेश के दक्षिण में स्थित बस्तर जिले के गोंड आदिवासी-जीवन पर आधारित है । यहाँ के पिचहतर प्रतिशत निवासी अब भी आदिम सभ्यता में हैं । उनके अपने रीति-रिवाज हैं, उनकी अपनी संस्कृति है, उनकी अपनी मान्यताएँ हैं, और वे आज भी उनमें बूरी तरह से जकड़े हुए हैं । अवस्थी जो लिखते हैं- “जगदलपुर से सौ मील तक तो कोई रेलमार्ग नहीं है । मोटर का आना-जाना अभी आरम्भ हुआ है, इसलिए यहाँ के निवासी शहरी सभ्यता से कोसों दूर हैं और उन्होंने अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को अछूते कौमार्य की भाँति सुरक्षित रखा है ।”^५ यही बस्तर पहले एक देशी

रियासत थी । आजादी के बाद देश की अन्य रियासतों के साथ-साथ बस्तर रियासत को भी भारतीय गणराज्य में विलय कर दिया गया । बस्तर के इतिहास के बारे में कहा जाता है कि, ई.४०० से लेकर भारत के आजाद होने तक की अवधि में नल, गंग, नाग तथा चालुक्य शासकों ने अपने राज्य स्थापित किये थे । ग्यारहवीं सदी में मुसलमानों के आक्रमण से त्रस्त होकर एक नागवंशी राज-परिवार भागकर यहाँ आया था और बारसूर में उसने अपनी राजधानी स्थापित की थी । बाद में राजधानी बस्तर चली गई और फिर जगदलपुर । बस्तर के राजा अपने को पाण्डुवंशी मानते हैं और कहते हैं कि, वे दिल्ली के शासक राजा वीरभद्र के संतान हैं । वीरभद्र बड़े प्रतापी और देशभक्त राजा थे । ऐसे प्रतापी और देशभक्त राजाओं की वंशावली में रुद्रप्रतापदेव का जन्म हुआ । अवस्थी जी लिखते हैं- सन् १८९१ में भैरामदेव मर गया । तब उसका बेटा रुद्रप्रताप देव नाबालिग था । उसकी नाबालिगी का फायदा उठाकर अंग्रेजों ने अपना अधिकार जमा लिया और उसके नाम पर वे स्वयं शासन करने लगे । जब रुद्रप्रताप देव युवा हुए तो सन् १९०८ में (जनवरी मास) गद्दी उन्हें मिल गई, परन्तु अंग्रेजों के अधिकार कम नहीं हुए ।

राज्य में बदलाव होता रहा, परन्तु बस्तर राज्य की प्रजा को कुछ पता न चला । वे सीधे-सादे और भोले-भाले लोग राजा के प्रति वफादार रहे, वह चाहे जो भी हों । हर दशहरे में राजा दर्शन देता और ये उसे नजराना भेंट करते । यह प्रथा आज भी चली आ रही है ।^{१९} किन्तु बस्तर के आदिवासियों में खलबली मचने का कारण कर्नल फेगन तथा ग्रेयर रहे । इन अधिकारियों ने 'शिफ्ट कल्टीवेशन' बन्द करने, जंगल काटना रोकने, जंगल-कर लगाने, शिक्षा के लिए पाठशालाएँ बनाना आदि के लिए नये कानून पास किये, परन्तु इन सबका दोष पंडा बैजनाथ के सिर

पर पडा । ये अधिकारी कानून बना ही पाये थे कि यहाँ से चले गये और पंडा बैजनाथ को दीवान नियुक्त किया । अवस्थी जो लिखते हैं- “यह सन् १९०४ की बात है । पंडा बैजनाथ पुराने ई.ए.सी. थे । उनके समय में सरकारी अफसर भी मनमानी करने लगे थे, और इन सबका परिणाम था, राज्यव्यापी ‘भूमकाल’ या विद्रोह ।”^{१०}

बस्तर के इतिहास में यहीं ‘भूमकाल’ अपना विशेष महत्व रखता है । बेचारे पंडा बैजनाथ का इसमें हाथ न होते हुए भी यहाँ के पिछड़े आदिवासी आज भी उन्हें को दोषी मानते हैं । अवस्थी जी लिखते हैं- ‘पंडा साहब इस समय जीवित हैं और ९३ वर्ष के वृद्ध है । उनसे मेरा पत्र व्यवहार हुआ था । अपने पत्रों में पंडा साहब ने भूमकाल के संबंध में कुछ जानकारी दी है, किन्तु उससे ज्यादा जानकारी मुझे अन्य स्थानों से मिली ।’^{११} बाद में भूमकाल की जाँच-संबंधी एक कमीशन भी नियुक्त किया गया । जाँच कमीशन ने जाँच करके कुछ रिपोर्ट भी दी किन्तु तत्कालीन अंग्रेज शासक ने इस रिपोर्ट को कहाँ रखा कुछ पता नहीं चला । और गुप्त रखना भी तत्कालीन शासकों के लिए अनिवार्य था क्योंकि इस भूमकाल को निर्ममता और धोखेबाजी से कुचला गया था । और वही भूमकाल की दर्दभरी कहानी ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में प्रस्तुत हुई है । अवस्थी जी लिखते हैं- “उसकी दर्दभरी कहानी का पूरा उपयोग मैंने इस उपन्यास में किया है । भूमकाल के संबंध में मुझे राजपरिवार के कुछ विश्वस्त सदस्यों ने भी बताया था और जनश्रुती तो सबसे बड़ा माध्यम रहा ही है । इन सब सामग्रियों को लेकर मैंने यह उपन्यास लिखा है। यहाँ मैं पंडा बैजनाथ के तीन पत्रों का उल्लेख भी करना चाहूँगा । उनसे मूल घटनाओं के समझने में काफी सहायता मिलेगी ।”^{१२}

‘जंगल के फूल’ उपन्यास की सृजन प्रेरणा के पीछे अवस्थी जी का शायद यही विचार रहा होगा कि, बस्तर के आदिवासियों के प्रति ही नहीं, अपितु पूरे आदिवासी समाज के प्रति पाठक के मन में कुछ हमदर्दी पैदा हो ।

बस्तर के ‘गोंड’ आदिवासी जीवन पर लिखा गया अवस्थी जी का यह दूसरा उपन्यास है । जिसकी कथावस्तु उन सुदूर स्थित बस्तर के आदिवासियों से संबंधित है, जो अवस्थी जी के अपने नहीं है, लेकिन अनायास उन्हें अपनाकर अपनी लेखनी का विषय बनाया है । ऐसे उपन्यासकारों के लिए यह कार्य अति दुष्कर बन जाता है । रचनाकार को ऐसे दूर-दराज के पिछड़े प्रदेशों में जाने के लिए लम्बी-लम्बी यात्राएँ करनी पड़ती हैं । यातनाएँ सहनी पड़ती हैं । अथक् प्रयत्न करके उनके निकट पहुँचना पड़ता है । निकट पहुँच कर उनके साथ बैठकर बात-चीत करके उनकी भाषा, बोली, मुहावरे आदि का बड़े मनोयोग से अध्ययन करना पड़ता है । तब कहीं जाकर उनके रीति-रिवाज, परम्पराएँ, रूढ़ियों, उत्सव, त्यौहार, उनके व्यवसायों आदि से साक्षात्कार होता है। और परिवेश विशेष के मिजाज को उभारता है । प्रस्तुत ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में राजेन्द्र अवस्थी विशेष प्रकार के परिवेश को उभारकर आदिवासी जीवन की विशेषताओं एवं समस्याओं को उजागर करते हैं । अपने समय की विसंगतियों को स्वर देने के कारण यह उपन्यास सम-सामयिक जीवन की तस्वीर उभारता है । स्वातंत्र्योत्तर काल में आये राजनीतिक बदलाव ने गाँव एवं जंगल में स्थित वन्य जातियों के जीवन को संतुष्ट कर दिया है । उसके गहरे चित्र ‘जंगल के फूल’ में देखे जाते हैं ।

कथाक्रम: ‘जंगल के फूल’ उपन्यास की कथा में क्रमबद्धता नहीं है । फिर भी संपूर्ण कथा छोटे-छोटे मार्मिक संदर्भों में संश्लिष्ट चित्रों से गुंथी हुई है । हरेक

घटना अपने-आप में पूर्ण है । इन घटनाओं के माध्यम से उपन्यासकार ने बस्तर के आदिवासी जीवन, वहाँ की संस्कृति, वहाँ के निवासियों के रीति-रिवाज और उनके समग्र जीवन को रेखांकित किया है । उपन्यासकार अपना मूल उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहता है- “इस उपन्यास में उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों के सिवाय मेरी अपनी कल्पना भी है । उपन्यास को पूरी कहानी प्रायः काल्पनिक है । इसके द्वारा मेरा मूल उद्देश्य बस्तर के घोटुल जीवन, वहाँ की संस्कृति, वहाँ के निवासियों के रीति-रिवाज और उनके जीवन के समग्र चित्र को सामने रखना है ।” ‘जंगल के फूल’ उपन्यास की कथा पढ़ने से मुझे लगा कि कथा संघटन की यह शैली बिल्कुल रेणु के ‘मैला आँचल’ जैसी है । रेणु के ‘मैला आँचल’ में अमुक आकर्षक कथावस्तु को गूँथकर प्रस्तुत करने का अथवा अमुक पात्रों या पात्र पर ध्यान केन्द्रित करने का कोई उपक्रम नहीं दिखाई देता । जिसके कारण प्रमुख पात्रों के चरित्र भी पूरी तरह विकसित नहीं हो पाये हैं । किन्तु कुल-मिलाकर कह सकते हैं कि, रचनाकार के व्यक्तिगत बात को महत्व न देकर जातिगत जीवन को महत्व देने के कारण कथा और पात्रों की स्थिति स्वाभाविक बन गई है ।

‘जंगल के फूल’ उपन्यास का प्रारंभ गोंड आदिवासी उत्सव ‘लाडूकाज’ से होता है । वह उत्सव गोंड आदिवासियों द्वारा वर्ष में एक बार धूम-धाम से मनाया जाता है । जिसमें ‘गोंड’ आदिवासियों द्वारा नारायण देव की पूजा की जाती है । पूजा के दिन सारे गाँव के अबालवृद्ध एक साथ मिलकर नाच-गान करते हैं । नाच-गान में विशेष रुचि गाँव के नवयुवक और नवयुवतियों में दिखाई देती है । ऐसे नव-युवा पात्रों में सुलकसाए और महुआ हैं, जो इस उपन्यास के नायक और नायिका हैं । महुआ के लचकदार नृत्य पर इस गाँव में आने वाला गोरा अंग्रेज अधिकारी

अति प्रसन्न हो उसकी ओर आकर्षित होता है। अवस्थी जी लिखते हैं- “उसकी लचीली कमर ने नागिन की तरह जितने रंग बदले, गीत की हर लय और तान के साथ उसने जो अंगड़ाई ली, गोरे अफसर की छाती में छूरी की तरह चुभ गई।” गोरे की दृष्टि महुआ के पूरे शरीर पर घूमती-फिरती है, उससे रहा नहीं जाता और महुआ के साथ शारीरिक संबंध जोड़ने की इच्छा रखता है। गाँव में आये मेहमान के लिए गाँव का ‘थानागुडी’ मेहमान घर है। किन्तु गोरा अंग्रेज अधिकारी ‘थानागुडी’ में मेहमान न बनकर गाँव को पुराने स्थल राजा महल में रात रुकना चाहता है। गाँव के लोग गोरे को राजा महल में रुकने के लिए मना करते हुए कहते हैं कि राजा महल में भूत-प्रेत का वास है। गाँववालों द्वारा बहुत कहने पर भी गोरा नहीं मानता और ऊपर से गाँववालों को फटकार देता हुआ कहता है कि तुम आदिवासी हो। भूत-प्रेत आदिवासियों का वहम है।

दूसरी तरफ महुआ की चिन्ता बढ़ जाती है। वह मन-ही-मन अपने पूर्वजों को याद करती है। क्योंकि कल रात उसका शारीरिक संबंध गोरे के साथ होने वाला है। महुआ जी जान से सुलकसाए से प्रेम करती है, वह दोनों घोटुल के सदस्य हैं। शायद गोरे के साथ महुआ का शारीरिक संबंध, महुआ को सुलकसाए से जीवन भर अलग कर सकता है। किन्तु उससे पहले महुआ की रक्षा हो जाती है। जहाँ गोरा अधिकारी सोया है, वह राजा महल आधी रात में पुकार उठता है। निद्रा में गोरे को कोई झकझोरता है। वह जाग जाता है। जाग कर देखता है, तो ज्वाला की पतली-सी रेखा करुण क्रंदन करती हुई उसकी ओर आ रही थी। दो-चार कदम वह सामने आ गई तो छाया मिटकर वह एक जवान नंगी औरत बन जाती है। गोरा का मन इस घटना को झेल नहीं पाता और बेसुध हो जाता है। सुबह होते ही गोरे

के घायल होने की बात हवा की तरह गाँव में फैल जाती है। गाँव के ओझा द्वारा गोरे अधिकारी का इलाज होता है। और वही गोरा महुआ से बिना मिले गाँव छोड़कर भाग निकलता है। आधी रात राजा महल में नंगी औरत के रूप में आनेवली दूसरी कोई नहीं, गिरिया चुड़ैल थी जो महुआ को गोरे के चंगुल से बचाने आई थी।

‘घोटुल’ गाँव से लगा एक प्रकार का ‘कुमारगृह’ है। सूर्यास्त होते ही घोटुल का कोना-कोना साफ किया गया है। जैसे रात का पहला पहर बितते ही गाँव के नवयुवक और नवयुवतियाँ बगल में गीकी (चटाई) लेकर घोटुल में इकट्ठा होते हैं। लड़कियाँ तो विशेष रूप से सज-धज कर आती हैं। वे बातों में प्यार की लहरियाँ डालती हैं और लकड़ी की कंधियाँ खोंसती हैं। ये कंधियाँ प्रेमियों के प्यार की निशानी होती हैं। घोटुल में सज-धज कर आने वाली युवतियों को मोटियारी कहा जाता है और युवकों को चेलिका। घोटुल का लीडर (नेता) सरदार कहलाता है। घोटुल का सरदार आखिर सरदार होता है, वह जिस लड़की को चाहे अपने साथ सुला सकता है। दो लड़कियाँ भी उसका साथ दे सकती हैं। और वह न चाहे तो एक भी नहीं। सुलकसाए घोटुल का सरदार है। उसे अपनी माँ का प्यार नहीं मिल पाया। वह महुआ को जीजान से प्यार करता है। महुआ भी सुलकसाए को प्यार करती है, किन्तु सुलकसाए महुआ से ब्याह करने पर सहमत नहीं होता।

एक दिन सुलक नजदीकी गाँव नेतानार में अपने मित्र झालर सिंह के साथ विवाह में शरीफ होने जाता है। विवाह के नृत्य एनदान में वहाँ की दुल्हिन भुसरी उसके साथ नाचने लगती है। अपनी दुल्हिन को पराये युवक सुलक के साथ नाचते देखकर दुल्हे को बुरा लगता है। सुलक शराब के नशे में चकनाचूर था। दुल्हा क्रोधित हुआ दुल्हिन भुसरी पर टाँगी चलाता है, साथ ही साथ वह सुलक पर भी

वार करना चाहता है। सुलक दुल्हिन भुसरी को बचाने के लिए दुल्हें के पेट में हँसिया घुसेड देता है। नृत्य समाप्त होने के बाद सुलककार अपने गाँव चला जाता है। नशा उतारने पर घोर पश्चाताप करता हुआ चुपचाप अपना गाँव छोड देता है।

सुलक के जाने के बाद महुआ अपने-आपको अकेली महसूस करती बीती हुई सुलक के साथ घोटुल की रातों को याद करती है। एक रात सुलक की विमाता सताय की कोई हत्या कर देता है। सुलक के पिता हिरमे भी अपनी पत्नी से नाराज थे किन्तु पत्नी के मरने के बाद उनके छोटे-छोटे बच्चों की देख-भाल कौन करे इस बात पर अधिक चिंतीत थे। महुआ इन बच्चों की देख-भाल करने लगती है। वह धीरे-धीरे सुलक की ओर से अपने मन को हटाकर इन बच्चों की देख-भाल पर लगाती है। सताय की हत्या सुलक के मित्र गुमा ने की थी। गुमा को जेल हो जाती है। गुमा की आवा गंगी एक तरफ से हिरमे के बच्चों की देख-भाल करती है, तो दूसरी तरफ अपने बेटे गुमा को हिरमे के बयान पर जेल से छुडाने के लिए कहती है। गुमा जेल से छूट जाता है। और गंगी भी हिरमे के साथ जीवन बिताने लगती है।

कथा विकास में एक ओर प्रेम कथा जुडती है, जो झालर सिंह और जलियारों की प्रेम कथा है। किन्तु सामाजिक व्यवहारों के कारण जलियारों की शादी झालर सिंह के साथ न होकर एक अन्य युवक के साथ हो जाती है।

सुलक गाँव छोडकर जब से गया है, गाँव वाले सुलक के लिए चिंतीत रहते हैं। किन्तु सुलक दंतेवाडा जाकर अपनी माँ मुंदरी के पास रहकर अंग्रेज के खिलाफ नयी-नयी योजनायें बनाता है। इस तरफ गढ बंगाल में आदिवासियों की जमीन पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाता है। अपनी जमीन पर अधिकार जताने के लिए आस-

पास के सारे गाँव एकजुट होकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ना चाहते हैं। युवक और युवतियों का दल बनता है। महुआ युवतियों के दल की अगुआई करती है। एक बार महुआ का दल दन्तेवाड़ा जाता है, वहाँ महुआ की भेंट सुलक से होती है। बीते-गुजरे प्रेम के दिन वापस लौट आते हैं। सुलक भी युवकों का अगुआ है। दोनों मिलकर आदिवासी समाज में गोरों के प्रति विद्रोह भावना जगाते हैं। किन्तु गोरे लोग धोखा देकर इन आदिवासी प्रजा पर सोआम गोलीबारी करते हैं। कितने आदिवासी वहीं मर जाते हैं, तो कितने अपने आपको बचाकर भाग निकलते हैं। सुलक और महुआ भी भाग निकलते हैं।

वस्तुतः आदिवासियों का विद्रोह और अंग्रेजों द्वारा धोखा देकर इन विद्रोहियों पर दमनचक्र चलाने की घटना वास्तविक है। शेष सारा घटनाक्रम काल्पनिक है।

आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों में पात्रों की सृष्टि अन्य प्रकार के उपन्यासों से बिल्कुल भिन्न होती है। पात्र-सृष्टि की भिन्नता का कारण परिवेश है। परिवेश-प्रधान एवं व्यक्ति प्रधान उपन्यासों में जहाँ उपन्यासकार पात्रों की संपूर्ण जिन्दगी का इतिवृत्त प्रस्तुत करता है, वहाँ इन उपन्यासों में पात्रों की सृष्टि का लक्ष्य वह विशिष्ट भू-भाग होता है जिसको व्यक्ति चरित्रों की आड़ी-तिरछी रेखाओं से उजागर करना होता है। इस प्रकार के उपन्यासों की यह विशिष्टता होती है कि इनमें पात्रों की संख्या अधिक होती है। किन्तु उपन्यासकार सभी पात्रों के समग्र व्यक्तित्व को आलेखित न कर केवल उतना ही चित्रण करता है जितना कथावस्तु की माँग तथा आदिवासी जीवन विशेष की प्रवृत्ति के दिग्दर्शन के लिए आवश्यक होता है। मतलब यह है कि आदिवासी जीवन संबंधी उपन्यासों की पात्र-सृष्टि में न कोई नायक होता है और न कोई खलनायक। देशकाल की मिट्टी से गढ़े हुए पात्र लेखकीय आवश्यकता

का निर्वाह करने आते हैं और चले जाते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि, कोई पात्र उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक आवश्यक है तो कोई पात्र कुछ क्षण के लिए आता है और चला जाता है। वस्तुतः इस प्रकार के उपन्यासों का उद्देश्य केवल आदिवासी क्षेत्र विशेष के विशिष्ट भू-भाग के व्यक्तित्व का निर्माण करना ही होता है, और उसी को चित्रित करने के लिए विभिन्न छोटे-बड़े पात्रों का नियोजन होता है।

‘जंगल के फूल’ उपन्यास की कथा में घटनाक्रम का प्रवाह नहीं है। संपूर्ण कथा छोटे-छोटे मार्मिक संदर्भों के संश्लिष्ट चित्रों से गुंथी हुई है। सभी संदर्भ अपने-आप में पूर्ण होते हुए भी मिलकर पूरी गोंड आदिवासी संस्कृति को उभारते हैं। परिवेश ही शक्तिशाली बन जाने के कारण जो पात्रों का चरित्रांकन होना चाहिए वह नहीं बन पाया है, किन्तु जीतना भी हुआ है वह अपने आप में विशिष्ट है।

‘जंगल के फूल’ उपन्यास का कथा नायक सुलकसाए है, जो गढ़ बंगाल गाँव के गायता हिरमे का पुत्र है। उसे बचपन में अपनी माँ का प्रेम नहीं मिला। माँ मुंदरी बचपन में इसे छोड़कर कहीं भाग निकलती है। सुलक बचपन से ही आत्म-सम्मानि रहा है। उपन्यास के प्रारंभ में अंग्रेज अफसर के सामने पुरा गाँव नतमस्तक होकर अफसर की धमकी को एवं ट्रेमेंडस... जानवर आडमी जैसी गालियों को सुनता है, तब सुलक अंग्रेज अफसर के सामने वाक् व्यंग्य करते हुए कहता है, “नहीं जंगली आदमी” सुलकसाए ने व्यंग्य किया और सूअर को अपने हाथों से ठीक करने लगा।” जितना वह होशियार है, इससे कहीं ज्यादा सुन्दर भी है। सुलक की सुन्दरता पर गाँव की हरेक मोटियारी रीझती है। वह सामान्य युवक नहीं है। वह गाँव के घोटुल का सरदार है। जिसके सिर पर घोटुल की सारी जिम्मेदारी रहती है। घोटुल का सारा-का-सारा काम सरदार की मरजी से होता है। मानो कि कोई बड़े अफसर की

बात को हुक्म-अदुली कर सकता है, किन्तु घोटुल का कोई भी सदस्य सरदार की बात टाल नहीं सकता। पूरे गाँव के युवक और युवतियाँ मिलकर सरदार का चुनाव करते हैं। दो दो सालों से सुलक ही चुनाव जीतता है। उनके व्यक्तित्व के बारे में अवस्थी जी लिखते हैं- “सुलकसाए। कितना मीठा नाम है। और यही नाम तो गढ़ बंगाल के घोटुल का सरदार है। ऊँचा, पूरा, हड्डा-कड्डा सत्रह बरस का जवान। पत्थरों जैसी कठोर धुआँरी देह। बात का पक्का और काम का पूरा। मन में कुछ ठान ले तो करके छोड़े और मन न चाहे तो दुनिया की ताकत उस से कुछ न करा सके। तीन बरस हो गए, घोटुल का कोई सदस्य उसे छोड़ने को तैयार नहीं है। हर साल चुनाव होता है। हर साल वही सरदार चुना जाता है। उसकी बराबरी का दूसरा कोई आदमी जैसे इस घोटुल में मिलता ही नहीं।”^{१३} उपन्यासकार ने एक अच्छे नेता, प्रेमी, युवा आदि अनेक रूपों में उसकी चारित्रिक विशेषताओं को एक साथ यहाँ रख दिया है।

सुलक उपन्यास की नायिका महुआ का प्रेमी भी है। जो जी जान से महुआ को चाहता है। उसका साथ घोटुल में मिलना, नृत्य करना, गाना और गीकी में सोता भी है। किन्तु ब्याह करने के लिए सहमत नहीं होता, क्योंकि वह ब्याही जिंदगी को बंधनकर्ता समझता है। एक दिन वह अपने मित्र झालर सिंह के साथ नजदीकी गाँव नेतानार में एक विवाह में शरीक होने जाता है। विवाह के एनादान नृत्य में वहाँ की दुल्हिन भुसरी के साथ नाचता है। अपनी दुल्हिन को पराये मर्द के साथ नाचते हुए देखकर वहाँ का दुल्हा आग बबुला होकर भुसरी को मारने आता है। सुलक भुसरी को बचाता हुआ कहता है- “क्या बात है, भुसरी? कोई मच्छर आ गया क्या?” सुलक तुरन्त दौड़कर दुल्हे को उपर उठा लेता है और जमीन पर मारता

उसके पेट में हंसिया घुसेड देता है । वह नशे में था ।

नशा उतरने पर वह मानव सहज पश्चाताप भी करता है । वह सारी परिस्थितियों का मूल नशे को मानते हुए नशा न करने की प्रतिज्ञा लेता है । और अपने गाँव गढबंगाल को छोडकर अपनी माँ सुंदरी के पास दंतेवाडा चला जाता है । वहाँ आकर गोरे के खिलाफ लडने की नयी-नयी योजनाएँ बनाता है।

थाडे समय के बाद महिलाओं की अनुआइन बनती महुआ भी सुलक के पास दंतेवाडा पहुँचती है । सुलक और महुआ दोनों मिलते हैं । दंतेवाडा के घोटुल में रात भर नाचगान होता है । सुलक नाचने में भी पारंगत था । दंतेवाडा ही हरेक मोटियारी के दिल में वो अपना स्थान बना लेता है । वह दृढ विश्वासी है । साथ-साथ में भगवान पर अटूट श्रद्धा भी रखता है । उपन्यास में एक जगह अवस्थी जी लिखते हैं- “सुलक के सिर पर बंधे मोर-पंखों में से एक पंख नीचे गिर पडा । उसे देखते ही सबके पैर अड गए । सुलक थोडी देर तो उसे एकटक देखता रहा । फिर उसने पंख उठाया । उसे घोटुल की छत पर रख दिया । सब ने लिंगों से प्रार्थना की ‘हे देवता, हम पर क्या अनर्थ आने वाला है। हमारी रक्षा करो ।’”^{१४}

और यह बात इतिहास प्रसिद्ध है कि १९०८ में मध्यप्रदेश के बिस्तर जिले के गोंड आदिवासियों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ राज्यव्यापी ‘भूमकाल’ या विद्रोह छेडा गया था । इस विद्रोह में सुलक जैसे आदिवासी नवयुवकों का विशेष योगदान रहा है । वह अंग्रेजों के साथ लडने की इन लोगों की शुरुआत थी । अवस्थी जी लिखते हैं- “दोनों उस खंडहर के भीतर चले गये । और अपने साथियों की याद में आँसु बहाने लगे- ‘यह भूमकाल’ हम कभी नहीं, भूल सकते, सुलक, कभी नहीं, लेकिन यहाँ हमारा अन्त नहीं है ।

सुलक के अलावा झालरसिंह, गायता सिरहा, गोरा अफसर, ग्रेयर, गुण्डा, डेवरी, महाराजा रुद्रप्रतापसिंह आदि कितने ऐसे पुरुष पात्र हैं जो उपन्यास के विशिष्ट परिवेश को उभारने में अपना योगदान देते हैं ।

महुआ 'जंगल के फूल' उपन्यास के स्त्री-पात्रों में प्रमुख पात्र है । वह घोटुल के सरदार सुलक की प्रेमिका है । घोटुल की दुसरी मोटियारी की तुलना में महुआ अपने आप में विशेष मोटियारी है । वह अपने नृत्य पर सबको नचाती है । उपन्यास के प्रारंभ में आदिवासी पर्व लाडुकाज के अवसर पर महुआ के नाच का वर्णन करते हुए अवस्थी जी लिखते हैं- “सुलकसाए ने आगे बढ़कर महुआ की कमर पकड़ ली । वह प्यार के दर्द से चीख उठी । बाँस की जवान टहनी की तरह उसने अपनी कमर को लचकाया और गले को झटका देकर छाती सामने तान दी । सुलकसाए ने भी वही किया । यह देखकर दस-पांच और जोड़े मैदान में उतर पड़े । गाँव के अधेड़ औरत-मर्द भी पीछे न रहे । बुढ़े-बुढ़ियों की आँखें इन्हें देखने में खो गई ।” केवल इतना ही नहीं उनके नाच-गान को देख खुद गोरा अफसर भी अपने आपको भुल जाता है । और महुआ की जवानी देखकर पता नहीं मन में क्या-क्या सोचता है । अफसर की मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखता है- “उसकी नजर सबको छानती हुई महुआ पर अटक कर रह गई । उसने उसे सिर से पैर तक धूरा । उसके उभरते जोबन और दमकते चेहरे को देखा । मन-ही-मन वह न जाने क्या बुदबुदाया । साथ वाले काले अफसर ने उसके सामने सिर झुका दिया । गोरे ने शायद उसकी परवाह नहीं की । वह बूढ़े गायता की ओर बढ़ा जिसकी छाती से लिपटी महुआ जैसे महक रही थी और उसकी सुगंध ने उसे पागल बना दिया था ।”^{१५}

महुआ के यौवन को देखकर, उसके रूप वैभव को देखकर उसके रूप पर आसक्त होता गोरा अफसर महुआ के साथ शारीरिक संबंध बाँधने की इच्छा रखता है। गोरे अफसर द्वारा रात में राजामहल पर बुलाना महुआ के लिए एक अग्रिपरीक्षा थी, क्योंकि वह जी-जान से सुलकसाए से प्रेम करती है। किन्तु चुडैल झिरिया द्वारा गोरे अफसर को भगाया जाता है। महुआ अपने को गोरे अफसर से बचा लेती है। वह ऐसी दैवी शक्तियों पर दृढ़ विश्वास रखती है। वह चुडैल झिरिया के बारे में कहती है- “काश, रात में उसे अफसर के पास रहना पड़ता, झिरिया चुडैल न होती तो क्या, पता, सवेरे सुलकसाए उसमें आँखे फेर लेता और न जाने किससे वह अपनी नजरे उलझा लेता। इसीलिए वह बन्धनहीन रहना चाहता है। उसका क्या, वह रह सकता हैं, पर मेरा क्यों होगा? मैं औरत जो हूँ। कुम्हार की हंडी। एक बार जूठी हुई कि फिर बेकार। दूसरा खसम भले मिल जाए, पर दिल कहाँ मिलता हैं। उसने तय कर लिया कि आज रात जब घोटुल में सुलकसाए से मिलेगी तो जरूर बात करेगी। वह पूछेगी- तू जनम भर कँवारा रहना चाहता है? तुझे बंधन की जिंदगी में ऐसी क्या मुसीबत है।”^{१६}

जब सुलकसाए अपने किये हुए पर पश्चाताप करता अपने गाँव गढबंगाल को छोड़ता हुआ भाग निकल कर आत्महत्या करने का विचार करता है तो महुआ उसे समझाती हुई कहती है कि- “मरद होकर मरने की बात सोचता है। मरद का मन तो पत्थर होता है रे, जो टकराए सो चकनाचूर हो जाए और उसमें जरा-सी भी शिकन नहीं आती। तू कैसा मरद है।” सुलक की विमाता सताय की हत्या के बाद सताय के बच्चों को वह प्रेम से रखती है। सुलक की अनुपस्थिति में वह गोरे अफसर के खिलाफ नारी संगठन तैयार करती हुई नारियों की अगुआई बनती है। नारी चेतना

को जगाती केवल नारियों में नहीं अपितु सभी लोगों में गोरे अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह जगाने का काम करती है। वह अपने प्रेमी सुलक के साथ रहती हुई संगठन में शक्ति का संचार करती है। अंत में गोरों के खिलाफ 'भूमकाल' छेड़ती है। और एक नारी शक्ति का रूप प्रदान करती है।

इस प्रकार महुआ के अलावा जलियारों, भुसरी, सुंदरी, तिलोका और रतिया जैसे स्त्री पात्रों का भी प्रवेश 'जंगल के फूल' उपन्यास में हुआ है।

३. उतरते ज्वार की सीपियाँ :

यह उपन्यास अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, २/३६ अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली से १९६८ ई. में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने उस समय की स्थितियों को व्यक्त किया है। जब उन्होंने बम्बई में रणजीत स्टुडियो में स्वयं फिल्म निर्माण के लिए कार्यालय खोला था। उस समय लेखक के संपर्क में कई लोग आये थे। उन्होंने जिन परिस्थितियों का सामना किया और जो कटु अनुभव आये- उन सब का आकलन इस उपन्यास में चित्रित हैं।

फिल्मों में हीरोईन बनने के लिए अधिकांश युवतियाँ घर से भागकर बम्बई पहुँचती हैं, किन्तु वहाँ जाकर वे सिर्फ नुमाईश की वस्तु बनकर रह जाती हैं। फिल्मों में अवसर पाने के लिए वे एक बार नहीं हजारों बार अपने शरीर को बेचने के लिए तत्पर रहती हैं। इसके साथ ही फाइननेन्सर किस प्रकार निर्माताओं को भरमाए रखते हैं और फिल्मी दुनिया के व्यक्ति ज्योतिष पर कितना अंधविश्वास करते हैं, आदि स्थितियों का सूक्ष्म-विश्लेषण इस उपन्यास में किया गया है। 'उतरते ज्वार की सीपियाँ' में फैशन की दौड़ में साथ चलने के लिए स्त्रियों का देह व्यापार और बड़े शहर की यांत्रिकता में सिमटी विविध परिवेशों को भोगी हुई जिन्दगियाँ हैं।

‘उतरते ज्वार की सीपियाँ’ में कथावस्तु की बजाय घटनाओं को ज्यादा स्थान दिया गया है। बम्बई की दौडती-भागती जिन्दगी में लेखक के सम्पर्क में रिकी, शेफाली, कुसुम, सरस्वती, सबीना आदि सब युवतियाँ आती है जो पेट की ज्वाला को मिटाने के लिए फैशन की दौड में साथ चलने के लिए हजारों बार अपने शरीर को बेचती है। कुछ ऐसी युवतियाँ भी लेखक के संपर्क में आती हैं जो धनी परिवार की है। इन युवतियों का उद्देश्य शरीर की भूख मिटाना है। ये युवतियाँ रहन-सहन के लिए फैशन परस्ती को आबाद रखने के लिए ‘गणपत’ नामक केंद्रीय पाठक से बँधी हुयी है। अवस्थी जी ने बम्बई के जीवन को सभ्रांत व चकलों को, फिल्मी हथकण्डों को, उसकी भूल-भुलैया को, शीशमहल के सपनों को निकट परिचय के आधार पर प्रस्तुत किया है। भीड भरे, चकाचौंध करने वाले जीवन के तट-तक पहुँचते-पहुँचते टूट जाते हैं और अपने साथ पता नहीं कितनी टूटी-साबीत सीपियों को सुखी रेत पर छोड जाते हैं। उफान के उतार पर जिंदगी थमी नहीं, बिखरती लगने लगती है।

४. जाने कितनी आँखें :

‘जाने कितनी आँखें’ अवस्थी जी का चौथा उपन्यास हैं। इसका प्रकाशन सन् १९७० ई. में हुआ। इस उपन्यास में वर्णित सभी स्थितियाँ भारत स्वतंत्र होने से पहले की हैं। यह उपन्यास बुन्देलखण्ड के जनजीवन पर आधारित है। इन उपन्यास में अंचल-विशेष के प्रकृति-चित्रण को महत्व नहीं दिया गया है। किन्तु गाँवों की राजनीति एवं दिनचर्या का निरूपण किया गया है। अंग्रेजों के जमाने में सुशिक्षित मास्टर भी ‘एकछत्र’ शासन कर सकता था। थानेदार की चापलूसी के लिए उत्सुक गाँव, गाँव की दुःखद घटनाओं को सहज रूप में लेनेवाली बडी-बुढियाँ, मास्टर के

पुत्र और सुवेगा आदि का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया गया है । प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु एक और अंचल-विशेष से जुड़ी हुयी हैं, वहीं दूसरी और लेखक के व्यक्तिगत जीवन के अतीत का आधार भी हैं ।

अंग्रेजों के समय गाँव में किसी पढ़े-लिखे व्यक्ति का दबदबा रहता था । यहीं कारण है कि मास्टर बट्टीप्रसाद और थानेदार गुलाम मोहम्मद दोनों ही गाँव के सर्वेसर्वा है । गाँव में बड़ी-बूढ़ियों की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है । इसलिए प्यासन दादी उपन्यास में प्रत्येक स्थान पर उपस्थित है । सुखलाल क्रांतिकारी है । अतः अंग्रेज सरकार उन्हें पाँच वर्ष के लिए जेल भेज देती है । जेल जाते समय वे अपनी युवा पुत्री की जिम्मेदारी बट्टीप्रसाद को सौंप जाते हैं । बट्टी प्रसाद सुवेगा के विवाह के लिए अनेक जगह बातचीत चलाते है किन्तु दहेज के अभाव में उसका विवाह कहीं नहीं हो पाता । युवा सुवेगा की आकांक्षाएं मचलने लगती है और वह गाँव के कुर्मी चरणदास के बेटे कमलापत को अपना दिल दे बैठती है। कमलापत बी.ए. पास सुदर्शन युवक है । गाँव की बड़ी-बुढ़ियों की नजरों में सुवेगा और कमलपत का यह प्रेम छिप नहीं पाता । गाँव की बुजुर्ग महिला प्यासनदादी पूरे गाँव में इस प्रेम की चर्चा को फैला देती है । सुवेगा का घर से निकलना बंद कर दिया जाता है । मास्टर बट्टी प्रसाद सुवेगा को लेकर अत्यधिक परेशान होते हैं । उन्हें यह डर था कि कहीं अपने मित्र की नजर से गिर न जाऊँ । अतः वे शीघ्र ही सुवेगा का विवाह कर देना चाहते हैं । अंत में दहेज के कारण वे सुवेगा की माँ की सलाह लेकर अपने स्कूल के पैंतीस वर्षीय विधुर मास्टर दुबेजी के साथ उसका विवाह निश्चित कर देते हैं । ऐसी स्थिति में सुवेगा एक रात कमलापत के साथ बीजाडांडी गाँव छोड़कर भाग जाती है ।

अवस्थी जी ने इस उपन्यास में नारी मन पर सूक्ष्म प्रकाश डाला है । जब कोई किशोरी युवा जीवन में प्रवेश करती है तो उसके मन में अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ जागृत होती हैं । उन अभिलाषाओं का वर्णन निश्चय ही पठनीय है । लेखक ने सुवेगा के माध्यम से सामाजिक रुढ़ियों पर प्रहार करते हुए उन्हें खोखला और निरर्थक बताया है। इस उपन्यास के संदर्भ में यह कहना उचित होगा कि उसमें नारी की स्वतंत्रता को भी सहानुभूति की नजर से देखने की चेष्टा की गई है । सामाजिक आचार संहिता के साथ निजी अपेक्षाओं से विमुख होना निश्चय ही विस्फोटक है । व्यक्ति, परिवार और समाज तीनों के प्रति लेखक की दृष्टि सजग है । नारी मनोविज्ञान को जैविक आवश्यकताओं के आलोक में सहज ढंग से प्रकट किया है ।

५. बहता हुआ पानी :

‘बहता हुआ पानी’ उपन्यास में लेखक ने एक कलाकार का स्वाभिमान उसकी अस्त-व्यस्त जिंदगी और दर्द को अभिव्यक्त किया है । साथ ही समाज के सभ्य और आधुनिक जीवन-जीने वाले व्यक्तियों की आंतरिक स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है ।

‘बहता हुआ पानी’ उपन्यास में लेखक ने एक भावुक कलाकार जतीन की आत्मकथा को प्रस्तुत करते हुए आधुनिक समाज की आंतरिक स्थितियों का विश्लेषण किया है । जतीन के पिता उसे डाक्टर बनाना चाहते हैं, किन्तु उसकी आर्टिस्ट बनने की इच्छा है। इसलिए वह बम्बई के जे.के.स्कूल ऑफ आर्ट’ में प्रवेश लेता है । आर्ट्स का कोर्स पूरा करने के उपरान्त वह बम्बई में ही रहकर विभिन्न प्रकार की तस्वीरें बनाने लगता है । इन युवतियों में वीणाराय नामक युवती ईसाई परिवार की

उच्छृंखल और आजाद-खयाल वाली युवती है । पिता अफसर होने के कारण धन की कोई कमी नहीं, लेकिन माँ का स्नेह उसे नहीं मिलता । माता-पिता को छोड़कर अन्य व्यक्ति के साथ चली जाती है । वीणाराय अब तक तीन युवकों से प्रेम कर चुकी है, लेकिन उसके जीवन में कोई भी युवक नहीं आया जो उसे पत्नी के रूप में चुन ले । युवक उसके साथ प्रेम तो करते हैं लेकिन उसे पत्नी नहीं बनाते । जतीन के सम्पर्क में आकर वह जतीन की कला से प्रभावित होती है ।

जरीना सेठ कावसजी पीरजी की एकलौती पुत्री है । उसकी मंगनी हो गयी है । वह जतीन की कला से प्रभावित है । वह जतीन से हनीमुन के लिए कमरे की दीवारों पर 'कामसूत्र' के कुछ म्युरल्स बनवाना चाहती है। जतीना जरीना की इच्छा को ठुकरा देता है ।

उपन्यास की तीसरी युवती निगार है । निगार जतीन के दोस्त दिलीप की साली है। वह कलकत्ता से बम्बई मन बहलाने आयी है, जहाँ उसकी दीदी का घर है । उसे बचपन से ही चित्रकला का शौक है । अतः उसके जीजाजी अपने मित्र जतीन से उसका परिचय करवा देते हैं । निगार तलाकशुदा होने के साथ एक बच्ची की माँ भी है । निगार हर-दिन चित्रकला सीखने जतीन के पास जाती है । निगार और जतीन दोनों एक-दूसरे के सौन्दर्य और व्यवहार से काफी प्रभावित होते हैं । यह आकर्षण धीरे-धीरे प्रेम में परिवर्तित होता है, लेकिन निगार की बहन और जीजाजी को यह सम्बन्ध उचित नहीं लगता । उसकी दीदी उसे खूब कोसती है । जतीन उससे विवाह करना चाहता है । ऐसी विषम परिस्थिति में निगार जतीन से विवाह न करके वापस कलकत्ता जाने का निर्णय लेती है और इसकी सूचना जतीन को टेलीफोन द्वारा देती है । निगार जतीन को जीवनभर तडपने के लिए छोड़कर

कलकत्ता वापस लौट जाती है और इस प्रकार उपन्यास का अंत सुखान्त होते-होते दुखान्त में परिवर्तित हो जाता है ।

निगार के चरित्र से प्रस्तुत उपन्यास में एक बात स्पष्ट होती है कि एक ओर तो पुरुष नारी की स्वतंत्रता की बात करता है और दूसरी ओर उसे अपनी दासता में रखना चाहता है । पुरुष की प्रवृत्ति के पीछे उसका अहं भाव छिपा हुआ है । वीणाराय पुरुषों द्वारा छछली हुयी एक अत्याधुनिक युवती है । जरीना धन के अहंकार में डुबी हुयी है । वह धन के बल पर सब कुछ खरीदना चाहती है, लेकिन वह भुल जाती है कि सच्चे कलाकार कभी बिकते नहीं ।

‘बहता हुआ पानी’ में जीने-मरने वाली रिचर्ड क्रेसी की सेट टेरेसा जतीन के लिए आदर्श नारी है । जतीन प्रत्येक नारी में उस जैसे बलिदान की कामना करता है । लडकियाँ भी जिंदगी रुपी किनारा चाहती हैं । वह भी पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करती है । ठीक उसी प्रकार बंदरगाह जहाज को खींचता । लडकी एक सुंदर बंदरगाह है और पुरुष एक भटकता हुआ जहाज ।

यह उपन्यास आधुनिक नारी के मन की घुटन, अकुलाहट, असंतोष और जिजीविषा की उत्कट लालसा को उजागर करता हुआ उसकी असहायता और विवशता का प्रतीक बनकर समाज के धनी ऐय्याशों के मुँह पर एक करारा तमाचा लगाता है । आधुनिक नारी का नये जीवन-मूल्यों के प्रति एक सहज आकर्षण है, फिर भी वह इस उपन्यास में परम्परा का जुआ उतार नहीं पायी हैं । अतः स्पष्ट है कि उपन्यास नारी की विवशता का प्रतीक बनकर रह गया है ।

६. अकेली आवाज :

‘यह उपन्यास सन् १९७६ ई. में राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली से

प्रकाशित हुआ। यह अवस्थी जी का बालमनोवैज्ञानिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में अवस्थी ने बंटू को केंद्र बिन्दु मानकर बालमनोविज्ञान का सूक्ष्मत्तम विश्लेषण किया है। यह बंटू के मन परिवर्तन की कथा है। बंटू समाज के उन लाखों किशोरों का प्रतीक है, जो अपनी अनोखी प्रतिभा को गलत रास्ते पर से जाने के लिए विवश कर दिये जाते हैं।

बंटू कलेक्टर आषुतोष मुखर्जी की एकलौती ओलाद है। मुखर्जी साहब उसे स्कूल नहीं भेजते क्योंकि उन्हें ऐसा लगता है कि स्कूल के अन्य लड़कों के साथ वह बिगड़ न जाय। अतः उसे पढ़वाने के लिए घर पर ही नीता मिस नामक टीचर की नियुक्ति करते हैं। पुत्र के भविष्य की चिंता में किये गये विचार का परिणाम ठीक उल्टा निकलता है। बंटू अधिक शरारती बनता है। वह घर में माता-पिता एवं नीता मिस से छीपकर डाकुओं की कहानियाँ पढ़ता है। नीता मिस के साथ दुर्व्यवहार करता है। बंटू की शरारते दिन-ब-दिन जाती हैं, इसलिए नीता मिस के परामर्श से बंटू को रामगढ़ के आदर्श विद्यालय में भेजने का निर्णय लिया जाता है।

आदर्श विद्यालय में बंटू अपने अभद्र व्यवहार से प्राचार्य, अध्यापक और विद्यार्थियों को आश्चर्य चकीत कर देता है। विद्यालय में पढ़ाई में उसका बिलकूल मन ही नहीं लगता। वह प्रतिदिन ऐसे व्यवहार करता है जो विद्यालय के नियमानुसार गलत हैं। जैसे-पहले दिन मनोज से झगडा करके उसे थप्पड मारना, गिरीश की जाँध पर किमाच मलना, बिना अनुमति के छात्रावास से बाजार जाना, प्राचार्य से छीपकर अपने माता-पिता को खत लिखना, अपनी सहपाठिनी आशा को घोड़े से गिराना, मोहनी की दोनों चोटियाँ काटकर नदी में फेंक देना। विद्यालय में उसे सिर्फ दो बातों में मजा आता है, एक घुडसवारी और दूसरी संगीत कक्षा। विद्यालय में बंटू की

अक्षम्य हरकतें दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जाती है । इसलिए उसे विद्यालय द्वारा गठित 'विद्यार्थी परिषद' के समक्ष रखा जाता है । 'विद्यार्थी परिषद' बंदू को एक सप्ताह के लिए घुड़सवारी, संगीत, सामुहिक भोजन एवं जेब खर्च से वंचित कर देती है । इतना ही नहीं वह निर्णय भी लेती है कि प्रार्थना के समय बंदू गणित के सवाल हल करेगा । लेकिन बंदू के व्यवहार में परिवर्तन नहीं आता । प्रिंसिपल बंदू के इस व्यवहार के जिम्मेदार उसके माता-पिता को ठहराते हैं । माता-पिता पर लगाई गई यह तोहमत बंदू के अंतर्मन को झक-झोर देती है । प्रिंसिपल के ये शब्द उसके हृदय पर आघात कर देते हैं। यही से बंदू के व्यवहार में परिवर्तन आता है । यह अपने सहपाठियों से सहयोग और सहृदयता की भावना से पेश आने लगता है । अध्यापकों का सम्मान करने लगता है । यहीं नहीं अपने सहपाठी मनोज का जन्मदिन मनवाता है। मनोज बीमारी से परेशान हो उठता है । आदर्श विद्यालय की ओर से अन्य विद्यालय के साथ क्रिकेट खेलकर विजयी होता है । बंदू के परिवर्तित व्यवहार के सब सहपाठी, अध्यापक, प्रिंसीपल उससे अत्यधिक प्रेम करने लगते हैं । बंदू क्लास में अव्वल नम्बर प्राप्त करता है । मुखर्जी परिवार बंदू के इस परिवर्तित व्यवहार से प्रसन्न होते हैं । बंदू विद्यालय त्यागने का निश्चय छोड़ देता है और विद्यालय का हीरो बन जाता है ।

इस उपन्यास में अवस्थी जी ने यह स्पष्ट किया है कि उच्चता का अनुठा दर्प मनुष्य को कितनी समस्याओं के बीच लाकर खड़ा कर देता है । बच्चों में कुछ जन्मजात संस्कार होते हैं, किन्तु उनके चरित्रों का अधिकांश विकास उस परिस्थिति का परिणाम होता है जिस परिस्थिति, पर्यावरण में उसका पालन-पोषण होता है । इसका सुंदर चित्रण उपन्यासकार ने किया है ।

इस उपन्यास के लेखन में महत्वपूर्ण उद्देश्य यह बता रहा है कि अपने देश के परिवेश में बच्चों को किस प्रकार की शिक्षा अनुकूल पड सकती है। बंदू जैसे बिगड़े हुए लडकों को सुधारने के लिए आदर्श विद्यालय जैसी संस्थाओं की आवश्यकता है, जहाँ बच्चों को लिखने-पढ़ने के अलावा मनोवैज्ञानिक उपचार भी मिल सके और उसका चतुर्दिक विकास भी हो। अवस्थी जी के उपन्यासों में यह एक अलग प्रकार का उपन्यास है। यह उसकी स्वस्थ जीवन दृष्टि और समाज-चेतना का प्रमाण है जिसकी प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध है।

७. बीमार शहर :

“यह उपन्यास १९६१ ई. में लिखे गये उपन्यास ‘पाप के परे’ का परिवर्तित रूप हैं। ‘पाप के परे’ उपन्यास १९७६ ई. में ‘बीमार शहर’ नाम से राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया है। इस उपन्यास में लेखक ने विवाहित जीवन की घुटन और अविवाहीत जीवन की स्वतंत्रता को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास के सारे पात्र विद्रोही विचारधारा के हैं। उन्हें वर्तमान समाजव्यवस्था से अधिक धृणा है। वे इस व्यवस्था को तोड़कर एक ऐसे समाज की संरचना करना चाहते हैं जिसमें व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता मिल सके। यह उपन्यास वर्तमान मशीनी युग में व्यक्ति को जीने की प्रेरणा देता है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु में मंजरी का महत्वपूर्ण स्थान है। मंजरी एक गरीब ब्राह्मण की चौथी पुत्री है। दहेज के अभाव में उसका विवाह एक ऐसे बूढ़े व्यक्ति से करवाया जाता है, जो विवाह के तीन माह बाद उसे विधवा बनाकर चल देता है। गाँव का गुण्डा मंजरी का अपहरण करके उसे कोठे पर बेच देता है। यहाँ

उसकी भेट निरंजन नामक व्यक्ति से होती है। मंजरी उससे अपनी मुक्ति की बात करती है। कोठे से मुक्त होकर मंजरी निरंजन की हमजोली बनती है। लेकिन यहाँ भी उसे शांति नहीं मिलती। अंत में एक दिन वह गाँव के कुछ व्यक्तियों की हवस का शिकार बन जाती है। समाज निरंजन की हँसी उड़ाने लगता है। ऐसी परिस्थिति में वह मंजरी को लेकर अपने दोस्त प्रो. आचार्य के पास बम्बई पहुँचता है। मंजरी के अशिक्षित होने के कारण इसे कहीं भी नौकरी नहीं मिलती, इसलिए मंजरी 'दूची टेरेस' में रहने वाले शेखर, कल्पना और मिस गोरावाला के सहयोग से पढ़ना आरम्भ करती है। तब मिस गोरावाला उसे अपने टेरेस पर बाल-मन्दिर खोलने की इजाजत देती है। मंजरी अपने पैरों पर खड़ी हो जाती है। निरंजन द्वारा की गयी सहायता की उसे आवश्यकता नहीं रहती। बूची टेरेस के सभी निवासी व्यक्ति अविवाहित हैं। टेरेस की मालकिन 'मिस' होकर तीन लड़कियों की माँ है। इस टेरेस में रहनेवाले सभी सज्जन विवाह की आलोचना करते हैं। शोभना, हेलेन और श्रीमती सत्या चौहान, शेखर की मित्र है। शोभना बिना विवाह के मातृत्व धारण करती है। श्रीमती सत्या चौहान पति के होने पर भी शेखर से सम्बन्ध बनाये हुए है।

प्रस्तुत उपन्यास में महानगरीय यांत्रिकता की रुग्ण मानसिकता का आलेख प्रस्तुत किया गया है। वह उपन्यास वर्तमान जीवन मूल्यों के खोखलेपन को स्पष्ट करता है। जिस प्रकार साँप केंचुल उतारकर नया रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार आधुनिक जीवन-बोध पुरानी धारणाओं की केंचुल से अपने आप को मुक्त करने की कोशिश करता है। भीड़ और कोलाहल के बीच सारे संदर्भ टूटे हुए, अपने आप से कटे हुए, अपने आप से धिरे हुए आधुनिक मानस का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। यही इस उपन्यास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। नये परिप्रेक्ष्य में विवाह मुक्त, स्वतंत्र

प्रेम की नयी आचार संहिता का निर्धारण एक चुनौती है। यह उपन्यास आत्मकेन्द्रीत महानगरीय जीवन की भीतरी संवेदनाओं को भी स्पष्ट करता है। साथ ही साथ प्रचलित पुरानी रूढ़ियों की कृत्रिमता सिद्ध करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में अविवाहीत जीवन के प्रश्नों और विवाहित जीवन की घुटन को बड़े ही साहस के साथ विवेचित किया गया है। लेखक का सुझाव है कि बदलती हुई प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर पुरानी चली आ रही परम्पराओं को तोड़कर नये सिद्धान्त की स्थापना करें। अवस्थी ने इस उपन्यास में काल्पनिक रूप में मनुष्य की ऐय्याशी का नहीं, आधुनिक मूल्यों के संदर्भ में समाज की जागृति का परिचय दिया है। विवाह संबंधी प्रश्नों का आंकलन सही दिशाओं में निर्दिष्ट है, परन्तु यह अपने देश में असंभव-सा लगता है क्योंकि हमारा देश सीता-राम, सत्यवान-सावित्री का देश है। हमारी परम्पराएँ पुरानी हैं। हमारे नैतिक मूल्य अलग हैं।

८. मछली बाजार :

“यह अवस्थी जी का अत्याधिक चर्चित उपन्यास है। इसका प्रकाशन १९८१ ई. में राजपाल एण्ड सन्स काश्मीरी गेट दिल्ली से हुआ। यह उपन्यास २१वीं सदी के टूटते और बिखरते हुए परिवारों और वर्तमान राजनीति का ज्वलंत चित्रण है। शमशेर लाखों भारतीय समाज व्यवस्था के शिकार हुए लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। शीर्षक से ऐसा लगता है कि उपन्यास में महानगर की जिंदगी का परिचय प्रस्तुत उपन्यास का कथ्य है, लेकिन वास्तव में इस उपन्यास में २०वीं शती के अंत में उनकी त्रासदी उसे झेलता हुआ संभावित परिवार और वर्तमान राजनीति का चित्रण है। लेखक ने शमशेर के माध्यम से विवाहीत जीवन की घुटन का और राजनेताओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उपन्यास का आरम्भ कौतुहल वर्धक है। शुरु में ही लेखक

ने शमशेर के मकान को 'ताबूत में ढका हुआ मकान' कहा है ।

‘मछली बाजार’ का नायक शमशेर हँसमुख और लोकप्रिय व्यक्ति है । लेकिन उसका पारिवारिक जीवन दर्द से भरा हुआ है । शमशेर जीवित होकर भी मरे हुए व्यक्ति के समान है । प्रारम्भ में वह अपनी पत्नी से बेहद प्यार करता था । यहाँ तक कि उसने अपने बचपन के प्रेम को भी उस पर न्योछावर कर दिया था किन्तु उसकी पत्नी इंदु का चिडचिडा स्वभाव, अहंकार, विपरीत विचारधारा और शंकालु प्रवृत्ति के कारण उसके घर में सदैव अशांति का वातावरण बना रहता है । उसकी पत्नी इंदु इतनी अधिक शंकालु प्रवृत्ति की महिला है कि वह पिता-पुत्री के पवित्र रिश्ते को भी कलंकीत कर बैठती हैं । वह शमशेर जैसे बुद्धिजीवी के जीवन में इतने अधिक काँटे बो देती है कि उसका जीवन दुभर हो जाता है । शमशेर के संदर्भ में यही कहना ठीक होगा कि वह अपने शरीर की लाश को ढो रहा है । इंदु शमशेर से ही नहीं बल्कि अपने बच्चों से भी झगडती रहती है । घर में आये दिन खाना न बनाना एक साधारण सी बात है । ऐसी स्थिति में ब्रेड पर निर्भर रहना पडता है और शमशेर को भूखा सोना पडता है । यहाँ तक कि शमशेर के बीमार हो जाने पर इंदु सिनेमा देखने चली जाती है । इससे इंदु की लापरवाही का प्रमाण मिलता है । उसे शमशेर की सेवा से कोई मतलब नहीं है, शमशेर जिये चाहे मरे । शमशेर इसी वजह से घर में बहुत कम ठहरता है । शुभा शमशेर के व्यक्तित्व से प्रभावित भी होती है । शमशेर और शुभा के संबंधों में धीरे-धीरे इतनी धनिष्ठता आ जाती है कि वे एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं । शमशेर की मुलाकात अशरफी नामक एक लडकी से भी होती है। वह ‘सुमनराय पुरस्कार समिति’ की सचिव बनती है । मंत्री विक्रमराय इस समिति के अध्यक्ष हैं । विक्रमराय भारत की समकालीन राजनीति

का प्रतीक है। उसका चरित्र देखते हुए लगता है कि जितने चेहरे आज की राजनीति में हमें देखते हैं वह उन सब में कहीं न कहीं विक्रमराय उपस्थित हैं।

शुभा शमशेर की धनिष्ठ मित्र है। शमशेर यदि चाहे तो अपने अशांत परिवार से मुक्त हो सकता है, किन्तु समाज की मान्यताएँ उसे मुक्त नहीं होने देती। इसलिए इस अशांति से समझौता करने के लिए शमशेर मजबूर है, यह समझौता परिवार तक ही सीमित है, बाहर तो वह बेहद स्वाभिमानी, जिंदादिल, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, शेर हृदय व्यक्ति है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने परिवारों के दायरे, व्यक्तियों के आचरण तथा आज की राजनीति आदि बातों को उठाया है। उपन्यास अपने आप में एक विवशता में समाप्त होता है और हर व्यक्ति के सामने जिंदगी को बेलाग ढंग से जीने और समझने के लिए प्रश्नों के बहुत से दायरे छोड़ जाता है। अतः हम कहेंगे कि 'मछली बाजार' आज के हर आदमी की जिंदगी है और इसी कारण वह जीवन के यथार्थ से गहराई के साथ जुड़ा हुआ है। 'मछली बाजार' अपने ढंग की एक अनूठी कृति है। उपन्यास लिखने में लेखक की अपनी अंतर्दृष्टि है, इसमें प्रगतिशील विचारों का ज्वलंत-मूर्त रूप साकार हुआ है। इसमें वर्तमान युग की समस्याओं का चित्रण ही नहीं आने वाले कुछ दशकों का अनुमान भी चित्रित है।

९. भंगी दरवाजा :

यह अवस्थी जी का राजनैतिक उपन्यास है। इसका प्रकाशन राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली द्वारा १९९२ ई. में हुआ। इस उपन्यास में एक और लालबहादुर और रुपमती की प्रणय कथा और उनके समय की ऐतिहासिक परिस्थिति को चित्रित किया गया है, तो दूसरी ओर राजनीतिक दाँवपेच को। जो व्यक्ति एक

बार राजनीति में प्रवेश करता है वह कभी भी राजनीति से अलग नहीं हो सकता, चाहे वह सता में हो या न हो । अतः कहना न होगा कि 'भंगी दरवाजा' में राजनीति का पर्दाफाश करते हुए दाँवपेचों को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है । इस उपन्यास में राजनीति पर व्यंग्य, नेताओं को झूठे आश्वासन, पति-पत्नी में अनबन, राजनीतिक गंदकी, चुनाव की तिकड़में आदि बातों को कथात्मक, पूर्वदीप्ति और कहीं-कहीं डायरी शैली में प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास में मांडु जैसे सौंदर्यपूर्ण स्थान का चित्रण बड़े सुंदर ढंग से किया गया है ।

इस उपन्यास की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है- समसामायिक राजनीति के भ्रष्ट राजनेता और चुनाव में अपनी पार्टी के साथ पराजीत श्यामबाबू, जो वर्षों से महत्वपूर्ण केंद्रीय मंत्री रह चुके हैं । अपनी तलाकशुदा कन्या रुपाली के साथ मांडु पहुँचते हैं । वहाँ भी राजनीति उनका पीछा नहीं छोड़ती । वे राजनीति से दूर ही रहना चाहते हैं, लेकिन पद लालसा उन्हें विचलित कर देती है । उनका मत यह है कि मैंने अनुभव किया है कि किसी भी राजनीतिज्ञ को नकारा नहीं जा सकता । यदि वह कुर्सी में नहीं है और वर्षों कुर्सी में न भी रहे तो अपने जीवन काल में कभी भी कुर्सी में आ सकता है । श्यामबाबू राजनीति को यज्ञशाला मानते हैं । उसे अपना सब कुछ समर्पित करने के लिए तैयार हैं । श्याम बाबू अपनी बेटी के साथ विश्राम के दिन मांडु में बिताते हैं, वहीं पर उन्हें अपनी पार्टी से चुनाव लड़ने का निर्देश मिलता है । तय है कि उनकी पार्टी चुनाव जीतेगी और वे ही अगले प्रधान-मंत्री बनेंगे । राजनीति से विरक्त श्यामबाबू में सहसा नया जोश आ जाता है और वे नयी राजनीति, नयी जिम्मेदारी संभालने के लिए तत्पर हो जाता है ।

उपन्यास की इस मूल कथा के साथ-साथ रुपाली की जिंदगी की त्रासदी भी सामने आती है और मांडु का इतिहास, रुपमती बाजबहादुर की प्रणय कथा भी ।

मांडू मध्यप्रदेश का एक हिस्सा है । इसका निर्माण राजा ने किया था । यह एक विख्यात स्थान है । बाजबहादुर और रुपमती की प्रणय कथा ने परमार वंश को पीछे छोड़ दिया और आज का मांडु अकबर कालीन मुगल साम्राज्य के केंद्र बिंदु के रूप में विख्यात है । बाजबहादुर अकबर का गवर्नर था और रुपमती हौशंगाबाद के पास रहती थी । यह एक संयोग था कि दोनों संगीत प्रेमी थे । एक जैसी रुची जहाँ हो, वहाँ धर्म और समाज के बन्धन टूट जाते हैं । दोनों में प्रेम पनपता है । ऐसा लगता है कि आज भी बाजबहादुर और रुपमती के प्रणय स्वर समूचे मांड में गूँज रहे हैं । ऐसे सौंदर्य पूर्ण स्थान में एक भूतपूर्व विदेशमंत्री का केवल विश्राम के लिए जाना एक सामान्य घटना हो सकती है, लेकिन जिस तरह मांडु का इतिहास बदला उसी तरह विदेशमंत्री के भाग्य ने भी पटला खाया । इसी पृष्ठभूमि में 'भंगी दरवाजा' उपन्यास लिखा गया है ।

वर्तमान राजनीति घटिया हो सकती है । पूरा देश बिखराव की लपेट में हैं । विवेच्य उपन्यास में इसे बड़े मार्मिक शब्दों में स्पष्ट किया गया है । इस उपन्यास में सम-सामायिक जिंदगी की, सामाजिक-पारिवारिक विडंबनाओं, विरोधाभास और त्रासदियों को सशक्त अभिव्यक्ति दी है । साथ ही साथ वर्तमान राजनीति का भ्रष्टाचारी रूप भी रूपायित किया गया है ।

प्रस्तुत उपन्यास के नायक श्यामबाबू की बेटी रुपाली राजनेता की बेटी होते हुए भी राजनीति से नफरत करती है, शायद इसलिए कि उसने राजनीति के भ्रष्ट रूप को निकट से देखा है । राजनीति में व्यस्त पिता की परिवार की ओर उपेक्षा की

दृष्टि से देखना भी उसे अच्छा नहीं लगता । अतः कहना अनुचित न होगा कि रुपाली वर्तमान युवा पीढ़ी की प्रतिनिधि है, जिसे राजनीति के भ्रष्ट स्वरूप से चिढ़ है । उपन्यास के अंत में श्यामबाबू की प्रेस कांफ्रेंस बहुत दिलचस्प है । वह श्यामबाबू के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों को उजागर करती है । एक चतुर, प्रत्युत्पन्न मति, राजनेता किस प्रकार पत्रकारों के जाल में से फिसल-फिसलकर निकलता है, इसका सजीव चित्रण भी इस उपन्यास में मिलता है ।

इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग के आँचलिक उपन्यासकारों में ख्यातिप्राप्त राजेन्द्र अवस्थी अपनी विशिष्ट साहित्यिक प्रतिभा से विविध प्रकार के उपन्यासों का सृजन करके नागार्जुन के बाद आँचलिक उपन्यासकारों में अपनी विशेष योग्यता प्रस्थापित करते हैं ।

संदर्भ

१. राजेन्द्र अवस्थी का कथा-संसार, डॉ. सविता सौरभव, पृ. २२
२. राजेन्द्र अवस्थी, इक्कीसवीं सदी की दृष्टि, सुरेश निरव, पृ. १२३
३. राजेन्द्र अवस्थी का कथा-साहित्य, डॉ. भाउसाहेब परदेशी, पृ. १८३
४. राजेन्द्र अवस्थी का कथा-साहित्य, डॉ. भाउसाहेब परदेशी, पृ. २४
५. राजेन्द्र अवस्थी का कथा-साहित्य, डॉ. भाउसाहेब परदेशी, पृ. १६३
६. राजेन्द्र अवस्थी का कथा-साहित्य, डॉ. भाउसाहेब परदेशी, पृ. ३७
७. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ३८
८. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. भूमिका
९. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. भूमिका
१०. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. भूमिका
११. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. भूमिका
१२. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. भूमिका
१३. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १८
१४. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ३२
१५. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १६
१६. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १७
१७. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ४६

पंचम अध्याय

राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में चित्रित समाज का स्वरूप एवं उसके विधायक तत्त्व

साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। समाज की संवेदनाओं, समस्याओं को साहित्यकार अपनी कलम के माध्यम से रेखांकित करता मानव समाज का एक व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। एक सच्चे साहित्यकार का दायित्व है कि वह समाज में पड़ी बुराइयों को नस्तनाबूद करें। राजेन्द्र अवस्थी हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार हैं। उनके साहित्य में कुलमिलाकर अधिकतर भारतीय आदिवासी एवं नगरीय जीवन का समाज है। राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में चित्रित समाज के स्वरूप पर प्रकाश डालकर हम विशेष अध्ययन प्रस्तुत कर सकते हैं जो मेरे अनुसंधान का महत्वपूर्ण विषय है।

० 'सूरज-किरण की छाँव' उपन्यास में चित्रित समाज का स्वरूप

सृजनात्मक लेखन अपने समय की मानवीय संवेदना से जितना सघन स्तर पर जुड़ा होता है उतना ही वह अपने समय में प्रासंगिक होता है। साथ ही प्रासंगिकता की सच्चाई के आधार पर ही वह विशेष देश-काल से ऊपर उठकर सार्वदेशिक और सार्वकालिक सार्थकता से जुड़ता है। अवस्थी जी का 'सूरज किरण की छाँव' उपन्यास गोंड आदिवासी जीवन से जुड़ा है। स्वयं लेखक गोंड आदिवासियों के बीच रहा है। अवस्थी जी का बाल्यकाल मंडला क्षेत्र में गोंड आदिवासी जाति के बीच व्यतीत हुआ। यही कारण है कि उनका गोंड जाति से विशेष स्नेह रहा है। गोंडों की अपनी मान्यताएँ हैं, रीढ़ियाँ व परम्पराएँ हैं। उन परम्पराओं से अवस्थी जी काफी

परिचित हुए। अवस्थी जी की प्रारम्भिक शिक्षा कई स्थानों पर हुई है। नौकरी के दौरान वे कई शहरों में रहे हैं। परिणामस्वरूप अवस्थीजी ने दो प्रकार के साहित्य का निर्माण किया शहरी एवं ग्रामीण। उनका साहित्य अपने परिवेश का दर्पण है। उनके उपन्यासों में प्रकृति का ऐसा सटीक और सप्रमाण वर्णन हुआ है कि पूरा परिवेश प्राणमय हो उठा है।

◦ 'सूरज किरन की छाँव' उपन्यास में समाज व्यवस्था :

विगत तीन- साढ़े तीन दशकों में रचित आदिवासी जीवन-संबंधी उपन्यास साहित्य में भारतीय आदिवासी सामाजिक व्यवस्था को उसकी संपूर्णता के साथ प्रतिबिम्बित किया गया है। उसके अंतर्गत भारतीय आदिवासी समाज का स्वरूप, उसकी परम्परागत एवं परिवर्तनोन्मुख स्थिति के नियामक तत्व, वर्ण और जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, पारिवारिक व्यवस्था, नारी की सामाजिक स्थिति तथा विविध सामाजिक समस्याओं का सूक्ष्म तथा व्यापक संदर्भों में चित्रण मिलता है। स्वयं राजेन्द्र अवस्थी इस बात का समर्थन करते हुए 'सूरज किरन की छाँव' उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं- "स्वतंत्रता के बाद, हिन्दी में, इधर कुछ आंचलिक उपन्यासों का प्रकाशन हुआ है। इसी श्रृंखला में यह एक विनम्र प्रयास मात्र है। इसकी सफलता का श्रेय आंचलवासियों और उनकी संस्कृति को जाना चाहिए, दोषों के लिए लेखक उत्तरदायी है।"^१ इस कथन से एवम् उनके साहित्य से पता चलता है कि अवस्थी जी मूलतः सामाजिक एवं आंचलिक उपन्यासकार है। उनका प्रस्तुत उपन्यास आदिवासी गोंड समाज के विविध पक्षों को उद्घाटित करता है। इस सम्बन्ध में भगवान स्वरूप चैतन्यजी लिखते हैं- "समाज में व्यापक बुराईयाँ, भ्रष्टाचार, दहेजप्रथा, वेश्यावृत्ति, अशिक्षा, राजनीतिक अवसरवादिता, सिद्धांतहीनता, चापलूसी, दल-बदल,

त्यागहीनता, आदर्शहीनता, चोरी-डकैती, झूठ, फरेब, भुख, गरीबी, बेरोजगारी आदि अनेक समस्याओं पर राजेन्द्र जी निरन्तर गतिशील हैं।”^२ आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु तथाकथित सभ्य समाज से दूर बसे गोंड आदिवासी समाज को केन्द्र बनाकर लिखी गई है। उनके यहाँ सभ्य समाज से नितान्त अलग रीति-रिवाजों की प्रणाली दृष्टिगत होती है। वे लोग साथ मिलकर कार्य करते हैं। हाँ, उनके मिलने में एक प्रकार की सामाजिकता प्रकट होती है। समय-समय पर जातिगत प्रतिबन्ध भी दिखाई देते हैं। यदि कोई लड़की अपनी यौवनावस्था के आरम्भ में किसी विधर्मी अथवा विजातीय युवक के साथ यौन संबंध स्थापित करती है और उसके परिणाम का जाति वालों को पता चलता है तो ऐसी लड़की एवं उसके माता-पिता को जाति से निकाल दिया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास गोंड आदिवासी समाज पर आधारित है। जिसमें बंजारी विजातीय विलियम से यौन संबंध स्थापित कर लेती है। उसके गर्भ धारण करने का उसका गाँव में रहना मुश्किल हो जाता है। वह स्वयं अपनी सामाजिक स्थिति के बारे में सोचती है- “मेरा गाँव में रहना मुश्किल था। शर्म के सारे मैं अपने-आप में गड़ी जा रही थी। कंगला का पेट होता, तो चिन्ता नहीं थी। पिछले साल सिंदी राम की छाटी लड़की का भी पेट आ गया। उसका ‘भूल विवाह’ (जब कोई कुमारी गर्भवती ऐसे व्यक्ति से ब्याह करे जिसका किया वह गर्भ न हो, तो उसे भूल विवाह कहते हैं) हो गया था। हँसी होने का समय ही नहीं आया। यहाँ बात ओर थी। विलियम, चाहे वह जैसा भी हो, है तो परजाता, उसका धर्म हमारा धर्म नहीं। उसका देवता हमारा देव नहीं।” वह अपने माता-पिता की सामाजिक स्थिति पर पड़े हुए प्रभाव के संदर्भ में विचार करती है- “तापे और आवा (माता-पिता) के आँसुओं ने बेजार बना दिया था। गाँव का हुक्का पानी बन्द था। दुःख-सुख

का कोई नहीं था । मजूरी मिलना मुश्किल । मालगुजारी की नजर से उतर गया । उसका दुःख मुझसे न देखा गया। और अंत में उसका विवाह जाति के बाहर जोसेफ नाम से भूतपूर्व गोंड एवं वर्तमान ईसाई धर्मवलम्बी के साथ कर दिया जाता है ।”^४ इसी प्रकार अवस्थी जी के दूसरे कई उपन्यासों में गोंड आदिवासी समाज में विजातीय प्रेम को लेकर उठती समस्याओं को रेखांकित किया है । ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में झिरिया गोंड कुमारी विजातीय से प्रेम करती है । गाँव वाले उसका विरोध करते हैं । परन्तु वह विजातीय से प्रेम करने के चक्कर में मर जाती है और मरकर चुड़ैल बन जाती है । तथा ग्रामवासियों को सताती है । यह वास्तविकता हो या कल्पना किन्तु इस प्रकार की डरावनी कल्पनाओं से समाज की व्यवस्था चलती रहती है ।

◦ जातिगत प्रतिबन्ध :

आदिवासी समाज की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों में जातिगत प्रतिबन्ध सम्बन्धी तथ्यों को केन्द्र में रखकर हम कह सकते हैं कि भारतीय आदिवासी समाज में भी ग्रामीण समाज की भाँति जातिगत प्रतिबन्ध पाये जाते हैं । भारतीय आदिवासी समाज में यौन-संबंधों को विधिवत स्थापना प्रदान करने के लिए शिष्ट समाज की भाँति विवाह संस्था का प्रचलन पाया जाता है । आदिवासी समाज में विवाह संबंधी नाना प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित हैं जिनका हिन्दी के आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों में वर्णन मिलता है ।

◦ विवाह सम्बन्धि प्रथाएँ :

प्रस्तुत उपन्यास गोंड जीवन को स्वर देता है । गोंड आदिवासियों में ‘लमसेना’ रखने की विवाह संबंधी प्रथा का प्रचलन पाया जाता है । इस प्रथा के अन्तर्गत पुत्री का पिता किसी नवयुवक को अपने नौकर के रूप में रख लेता है । वही नौकर अपने

होने वाले ससुर की बहुत होशियारी से, जी-जान से सेवा में रत होता है। युवक की सेवा से प्रसन्न होकर ससुर अपनी बेटी का विवाह इस नवयुवक से करवा देता है। उपन्यास का सिन्दीराम अपनी पुत्री सुरपा के लिए लमसेना रख लेता है। उपन्यासकार अवस्थी जी लिखते हैं- “सूरपा, सिन्दीराम की लडकी थी। सिन्दीराम ने उसे एक लमसेना (पिता द्वारा नौकर रूप में रखा पुत्री का भावी पति) से बाँध दिया था। लमसेना था तो मेहनती। पर बड़ा झगडालू था। सुरपा को जब-तब मार-पीट देता था। सूरपा बेचारी अपने फूटे कर्म पर रोती थीं। कहती ‘अभी तो ब्याह नहीं हुआ। जब उसके घर जाऊँगी तो भूँनकर ही खा जाएगा। सिन्दीराम ने कई बार चाहा कि लमसेना को निकाल दे पर कोई दूसरा लडका उसके लिए लमसेना बनने के लिए तैयार नहीं था। सुरपा भी जरूरत से ज्यादा काली और एक पैर से लंगडी थी।”^५ अवस्थी जी के ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में भी लमसेना रखने की प्रथा का उल्लेख मिलता है।

० यौन सम्बन्धों का निरूपण :

भारतीय आदिवासी समाज में विवाह के पूर्व तरुण-तरुणियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता होती है, और अधिकांश समाजों में यौन-क्षेत्र में वे प्रयोग कर सकते हैं। अमुक जातियों में पुरुष महिलाओं को वेश्या बनाकर धन अर्जित करते हैं अथवा वेश्यावृत्ति से उनका कमाया हुआ खाते हैं। कुछ आदिवासी जातियों में नवयुवक एवं नवयुवतियों को अपनी ही जन-जाति में स्वच्छन्दता पूर्वक यौन संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता रहती है, परन्तु ये जन-जातियाँ विजनजाति के पुरुष अथवा नारी से यौन संबंध स्थापित करने के विरोध में कठोर नियमों का पालन करती हैं, और जैसा कि ऊपर लिखा गया है कि आदिवासी समाज की जो लडकी विजनजातीय पुरुष से यौन संबंध

स्थापित करती है तो उस नवयुवती एवं उसके माता-पिता को आदिवासी जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है। यह व्यवस्था कभी-कभी अंतरजातीय समाज में भी दृष्टिगत होती है। बंजारी और विलियम का अनैतिक प्रेम संबंध इसका उदाहरण है। विलियम परजात का लडका है। बंजारी अपनी जाति के कंगला नामक युवक को प्रेम करती थी, किन्तु बाद में विलियम के प्रेम जाल फँसती है। विलियम के द्वारा बंजारी के पेट में गर्भ रह जाता है। तब बंजारी कहती है- “कंगला का पेट होता तो चिंता नहीं थी।”^६ किन्तु विलियम परजात, परधर्म से संबंधित होने के कारण यह बंजारी के लिए समस्या का विषय बन जाता है। इस प्रकार के संबंधों का पर्दाफाश जब गाँव की पंचायत के सामने होता है तो पंचायत लडकी के माता-पिता को अपनी जाति से बहिष्कृत कर देती है। यानी की गोंड आदिवासियों में परजात, परधर्मी युवकों के प्रति युवतियों का शारीरिक प्रेम अमान्य किया जाता है।

• नारी की स्थिति :

भारतीय आदिवासी समाज में पुरुष और नारी की स्थिति को लेकर भिन्न-भिन्न रूप पाये जाते हैं। गोंड एवं मुंडा आदिवासी समाज में नारी पुरुष की जुती के समान होती है। कारण शिक्षा का अभाव है। आलोच्य उपन्यास में बंजारी कितने ही पुरुषों का शिकार बनती है। वे अपने कुँआरेपन के भटकाव के अभिशाप को मिटाने के लिए ईसाई धर्म स्वीकार करती विलियम के साथ जीवन निभाती है। यहाँ पर भी उसका जीवन व्यथा की गलियों से गुजरने लगता है। किन्तु युगीन चेतना की धुमिल छाया उसे प्लावित करती है। जो कि बाद में उसे फिर नया नाम धारण करना पड़ता है, क्योंकि पति उसे एक होटल वाले के हाथ बेच देते हैं। इन्हीं जीवन के आघातों से उसे युगीन यथार्थ का परिचय प्राप्त होता है। समाज के इस नंगे यथार्थ से

तिलमिला कर वह कहती हैं- “क्या औरत की जिन्दगी में इसके सिवाय कुछ और नहीं है । यदि नहीं है तो दुनिया में औरत होना सबसे बड़ा पाप है । या तो आदमी को जन्म के साथ ही उसका गला घोंट देना चाहिए इसके सिवाय उसके सामने चारा नहीं है जब आदमी उसे जीने नहीं देना चाहता तो उसे धुँ में घुटने और तडपने देने का उसे अधिकार नहीं है ।... क्या औरत आदमी की धरोहर है ।”^७

वह जब चाहे उसका उपयोग करे और जब चाहे किसी कबाड़ी को बेचकर चल दे। बंजारी के उक्त कथन में मार्मिक पीड़ा के साथ-साथ नारी मन में सुलग रहे विद्रोह को जीवन्त अभिव्यक्ति मिली है । विलियम बंजारी को खिलौना समझता है । भारतीय नारी पति के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध रहने के प्रयास में ही जीवन की सार्थकता अनुभव करती है, किन्तु पति नामधारी जीव इसे अपना अधिकार समझता है । बंजारी का दूसरा रूप बेंजो अपने पति जोसेफ को नहीं समझ पाती है। जोसेफ बात-बात पर उसे झिडकता है, अपमान करता है । अतः पुरुष के प्रति बेंजो के निम्न विचार सत्य के निकट है । “औरत बिल्कुल सीधी होती है । उसकी हर बात सीधी है । उसमें कहीं कोई उलझन नहीं । उलझन मर्द में हैं । कब वह सूरज की धूप और कब चाँद की चांदनी बन जाय, पता नहीं। पता लगाना भी आसान नहीं । कितना उलझा है मर्द का मन, मकड़ी का जाला भी उससे सरल है ।”^८

० दाम्पत्य जीवन :

पति-पत्नी का तनाव आधुनिक कथा साहित्य की एक विशेष प्रकृति है । आधुनिक युग में नारी स्वातंत्र्य को लेकर विभिन्न आंदोलन प्रवर्तमान है । पश्चिम के प्रभाव के कारण आज नारी स्वयं को अबला नहीं समझती है । अवस्थी जी ने प्रस्तुत उपन्यास में बंजारी पात्र में आदिवासी नारी की सामाजिक चेतना को ढूँस-ढूँस कर भरा है।

व्यापक तौर पर दृष्टि करें तो अन्य उपन्यासों की तुलना में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों में नारियों के पति को 'परमेश्वर' और जन्म-जन्मान्तर के संबंध को नकारते दिखाया है। उनकी यह परंपरा-विरोधी धारण अकारण नहीं है। या तो उसके पीछे आर्थिक विवशताएँ हैं या नई मूल्य मर्यादा को स्वीकारने का दुस्साहस है। जब बंजारी को उसका पति जोसेफ बेच देता है, तो वह कंगला के साथ जाना सार्थक समझती है।

◦ प्रेम की प्रधानता :

प्रेम को आदिवासी जीवन संबंधी उपन्यासों में पर्याप्त गरिमा मिली है। प्रेम केवल शारीरिक सम्पर्क या मानसिक लगाव मात्र नहीं। उसमें एक ऊँचाई होती है। वह देवता का वरदान या प्रसाद है।... प्यार एक वरदान है। वह एक देवता के मंदिर का ऐसा अनोखा प्रसाद है, जो साधक को ही मिलता है। वह प्रसाद पाना सब की बिसात नहीं। यह बात बंजारी अपने जीवन में केन्द्रस्थ मानती अंत में कंगला को प्राप्त करती अपने गाँव लौटती है वैसे तो वे परम्परागत विवाह के विरोध में हैं। बंजारी का अपना कटु अनुभव है कि विवाह समाज के जड बंधनों में से एक है। वह कहती है- “शाही ब्याह भी क्या किसी खेल से कम हैं? बचपन में हम गुडियों का ब्याह रचाते थे। शादी भी तो यही गुडियों का ब्याह ही है।... समाज के ये जड बंधन न जाने कब तक चलते रहेंगे।”^९

समग्रतया कह सकते हैं कि बंजारी का यह सोच यथार्थ के मेल में है कि इस दुनिया में औरत बनना सबसे बड़ा पाप है। औरत को मनुष्य भी नहीं समझा जाता। वह कहती है- “यदि औरत को भी मनुष्य समझा जाता तो मेरे साथ यह सब न होता।”^{१०}

उपर्युक्त प्रतिमानों के आधार पर कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास में गोंड आदिवासी समाज के गोत्र, जाति, नारी का स्थान एवं विवाह संबंधी प्रतिबन्धों तथा प्रथाओं, यौन संबंधों की स्थापना एवं स्त्री-पुरुष के संबंधों को अवस्थी जी ने उकेरा है।

◦ समाज में राजनीति की दखल :

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में ऐसी अनेक घटनाएँ घटित हुई जिसका प्रभाव भारत की राजनीति पर हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में अवस्थी जी ने स्वातंत्र्योत्तरकालीन राजनीतिक व्यवस्था का सफल चित्रण किया है। प्राक्स्वतंत्रता काल में भारतीय आदिवासी समाज की राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण करने वाली प्रमुखतः दो संस्थाएँ थीं एक जातिगत पंचायत और दूसरी सरकार। जातिगत पंचायतें जाति संबंधी पारस्परिक झगड़े आदि तय कर लेती थी और सरकार के नाम सरकारी व्यवस्था को सुरक्षा प्रदान करनेवाली पुलिस आदिवासी समाज का निर्ममता से शोषण करती थी। आलोच्य उपन्यास में जातिगत पंचायत एवं प्रशासन तंत्र की संरक्षक पुलिस दोनों की गतिविधियों का सुलभ चित्रण है।

◦ पटेल का महत्त्व :

गोंड आदिवासी समाज व्यवस्था का मुखिया पटेल होता है। वह गाँव का सम्मानित व्यक्ति होता है। गाँव से संबंधित प्रत्येक कार्य और गतिविधि में इसकी भूमिका अवश्य होती है। यह गाँव का सबसे अधिक साधक सम्पन्न व्यक्ति होता है। गरिमा का स्थान उन लोगों में पटेल का होता है। प्रस्तुत उपन्यास में पटेल, कांग्रेस दल की ओर से चुना जाता है। और गोंडों के लिए आर्य समाज की स्थापना करता है तथा ईसाई धर्म का प्रचार प्रसार करने वाले पादरी लोगों के धर्म-परिवर्तन

संबंधी कार्यों को रोकता है । पटेल के आर्य-समाज स्थापना संबंधी कार्य के बारे में बैजो कहती है- “पटेल ने आखिर आर्यसमाज की स्थापना कर ही दी । चर्च के सामने लंबा मैदान था । उसी के एक कोने में पटेल के हाथों आर्य समाज के मंदिर की स्थापना हो गई । उस दिन वहाँ एक भारी जलसा हुआ । पटेल की लडकी लाजो मेरे साथ इसकुल में पढती थी, सो मुझे बुला कर ले गयी थी । अकेले घर में जी नहीं लगता था, सो चली गई । वहाँ पहले लोगों ने बडी-बडी पोथी बाँची । फिर पटेल ने एक पत्थर जमीन पर रखकर मन्दिर की नींव डाली । गेरुआ रंग के कपडे पहने एक स्वामी जी उनके साथ थे । उसका नाम आत्मानन्द था। उनके चेहरे पर बडा तेज था । उसे देखकर बडी शान्ति मिलती है । उन्होने बडा लम्बा भाषण दिया । वह मेरी समझ में नहीं आया । थोडा सा कुछ समझ पायी, बाद में वह भी भूल गयी ।”^{११}

पटेल गोंडो के लिए आर्य समाज मंदिर की स्थापना के अतिरिक्त उनके शैक्षणिक, आर्थिक एवं शारीरिक विकास के लिए भी योजना बनाकर गोंडों को बताता है- “यहाँ एक भारी इमारत बनेगी । उसमें हजारों रुपये खर्च होंगे । इमारत में एक दवाखाना होगा । उस दवाखाने में देसी दवाईयाँ मिलेंगी । उसके लिए दूर से कोई नामी वैद्य बुलाया जायेगा । इस मंदिर में स्कूल भी लगेगा । स्कूल में तीन साल के बच्चों को भरती किया जायेगा । लोगों को पढने के लिए किताबें और अखबार मंदिर में मिलेंगे । रोज रात को गाँव के आदमी मंदिर में जमा होंगे, यहाँ देश-विदेश की चर्चा करेंगे । कभी-कभी नाच गाने भी होंगे । पटेल ने बताया कि वह साकार से कहकर मंदिर को कुछ सहायता भी दिलवा देगा। उन रुपयों से गरीब किसानों को कर्ज दिया जायेगा ।”^{१२}

इसके अलावा पटेल गाँव के आपसी झगड़े तथा अन्य छोटे-मोटे अपराधों का फैसला गाँव के कुछ बुजुर्गों के साथ मिलकर करता है ऐसे सभी फैसलों को मानना दोनों पक्षों के लिये स्वीकारना अनिवार्य होता है । पटेल गाँव के सामुहिक कार्यों के अवसर पर सभी गतिविधियों का केन्द्र होता है ।

० आर्थिक व्यवस्था :

अवस्थी जी ने आलोच्य उपन्यास में गोंड आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है । ये लोग अपना उदय निर्वाह खेतों में उगाये गये चावल, जंगल में उत्पन्न फल तथा जानवरों का खून और माँस खाकर करते हैं । ये आदिवासी स्थलांतरित खेती करते हैं और उससे निर्मित धान को बाँट कर खाते हैं । गोंड आदिवासी जाति में प्रचलित निम्नलिखित लोकोक्ति भी उनके आर्थिक स्तर की परिचायक हैं-

“जयत के गुनहरी, बाढत के भौंड,
पक गये तो किसान, नातरं गोंड के गोंड ॥”^{१३}

इस लोकोक्ति के अनुसार ‘फसल जम, बढ एवं पक कर यदि घर में आ गयी तो किसान अन्यथा गोंड के गोंड ही हैं । अर्थात् फिर दिन भर जंगल में आवश्यक खाद्य पदार्थ ढूँढना अथवा श्रम का कार्य कर आजीविका प्राप्त करना । गोंड आदिवासियों के भोजन के बारे में बंजारी कहती है- ‘भूनसारे से मुरगुल (सुबह का खाना) में मका खाकर चल देती थी । मरया (दोपहर का खाना) में पेज साथ देती तो चकाँडा, पथरचटा कजरा, खटुआ और कचनार के पते बिचारी (रात का खाना) में ।’^{१४} वे लोग आर्थिक रूप से गरीब होते हुए भी शराब के बेहद शौकीन होते हैं ।

गोंडों का आर्थिक जीवन उनकी भौगोलिक परिस्थितियों से निर्धारित होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य जातियों के समान गोंड आदिवासियों पर पर्ज का भार बढ़ता जा रहा है। महाजन और सम्पन्न किसान हर तरह से उनका शोषण करते हैं। सरकारी ऋण और विकास कार्यों के बीच बिचौलिए पैदा हो गये हैं। इन्हीं जीवन समस्याओं का चित्रण अवस्थी जी ने आलोच्य उपन्यास में किया है।

◦ **‘जंगल के फूल’ उपन्यास में चित्रित समाज का स्वरूप :**

आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखकर जो साहित्यकार साहित्य सृजन करता है, उसने आदिवासी समाज के बीच जीवन जिया होता है। यदि जीवन जिया न हो तो भी उसने कम-से-कम उस आदिवासी जीवन को निकट से देखा हो, परखा हो तब जाकर वह एक सफल रचनाकार बन सकता है। जो रचनाकार अपने समाज के परिवेश को वर्णित करना चाहता है तो वह स्वयं अपने परिवेश को लेकर ही रचना में उतरता है, किन्तु रचनाकार दूसरे समाज का परिवेश वर्णित करना चाहे तो उसके लिए यह कार्य अति कठिन बन जाता है। वह जिस समाज का परिवेश प्रस्तुत करना चाहता है उस समाज के व्यक्तियों के पास जाकर उनके साथ बात-चीत करता है। इन पात्रों का अपने पर विश्वास जगाता है। विश्वास के कारण वही पात्र अनायास ही अपने समाज की सम्याएँ, वहाँ के संबंधों, वहाँ के रीति-रिवाज, परम्परायें, उनकी प्रगति-दुर्गति, अपने समाज की अच्छी-बुरी बातें रचनाकार के सामने उगल देते हैं। उन बातों का रचनाकार अनुभव करता है जिससे जनजातीय (प्रदीय) साहित्य लिखा जाता है। ऐसे जनजातीय रचनाकारों में राजेन्द्र अवस्थी का नाम लिखा जाता है।

राजेन्द्र अवस्थी का ‘जंगल के फूल’ उपन्यास बस्तर के ‘गोंड’ आदिवासी जीवन को केन्द्र बनाकर लिखा गया एक सशक्त जनजातीय उपन्यास है। उपन्यास

की कथाभूमि बस्तर जिले का गढ बंगाल-गाँव है। जिसमें अधिकतर गोंड आदिवासी बसते हैं। गोंड बिल्कुल अलग किस्म के लोग होते हैं। उनके रीति-रिवाजों, परम्पराओं, सामाजिक संबंधों, मान्यताओं आदि को देखकर हम उनके प्रति सहानुभूति से भर जाते हैं। गोंडों का इतिहास कुछ अनोखा इतिहास है। वह अपने आपको आदिम जाति के बताकर शिव-पार्वती को अपना वंशज मानते हैं।

० गोंड आदिवासी समाज की व्यवस्था :

भारत का आदिवासी समाज अनेक जन-जातियों में विभाजित है। इनमें से कतिपय समूह गोंड, मुण्डा, संथाल आदि क्षेत्र बहुसंख्यत हैं। मध्यप्रदेश तो गोंडों का गढ माना जाता है। गोंड के संदर्भ में पी.आर.नायडु लिखते हैं- “मध्यप्रदेश के आधे से अधिक भाग में आदिवासी निवास करते हैं। इनमें गोंड जाति सबसे अधिक हैं। गोंड सबसे अधिक प्रभावशाली जन-जाति है। गोंड प्रकृति की कोख में किसी पहाड़ी पर या नदी किनारे रहना पसंद करते हैं। गोंडों के अधिकांश गाँव सड़क से दूर जंगलों में बसे होते हैं।” उन्हें आधुनिक जीवन पसंद नहीं है। ज्ञानचंद गुप्त लिखते हैं- “बस्तर की गोंड जाति आज भी आधुनिक सभ्यता से अलग अपने वनों-घाटियों, नदी-नालों, पशु-पक्षियों, देवी-देवताओं तथा रुढ़ियों और संस्कारों से जुड़ी हुई आदिम संस्कृति में जी रही है। मानव और प्रकृति का निश्चल संबंध इस संस्कृति का मूल आधार है।”^{१५}

घोटुल: बस्तर के आदिवासियों की सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत की पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाने में ‘घोटुल’ की महत्वपूर्ण भूमिका है। वह आदिवासी युवक और युवतियों के जीवन का एक आवश्यक अंग है। शायद बस्तर से बाहर बसे हुए लोगों को ‘घोटुल’ एक अजीब और चौंकाने वाला अजुबा लगता है। हरेक गाँव

का 'घोटुल' मानो कि एक प्रकार का 'कुमारगृह' है। 'घोटुलगृह' सामान्यतः लकड़ी, मिट्टी, घास से निर्मित किये जाते हैं। घोटुल गृह के सामने ही लकड़ी के खंभों पर घास अथवा खपरैल की छत से बना एक माण्डा होता है। 'घोटुलगृह' की सीमा को लकड़ी की बाढ़ से घेर दिया जाता है। घोटुल गृह की सीमा में ही एक लम्बा चौड़ा समतल आँगन होता है। इसी आँगन के बीचों-बीच घोटुल खंभ स्थापित किया जाता है, जिसके चारों ओर घूम-घूमकर घोटुल के नृत्यगीत सम्पन्न होते हैं। "माँ-बाप से अलग रहने लायक तथा विवाह होने तक के युवक-युवतियाँ घोटुल जाते हैं। विवाहित लोगों का घोटुल में प्रवेश वर्जित है। सूर्यास्त होने के बाद झोरिया द्वारा घोटुल का कोना-कोना साफ किया जाता है। रात होते ही घर का सारा कामकाज निपटाने के बाद गाँव के युवक और युवतियाँ बगल में गीकी (चटाई) दबाए घोटुल पहुँचने लगते हैं। अवस्थी जी लिखते हैं- "पहले पहुँचने वाला देर से आने वाले दूसरे साथी का द्वार पर स्वागत करता है। दूसरा तीसरा का, तीसरे चौथे का। बस। यही क्रम चलता रहता है। लडकियों को श्रृंगार देखते बनता है। दिनभर वे आवारा भले ही रहें, रात को वे लगन से सँवरती हैं। बालों में प्यार से लहरियाँ डालती हैं।" और लकड़ी की कंधियाँ खोसती हैं। ये कँधियाँ अपने प्रेमी द्वारा दी गई प्रेम की निशानी होती है। इन लडकियों को यह सब कभी खरीदना नहीं पड़ता। उनके गले में रंग-बिरंगी मालाएँ, लटकती रहती हैं। कभी-कभी मालाओं से पूरा गला भर जाता है। अलग-अलग आभूषणों से सज-धज कर अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत को प्रदर्शित करते हैं। तो दूसरी तरफ गाँव की झोंपडियों में जो घोटुल में अनुपस्थित तीन-चार साल से कम उम्र के लडके-लडकियाँ रह जाती है या पति-पत्नी। शेष सारे युवक युवतियाँ घोटुल में ही रात बिताते हैं।

घोटुल में प्रवेश करने वाले युवक को 'चेलिक' और युवती को 'मोटियारी' कहा जाता है। चेलिक भी अपनी मोटियारी की तरह सज-सँवर कर घोटुल में आता है। प्रेम उनके लिए व्यापार नहीं। उपन्यासकार लिखता है- "जिन्होंने प्रेम करना नहीं जाना। जो प्रेम को पाप समझते हैं। प्रेम जिनके लिए गिरगिट की तरह है। जो उससे भूत की तरह भागें या भय खाए। इन लडकियों में भय नहीं। प्रेम उनके लिए व्यापार नहीं। प्रेम उनके लिए नया पाठ नहीं। न उसे वे पाप समझतीं। प्रेम उनका देवता है। प्रेम उनकी जिन्दगी है।" जब किसी लडके या लडकी का विवाह हो जाता है तो उसकी घोटुल सदस्यता समाप्त कर दी जाती है।

घोटुल का प्रत्येक चेलिक सभी मोटियारियों का होता है और प्रत्येक मोटियारी सब चेलिक की। स्थायी जोड़ा बाँधने पर प्रतिबंध होता है। और सबको एक दूसरे के साथ परस्पर मिलने का अवसर प्राप्त होता है। वे वर्जित संबंधों पर भी निगाह रखते हैं और सीमा का उल्लंघन करने वाले को दंड देते हैं। पी.आर.नायडु लिखते हैं- "यौनाचार के पारस्परिक नियमों, निषेधों का कड़ाई से पालन किया जाता है। फिर भी युवा दिलों की धड़कनें एक दूसरे से टकराती ही हैं। यदि कोई युगल साथ रहने का निश्चय कर लेता है तो उनके माता-पिता धूम-धाम से शादी करा देते हैं। सारा घोटुल इस उत्सव में युगल प्रेमियों का साथ देता है।" बाद में शादी-शुदा युवक युवती की घोटुल सदस्यता रद्द की जाती है।

घोटुल का मुखिया सरदार कहलाता है। अवस्थी जी लिखते हैं- "यहाँ हर प्रेमी की एक प्रेमिका होती है और हर प्रेमिका अपने प्रेमी पर शासन करती है। ये प्रेमिका समय-समय पर बदल सकते हैं। रात को काफी देर तक यहाँ किस्से कहानियाँ, नाच-गाना होता रहता है और जब चाँद सिर पर चढ़कर नीचे गिरने को

मुँह आँधा करता है तो प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रेमिका को लेकर गीकी से बंध जाता है। मुर्गे की बांग होते ही फिर घोटुल धीरे-धीरे खाली होने लगता है। घोटुल का सरदार आखिर सरदार है। वह जिस लडकी को चाहे, अपने साथ सुला सकता है। दो लडकियाँ भी उसका साथ दे सकती हैं और वह न चाहे तो एक भी नहीं।”

घोटुल गृह के खम्भों, दरवाजों और दीवारों पर घोटुल के युवा सदस्यों द्वारा कई प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं। इनमें पशु-पक्षी, युवक-युवतियाँ, तीर-धनुष, बेल-बुटे और आडी-तिरछी रेखाओं से निर्मित चित्र होते हैं जो घोटुल के सदस्यों की आत्मिक भावना है।

• नारी की सामाजिक स्थिति :

भारतीय आदिवासी समाज में नारी की सामाजिक स्थिति के भिन्न-भिन्न रूप पाये जाते हैं। कुछ ऐसे आदिवासी समाज हैं, जो नारी को पैर की जूती के समान मानता है। वह नारी पुरुष आश्रित होती है। तो कुछ आदिवासी समाज में वह पुरुष पर अपना अधिकार जताती है। वह अपने आपको कहीं पुरुष से ऊँची समझती है। और जीवन निर्वाह के लिए अपने आपको समर्थ मानती है। विमल शंकर नागर लिखते हैं- ‘गोंड’ एवं ‘करनट’ जन जातियों में नारी पर पुरुष का शासन रहता है। नारी को अपने जीवनयापन के लिए पुरुष का आश्रय लेना होता है।” यानि की गोंड आदिवासी समाज में नारी पुरुष आश्रित रहती है।

बस्तर के ‘गोंड’ आदिवासी जीवन पर आधारित ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में गोंड नारी की सामाजिक स्थिति के संबंध में अवस्थी जी लिखते हैं- “औरत की जात, वह तो कच्ची माट की हंडी है। जिसे जो निशान उस पर बनाना हो, बना दे। जब कोई हंडी अकडती है तो कुम्हार उसे चाक में कसकर भरपूर तडपाता है।

मुंदरी जानती थी कि दुनिया में कोई औरत बिना मर्द के नहीं रह सकती । मर्द उसका सहारा है, वैसा ही जैसे बेल के लिए झाड होता है । मर्द शीशम का पेड है और औरत उसकी अमरवेल । बिना झाड का सहारा पाए वह जी नहीं सकती । इसलिए जब मुंदरी सताय के बारे में सोचती तो उसके मन में हमदर्दी के भाव जाग उठते ।” औरत के लिए औरत के मन में हमदर्दी जगाना अवस्थी जी की साधना रही है । बिना पति नारी असहाय है । उसे जीवन यापन करने के लिए पुरुष का सहारा चाहिए।

उपन्यास की नायिका महुआ नारी स्थिति पर तरस खाती हुई कहती है- “काश, रात में उसे अफसर के पास रहना पडता, झिरिया चुडैल न होती तो क्या पता, सवेरे सुलकसाए उससे आँखे फेर लेता और न जाने किससे वह अपनी नजरे उलझा लेता । इसीलिए वह बन्धनहीन रहना चाहता है । उसका क्या, वह रह सकता है, पर मेरा क्या होगा? मैं औरत जो हूँ । कुम्हार की हंडी एक बार जूठी हुई कि फिर बेकार । दूसरा खसम भले मिल जाए, पर दिल कहाँ मिलता है । उसने तय कर लिया कि आज रात जब घोटुल में सुलकसाए से मिलेगी तो जरूर बात करेगी । वह पूछेगी- तू जनम भर कैवारा रहना चाहता है ? तुझे बन्धन की जिन्दगी में ऐसी क्या मुसीबत है ।”

गोंड आदिवासी युवक-युवतियाँ जहाँ तक घोटुल के सदस्य हैं वहाँ तक परस्पर युवक-युवती शारीरिक संबंध मान्य है, किन्तु निश्चित जोडा बनने के बाद इस प्रकार के संबंध मान्य नहीं हैं । कुछ आदिवासी समूहो को छोडकर बात करें तो ‘गोंड’ आदिवासी समाज में नारी की स्थिति न के बराबर है । प्रस्तुत उपन्यास में सताय की हत्या के मामले में हिरमे को पुलिस कहती है- “साले जंगली हजार औरतें रखते हैं और जानवरों की तरह उनसे काम लेते हैं, खुद धुङ्गा पीते दिन बिता देते

है । न कोई काम, न धाम, जांगर से खुद जी चुराएँ और औरतों को बैलों की तरह पेरें । और तारीफ तो यह कि कोई जरा भी मरजी के खिलाफ गया कि बस, उसकी जा...।” उपन्यासकार केवल नारी स्थिति को बताता ही नहीं, ऐसी नारी स्थिति को लेकर उपन्यास के पात्रों में आत्ममंथन जगाते हैं- “मरदों ने मिलकर अपनी मरजी के कानून बना लिये हैं और उन्हें समाज का जामा पहना दिया है । जब कभी हम विरोध करती हैं, वे हँसते हुए कह देते हैं... ‘मेरी अच्छी पेडगी, तेरा दर्द समझता हूँ पर क्या करूँ’ समाज जो कहता है । और फिर हम बूढ़े हैं, दुनिया देखी है । सब-कुछ तो तेरी भलाई के लिए ही करते हैं । “मैं तो सुनते-सुनते थक गयी हूँ, जलियाँ । मैं सोचती हूँ यह समाज भी कैसा है जहाँ भेड़िये बसते हैं। तू तो जानती है पाली का किस्सा झिरिया की कहानी” महुआ के अलावा उपन्यास की गौण प्रेमकथा के पात्र जलिया और झालरसिंह के आपसी वार्तालाप से भी गोंड आदिवासी नारी की सामाजिक स्थिति का पता चलता है । जलिया झालर सिंह से कहती है- “तो यह कहो कि तुम मरदों ने उसके मन को दीमक की तरह खा डाला है । लिंगों की दुनिया में औरत-मरद का भेद नहीं रे, झालर । भेदभाव की ये दीवारे तुम्हारी बनाई हैं । तुम हाथ में डुग-डुगी लेकर बन्दर की तरह औरतों को नचाते हो... और जब औरत अपना ढोल पीटना चाहती है तो तुम ढोल की दरांत ढीली कर देते हो और कहते हो- भगवान ने लिखा है कि तुम ढोल नहीं पीट सकती ।”

उपर्युक्त तथ्यों को आधार बनाकर हम कह सकते हैं कि, अवस्थी जी ने ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में जिस गोंड आदिवासी नारी की सामाजिक स्थिति वर्णित की है वह अत्यंत दयनीय एवं करुण है ।

० जाति-व्यवस्था :

भारतीय आदिवासी समाज में जाति-व्यवस्था को प्राधान्य दिया जाता है । ग्रामीण समाज की जाति-व्यवस्था की तुलना में आदिवासी समाज की जाति-व्यवस्था बिल्कुल भिन्न प्रकार की होती है । उनकी पारिवारिक रचना और उत्तराधिकार की व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण अन्तर पाया जाता है । भारत के अधिकांश भागों के आदिवासी समूहों में पुरुष की प्रधानता है और इनमें उत्तराधिकार का निर्णय पिता की पंक्ति में होता है । इसके विपरीत दक्षिण और उत्तर-पूर्व में उत्तराधिकार का निर्णय माता की पंक्ति में होता है । इसके विपरीत दक्षिण और उत्तर-पूर्व में उत्तराधिकार का निर्णय माता की पंक्ति में होते हैं और पारिवारिक गठन मातृप्रधान होता है । आदिवासी लोग समूह में मिलकर काम करते हैं । वैसे तो उनकी जाति-व्यवस्था को बाहर से देखने से तो पता नहीं चलता किन्तु गहराई में जाकर देखें तो पता चलेगा कि उनके जातिगत- प्रबंध बड़े कठिन और अनुशासित होते हैं । उनके जातिगत प्रबंधों को तोड़ने वाले को कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाती है अथवा समाज में बहिष्कृत किया जाता है । विवाह के इच्छित रूपों में भी अलग-अलग समुदायों में अलग-अलग निर्णायक व्यवस्थाएँ पायी जाती है । यदि कोई युवती अपनी यौवनावस्था के आरम्भ में किसी विधर्मी अथवा विजातीय युवक के साथ यौन संबंध स्थापित करे और यहीं बात अपने समाज को पता चले तो समाज उस युवती एवं उसके माता-पिता को जाति से निकाल देते हैं, अथवा तो समाज के साथ उसका हुक्का-पानी बन्द कर देते हैं ।

‘जंगल के फूल’ उपन्यास में कुछ ऐसे ही जातिगत प्रबंधों पर प्रकाश डाला गया है। उपन्यास की आदिवासी गोंड युवती झिरिया-विजातीय युवक से प्रेम करती

है । उसके प्रेम को लेकर गाँव वाले विरोध करते हैं । गाँव वालों का विरोध होने पर भी वह प्रेम करती रहती है, और अन्त में प्रेम के लिए ही वह मर जाती है । और चुडैल बनकर रातभर गाँववालों को सताती रहती है । इस बात को लेकर गाँव वाले कहते हैं- “गाँव के बूढ़े जमाने को कोसते रहे । कहते, कैसा जमाना लग गया है । पिरेम की तो लगाम टूट गयी है । ऐसा बेलगाम पिरेम हमने नहीं देखा । हमने धूप में थोड़े बाल सफेद किए हैं। बूढ़े रास्ता बनाते हैं । पर इन जवानों को देखो, सावन के अंधे बने हैं । परजात से ब्याह करने चली थी वह । सब कुछ सुना था उसने फिर भी गलत काम किया और उसे रोका तो सारे गाँव के लिए मुसीबत बन गयी है ।”

गोंड आदिवासी समाज की सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था को संचालित करने के लिए परमेश्वर स्वरूप ‘गायता’ गाँव का मुख्य एवं सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है । वह गाँव पर अपना अधिकार जताता है । गायता को अत्यंत श्रद्धा और सम्मान के साथ देखा जाता है ।

‘जंगल के फूल’ उपन्यास में हिरमे को ‘गायता’ का पद दिया गया है । हिरमे पूरे गाँव का ख्याल रखता है । गाँव में आने वाले हरेक महेमान की सेवा गायता के हाथ होती है । हिरमे गायता होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास के प्रारंभ में महेमान गोरा अफसर के सामने गाँव के सारे रीति-रिवाजों का ब्योरा देता है । गायता का संबंध राजा, पुलिस, ठेकेदार, जमींदार आदि से रहता है । हिरमे की पत्नी सताय की हत्या के बारे में गुमा को जेल होती है । गुमा को जेल से छुड़ाने के लिए हिरमे प्रयत्न करता है । वह गायता था जिसके उसकी कारण पुलिस आदि के साथ उठ-बैठ रहती थी परिणामस्वरूप वह गुमा को जेल से जुड़ा लेता है । नेतानार में

कथानायक सुलक एक विवाह में शरीफ होने जाता है, वह वहाँ की दुल्हिन भुसरी के साथ नाच-गान करता है। अपनी दुल्हिन को पराये युवक के साथ नाच-गान करते देख दुल्हा क्रोधित होकर सुलकसाए पर टाँगी चलाता है। किन्तु सुलक दुल्हे के पेट में हाँसिया घुसेड कर घायल करता है। उस पर पंचायत बैठती है किन्तु हमदर्दी सुलक को मिलती है क्योंकि सुलक गाँव के गायता हिरमे का पुत्र है।

गायता के अलावा आदिवासी जाति-व्यवस्था का एक ओर शख्म रहता है जिसे 'सरदार' कहा जाता है। वह 'घोटुल' नामक संस्था का लीडर होता है। उसके द्वारा गाँव के युवक और युवतियों को सुरक्षित रखा जाता है। इस प्रकार कुछ संस्थाएँ और कुछ व्यक्तियों द्वारा आदिवासी समाज की जाति-व्यवस्था को सुरक्षित रखा जाता है।

• विवाह संबंधी प्रथाएँ :

भारतीय आदिवासी समाज में यौन संबंधों की विधिवत स्थापना करने के लिए शिष्ट समाज की भाँति विवाह संस्था का प्रचलन है। आदिवासी समाज में विवाह संबंधी नाना प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित हैं जिसका हिन्दी के आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों में वर्णन मिलता है। 'गोंड' आदिवासियों में विवाह संबंधी लमसेन, दूध लौटाना, तम्बाकु माँगना, तम्बाकु नहीं बाँटना, कंची माँगना, चावलों का मिलना तथा बाँस सुराही आदि प्रथाएँ प्रचलित हैं।

'गोंड' आदिवासी समाज में विवाह संबंधी 'दूध लौटाने की प्रथा' प्रचलित है। एक लडके का विवाह जिस वंश में होता है, उसे उस वंश के लडके से अपनी एक लडकी का विवाह कराना होता है अथवा दूसरा वंश पहले परिवार से लडकी माँग सकता है। आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास 'जंगल के फूल' में इस प्रथा के

आधार पर मुंदरी के मामा का लडका सन्तू सदैव मुंदरी से विवाह करने के लिए कहता है। मुंदरी अपने प्रेमी हिरमे से कहती है- “तुझ पर तो मैं जान देती हूँ रे, पर दर्मास सन्तू हाथ धोकर पीछे पडा है। रोज मेरी देहरी छूता है और बीर (भाई) के कान भरता है। बीर है सो उस पर जान देता है। जान क्यों न दे, दोनों चिलम भाई जो ठहरे। दम भाई सो सगा भाई... ‘पर मुसीबत यो हैं हिरमे कि तापे कहता है, तू आन गाँव का है। सन्तू मेरे मामा का लडका है और हमेशा दूध लौटाने की बात करता है। कहता है मुन्दरी को लेकर रहूँगा।’”

प्रस्तुत उपन्यास में ‘लमसेना’ रखने की प्रथा भी प्रस्तुत हुई है। ‘लमसेना’ रखने की प्रथा में सम्पन्न लडकी का पिता किसी अच्छे लडके को अपने घर रख लेता है। लडके का खाना-पीना, रहना आदि लडकी के घर में होता है। बदले में लडका लडकी के पूरे परिवार की देखभाल और सेवा करता है। लडका चाहता है कि उसकी सेवा से लडकी का परिवार प्रसन्न रहे क्योंकि जब तक लडका लडकी के परिवार को प्रसन्न नहीं कर पाता तब तक लडकी की शादी उस लडके के साथ नहीं होती। लडका लडकी के परिवार को प्रसन्न करने के लिए जितना समय लडकी के घर में रहता है उतने समय के लिए लडके को ‘लमसेना’ कहा जाता है।

उपन्यास का करतमी पात्र जो भगेला है, वह बचपन से ही भूसरी से प्रेम करता है। भूसरी भी करतमी को प्रेम करती है। किन्तु एक बार करतमी भूसरी के पिता के पास जाकर भूसरी का हाथ माँगता है। भूसरी के पिता करतमी की बात को ठुकरा देते हैं, क्योंकि करतमी भगेला है। और करतमी के हाथ से भूसरी को छीना जाता है। थोड़े समय के बाद भूसरी के पिता भूसरी के लिए ‘लमसेना’ रख लेता है। हबका कहता है- “माफ कर बेटा, बूढा हो गया हूँ तो गुस्सा जल्दी आ जाता

है । मैं जानता हूँ, गायता ने तेरे साथ अच्छा नहीं किया । भुसरी को उसने तुझसे छीना और उसके लिए एक लमसेना रख दिया ।”^{१६}

‘बाँस की सुराही’ नामक प्रथा में युवक द्वारा थोंडी में शराब लेकर किसी युवती के घर जाया जाता है और युवती के सामने प्रेम जताता है । युवती उसे स्वीकार कर ले तो मानो कि उसका प्रेम संबंध हो गया । और स्वीकार न करे तो मानो कि वह प्रेमसंबंध से जुड़ना नहीं चाहती । उपन्यास का पात्र गुबरी थोंडी में शराब लेकर जलिया के घर पहुँचता है । वहाँ जलिया गुबरी को देखकर आश्चर्यचकित रह जाती है । क्योंकि वह झालर सिंह से प्रेम करती है । गुबरी जलिया को मनाता हुआ जलिया से तम्बाकु माँगता है । तम्बाकु माँगने का अर्थ भी यही होता है कि, वह जलिया से शारीरिक संबंध जोड़ना चाहता है।

‘धुङ्गा’ प्रथा में गाँव की जिस युवती की शादी होने वाली है, उस युवती द्वारा गाँव के सब युवकों को तम्बाकु बाँटी जाती है । तम्बाकु बाँटती युवती जिस युवक से ब्याह करना चाहती है, उसे तम्बाकु नहीं बाँटती । इसी तम्बाकु बाँटने की प्रथा को ‘धुङ्गा प्रथा’ कहा जाता है।

‘जंगल के फूल’ उपन्यास में जलिया की शादी कोई दूसरे युवक से तय की जाती है । शादी तय होने से पहले वह अपने गाँव के युवक झालर सिंह से प्रेम करती है । जब धुङ्गा बाँटती वह झालर सिंह के पास जाती है, और महुआ को कहती है कि ‘नहीं महुआ, मुझसे धुङ्गा नहीं दी जाएगी ।’

उपर्युक्त प्रथाओं के अलावा ‘कंधी माँगने की प्रथा’ जिसमें युवक अथवा युवती द्वारा प्रेम का निमंत्रण होता है । ‘चावलों का मिल जाना’ की प्रथा में शादी सम्पन्न होने का संकेत है । इस प्रकार ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में गोंड आदिवासी समाज

की विवाह संबंधी प्रथाओं का निरूपण हुआ है ।

यौन संबंध: हिन्दी के आदिवासी जीवन-संबंधी उपन्यास साहित्य में भारतीय आदिवासी समाज की यौन संबंधों की स्थापना संबंधी मान्यताओं का चित्रण मिलता है। कुछ आदिवासी समाज में पुरुष द्वारा महिलाओं को वेश्या बनाकर धन अर्जित किया जाता है । तो कुछ आदिवासी समाज में नवयुवक अथवा नवयुवतियों को अपनी ही जाति में स्वच्छन्दतापूर्वक यौन संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है । किन्तु मानो कि अपनी जाति की युवती विजातीय युवक के साथ यौन संबंध स्थापित करे और युवती के समाज को पता चले तो उस युवती का समाज युवती एवं उसके माता-पिता को अपने समाज से बहिष्कृत कर देता है ।

बस्तर के गोंड आदिवासी समाज जीवन पर विरचित अवस्थी जी का 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोंड आदिवासी समाज में व्याप्त यौन संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। गोंड आदिवासी समाज में यौन संबंधों की स्थापना के लिए यद्यपि कोई विशेष बंधन परिलक्षित नहीं होता परन्तु जाति के बाहर कोई भी नवयुवती यौन संबंध स्थापित नहीं कर सकती । यहाँ 'घोटुल' नामकी संस्था में अविवाहित नवयुवक-युवतियाँ रहते हैं । उनमें प्रत्येक का एक प्रेमी अथवा प्रेमिका होती है । ये प्रेमी आवश्यकता पडने पर अपनी प्रेमिका या अपने प्रेमी को बदल सकते हैं । ये नवयुवक रात्रि में 'घोटुल' में रहते हैं और वहाँ पर मनोरंजन के साथ-साथ स्वतन्त्र रूप से यौन संबंध स्थापित करते हैं । अवस्थी जी लिखते हैं- "यहाँ हर प्रेमिका की एक प्रेमिका होती है और हर प्रेमिका अपने प्रेमी पर शासन करती है । ये प्रेमिका समय-समय पर प्रेमी बदल सकती हैं । रात को काफी देर तक यहाँ किस्से, कहानियाँ, नाच-गान होता रहता है और जब चाँद सिर पर चढ़कर नीचे गिरने को मुँह आँधा

करता है तो प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रेमिका को लेकर गीकी से बँध जाता है । मुर्गे की बाँग होते ही फिर घोटुल धीरे-धीरे खाली होने लगता है । घोटुल का सरदार आखिर सरदार है वह जिस लडकी को चाहे अपने साथ सुला सकता है । दो लडकियाँ भी उसका साथ दे सकती हैं और वह न चाहे तो एक भी नहीं ।”

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसने अपनी रति सम्बन्धी एवं पैतृक मूल प्रवृत्तियों के कारण अपना अकेलापन त्यागकर पारिवारिक जीवन अपनाया । बाद में उसकी सामाजिक भावना बढ़ती रही । वह समाज से जुड़कर अपना विकास करता रहा । पूरा मानव-जीवन समाज से जुड़ा हुआ है । उपन्यासों में भी व्यक्ति या समाज का चित्रण होता है । अतः कहना अनुचित न होगा कि उपन्यास प्रमुखतः समाज से सम्बन्धित होता है, उसका स्वरूप सामाजिक होता है । ‘सामाजिक उपन्यास समाज के गठन का सामाजिक मूल्यों का तथा सामाजिक समस्याओं की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण करता है ।’ साहित्य समाज का दर्पण होता है । इसलिये सभी उपन्यासों में सामाजिक तत्व का पाया जाना उचित है । अगर ऐसा न हो तो उपन्यास अपनी उपयोगिता ही खो बैठेगा । स्पष्ट है कि हर एक उपन्यास सामाजिक होता है । ऐसी स्थिति में यह निश्चित करना कठिन कार्य है कि कौन-सा उपन्यास सामाजिक नहीं है । यह एक ऐसा सवाल है जिसे नजर अंदाज करने से काम नहीं चलेगा । बल्कि ऐसी सीमा रेखा खींचनी पड़ेगी कि जिससे सामाजिक उपन्यास अन्य उपन्यासों से अलग प्रतीत हो। सामाजिक उपन्यासों के बोर में डॉ. त्रिभुवनजी लिखते हैं- “जिन उपन्यासों में मूलतः सामाजिक प्रश्नों को सोद्देश्य उठाता जाता है उन्हें सामाजिक उपन्यासों की संज्ञा देनी ही पड़ेगी । सामाजिक प्रश्नों के अनेक संदर्भों में उठाया जा सकता है, पर क्या सभी ऐसे उपन्यासों को सामाजिक कहा जा सकता है?”^{१८} तो

डॉ. शशिभूषण सिंहल जी लिखते हैं- “सामाजिक उपन्यास समाज के विभिन्न क्षेत्रों, स्त्री-पुरुष के प्रति सम्बन्धों, परिवार, जाति, संप्रदाय, वर्ग, राष्ट्र, अर्थदशा, रीति, धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण करते हुए उनके लक्ष्य तथा उनकी समस्याओं का निरूपण करता है।”^{१९} इससे स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक उपन्यासों का निरूपण काफी विस्तृत है। इसलिए सामाजिक उपन्यासों की व्याप्ति को सीमित करके देखना जरूरी है। सामाजिक उपन्यासों का दायरा सीमित करते हुए त्रिभुवनजी लिखते हैं- “इसके अंतर्गत उन्हीं उपन्यासों को रखा जाएगा जिनमें समाज को स्वास्थ्य प्रदान करनेवाले तत्वों के प्रति आस्था और दुर्बल बनाने वाले रोगों के निदान तथा उनकी शल्यक्रिया की विधि देखने को मिलेगी।”^{२०}

उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ अनेक होती हैं। इसलिए उपन्यासों में चित्रित समाज का दायरा बहुत बड़ा भी हो सकता है। परन्तु अधिकतर उपन्यासकार व्यक्ति और समाज की तत्कालीन समस्या पर ही अधिक गौर करना पसन्द करते हैं। क्योंकि जितना विषय छोटा उतना ही वह मार्मिक विवेचन कर सकता है। सामाजिक उपन्यासों के लोकप्रिय विषय निम्नांकित हो सकते हैं- संयुक्त परिवार और उनकी समस्याएँ, वर्ग-भेद, धार्मिक आडम्बर, पारिवारिक जीवन की विषमताएँ, रुढ़ियों के संदर्भ में उत्पन्न पारिवारिक और वैयक्तिक समस्याएँ, बाल-प्रौढ तथा अनमेल विवाह के कुपरिणाम, विधवा समस्या, दाम्पत्य जीवन के शत्रु, स्वच्छंद प्रेम और उससे उत्पन्न परिस्थितियों तथा अन्य सामाजिक बुराइयों के कारण उत्पन्न विषमताएँ।

सामाजिक उपन्यासों में मात्र आदर्शवादी चित्रों के ही दर्शन नहीं होते बल्कि उनमें समाज की वास्तविकता को ही अधिक से अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है। “सामाजिक उपन्यासों में समाज के वर्गों का तथा उनकी समस्याओं का

चित्रण किया जाता है । सामाजिक जीवन का चित्रण प्रस्तुत करते समय उत्तरदायी कलाकार जनचेतना को उद्बुध करना तथा उसको संस्कारित करना अपना कर्तव्य समझता है ।^{११} परन्तु यह कोरा यथार्थवाद नहीं होता वह साहित्यकार की लेखनी द्वारा चित्रित किया गया ऐसा चित्र होता है, जिसमें साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के रंग ढले होते हैं ।

सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रांत, पीडित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उनके वास्तविक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना सामाजिक उपन्यासों का प्रमुख मकसद है । सामाजिक उपन्यास केवल समाज जैसे है वैसा ही उसका वर्णन मात्र नहीं करता बल्कि उसे इस रूप में प्रस्तुत करता है कि जिससे पाठक अपने युग के सत्य एवं समाज में होने वाले कार्य-व्यापारों के औचित्य तथा अनौचित्य को सरलता से परख सके और उन मर्यादाओं का अनुसरण कर सके जिन पर चलकर एक आदर्श समाज की स्थापना हो सके ।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के समकालीन अधिकतर सामाजिक उपन्यासकारों का दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रहा । प्रेमचंद के पश्चात् सामाजिक उपन्यासों में परिवर्तन हुआ । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों के सामने अनेक सामाजिक समस्याएँ एक साथ आयीं जिससे वे कोई आदर्श या सिद्धान्त निर्माण न कर सके । इसका कारण बताते हुए जयश्री बरहाटे लिखती हैं- “आज के प्रत्येक व्यक्ति के भीतर नयी पुरानी संस्कृति के मूल्यों के बीच संघर्ष दिखाई देता है । नये मूल्यों का मानव ने हमेशा ही स्वागत किया है । नवीनतम का पुजारी यह मानव प्राचीनता का गला घोटता हुआ दिखाई देता है ।^{१२} सभ्यता की दौड़ में मनुष्य आगे बढ़ने लगा, वह अपने लिए नये बंधन बिछाता गया । इसलिए साहित्यकारों ने नवीन मान्यताओं के प्रति

केवल आग्रह ही नहीं मिलता बल्कि रुढ़िगत बंधनों के प्रति विद्रोह तथा उनको समूल नष्ट करने की आकांक्षा भी पाई जाती है ।

राजेंद्र अवस्थी द्वारा लिखित 'मछली बाजार', 'बीमार शहर', 'भंगी दरवाजा' तथा 'बहता हुआ पानी' सामाजिक उपन्यास है । 'मछली बाजार' और 'भंगी दरवाजा' नामक उपन्यास में पारिवारिक समस्या, पारिवारिक विघटन को चित्रित किया गया है । 'बीमार शहर' में विवाह संस्था का विरोध, वेश्या समस्या तथा अनमेल विवाह के कुपरिणामों को अभिव्यक्ति किया गया है तो 'बहता हुआ पानी' में नारी का उच्छृंखलपन, नारी की विवशता को उपन्यास का कथ्य बनाया है । यहाँ पर हम उनके एक-एक उपन्यास के कथ्य का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

◦ 'मछली बाजार' उपन्यास में सामाजिकता :

'मछली बाजार' राजेंद्र अवस्थी का सामाजिक उपन्यास है, जिसमें पारिवारिक समस्या, पारिवारिक विघटन, विवाह का विरोध तथा आर्थिक समस्या का चित्रण किया गया है । 'मछली बाजार' की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है पारिवारिक विघटन। इस सन्दर्भ में प्रमोद भार्गव लिखते हैं- "लेखक ने शमशेर और इंदु के माध्यम से समूची पारिवारिक परम्पराओं की विघटनकारी प्रवृत्तियों और जीने की विषमताओं को उजागर किया गया है ।"^{२३} यह उपन्यास इक्कीसवीं सदी के टूटते और बिखरते हुए परिवारों का ज्वलंत चित्रण है । उपन्यास का प्रमुख पात्र शमशेर भारतीय समाज व्यवस्था के शिकार हुए लाखों लोगों का प्रतिनिधित्व करता है । शमशेर के माध्यम से अवस्थी जी ने विवाहित जीवन की घुटन का सूक्ष्म विश्लेषण किया है ।

विवेच्य उपन्यास की प्रमुख समस्या है पारिवारिक समस्या । शमशेर अपने ही परिवार में, अपने ही घर में घुटन महसूस करता है । उसका पारिवारिक जीवन दर्द

से भरा हुआ है। शमशेर अपनी पत्नी इंदु से बेहद प्यार करता है लेकिन इंदु का चिडचिडा स्वभाव, अहंकार विपरीत विचारधारा और शक्की प्रवृत्ति के कारण घर में सदैव महाभारत मचा रहता है। इंदु शमशेर के जीवन में इतने काँटे बो देती है कि शमशेर का घर आने का मन ही नहीं करता। इसे ही कथ्य के रूप में रूपायित करने का प्रयास किया गया है।

शमशेर से कोई मिलने आये या उसे किसी का फोन आये तो इंदु के मन में यह शक पैदा होता है कि उस महिला का शमशेर से लगाव है। इसलिए वह शमशेर को गालियाँ देने लगती है। भारतीय समाज कुछ नैतिक मूल्यों पर खड़ा है। भारत सीता-सावित्री का देश है। यहाँ की नारी को पूज्या के रूप में स्वीकारा गया है और वह भी अपना धर्म निभाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह पुरुषों की दासी बनी रहे लेकिन पति की इज्जत करना पत्नी का काम है। फिर भी इंदु जैसी नारी पति की इज्जत न करके उसकी अवहेलना ही नहीं करती तो उसके दुःख की पर्वाह भी नहीं करती। शमशेर के सिर में दर्द होने पर वह कहती है- “हथौड़ा ले लो और टूकडे-टुकडे कर दो उसके। मर जाओगे तो चैन मिलेगा। तुम्हारी कार बेंच दूँगी, इन्श्योरेंस का पैसा मिलेगा, प्रोवीडेंट फंड और ग्रेच्युटी भी। डेढ-दो लाख के आसपास तो मिल ही जायेगा। बहुत ठाठ से रहेंगे। तब तक बड़ा लडका लल्लू एम.ए. कर लेगा और कमाने लगेगा। ऐसे निकम्मे आदमी की घर में जरूरत नहीं है। ...कुता!...बदमाश...हरामजादा...नामर्द...।”^{२४} इतना ही नहीं तो इंदु हर दिन अपने पति के मरने की बाट जोहती है। इसी कारण शमशेर इंदु से नफरत करने लगता है। अपनी गलती होने पर भी इंदु शमशेर को ही दोषी मानती है। वह शमशेर को भला-बुरा कहती है। “मेरी तो जिंदगी ही बरबाद हो गई... रोज-रोज वही क्या

कहती है तू, मुझे बिल्कुल नहीं चाहता, हाँ... तुझे क्या । जा मर जा... तेरे रहने का क्या अर्थ... किसी दिन तेरी लाश यहाँ से निकलेगी तो तेरे ही दोस्तों को पार्टी दूँगी, जश्न मनाऊँगी ।”^{२५}

शमशेर की पत्नी द्वारा उपेक्षा होती है । यहाँ तक कि शमशेर के बीमार हो जाने पर इंदु सिनेमा देखने जाती है । इससे इंदु की लापरवाही और शमशेर की उपेक्षा का प्रमाण मिलता है । उसे शमशेर की सेवा से कोई सरोकार नहीं है । शमशेर जिए चाहे मरे । इसी वजह से शमशेर अपना बहुत-सा वक्त बाहर ही बिताता है ।

शमशेर के बारे में यही कहना ठीक होगा कि शमशेर अपने शरीर की लाश को ढो रहा है । इंदु शमशेर से ही नहीं बल्कि अपने बच्चों से भी झगडती रहती है । घर में आये दिन खाना न बनाना साधारण-सी बात है । ऐसी स्थिति में बचचें को ब्रेड खाकर अपनी भूख मिटानी पडती है और शमशेर तो भूखा ही सोता है । शमशेर अपने ही घर में बेगानों-सा रहता है और अकेलापन महसूस करता है । उसे शांति नहीं मिलती । वह अपनी बेटी से कहता है- ‘घर से बाहर सब शांत होकर ठहर जाता है बेटी... वह तो..?’^{२६}

शमशेर घर से बहुत उदास है । उसे बाहर मान-सन्मान मिलता है लेकिन घर आते ही गालियों से उसकी आरती उतारी जाती है । परिणामतः शुभा नामक युवती से शमशेर की दोस्ती हो जाती है । यहाँ तक कि वह शुभा से अनैतिक सम्बन्ध भी रखता है । शुभा भी तलाकशुदा युवती है । शुभा की शादी कैम्प में नौकरी करने वाले युवक से हुयी थी। “सास, ननद के व्यवहार, पति की क्रूरता, शुभा के सपनों का पुरा न हो पाना और...। एक दिन आधी रात को वह घर छोडकर अपने पिता के यहाँ आ गई थी । अपने पति के यहाँ से वह कुछ भी लेकर नहीं आई, न अब

वह लाना चाहती है । बाद में उसने तलाक की अर्जी दी और मुक्त हो गई ।”^{२७}

शमशेर आधुनिक विचारों का आदमी है । वह शादी-ब्याह में विश्वास नहीं रखता। वह कहता है “आज तक वह यह नहीं समझ सका कि पति-पत्नी का सम्बन्ध किस ‘एथिक’ में एक-रक्त का सम्बन्ध है, दो अलग वंशों, अलग दायरों, अलग अंकुर की तरह उपजने वाले बीज की वह पहचान जो यह बता सकती है कि बीज जब बढ़कर वृक्ष बनेगा तो कैसा होगा, ये सब एक है क्या? पति-पत्नी का खून अक्सर नहीं मिलता, इसलिए यदि खून देने की नौबत आ जाए तो बाहर तलाश करनी पड़ती है । तब?

यह सिर्फ दोस्ती का रिश्ता है ।

मात्र एक दोस्ती का,

शमशेर के शब्दों में, “दोस्ती समान-धर्म चरित्रों से हो सकती है ।”^{२८}

शमशेर २०वीं सदी के टूटते हुए व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है । वह अंद से पूरी तरह से टूटा हुआ है । इस कारण शमशेर को अभागा भी कहा जा सकता है क्योंकि “यह शाप है गलत परिवेश में पले हुए ऐसे साथी का मिलना जिसे जीवन साथी की संज्ञा दी जाती है ।”^{२९} जो अपने पति से हाथापाई करने को तैयार है । “मारने आया है मुझे... आ मार तो भला”, इंदु अपनी साड़ी का पल्लू कमर में कसने लगी थी, “मारेगा मुझे हरामी... कुत्ते... नालायक और कहता है और अबला के ऊपर हाथ उठाना चाहता है, शर्म नहीं आती ।”^{३०}

शमशेर इतना सारा सहकर भी अपनी पत्नी से तलाक नहीं लेता । इसका कारण यह है कि शमशेर इज्जतदार आदमी है और उसके बड़े-बड़े बच्चे भी हैं । इसलिए वह दस साल तक इंदु के साथ दिखावे के सम्बन्ध रखे हुए है । वह समाज

को मानता है। समाज में उसकी इज्जत है। इससे भी बड़ा कारण वह यह सोचता है कि इंदु के सारे व्यवहार ही गलत है। उसने शमशेर के मन में एक समूची व्यवस्था के प्रति विद्रोह पैदा कर दिया है। शमशेर की दृढ़ धारणा बन गई है कि पत्नी प्यार नहीं कर सकती, वह खटमल की तरह प्यार भरे रक्त को खींचकर पी जाती है। प्रेमिका ही प्यार का माध्यम है, दोनों एक भय में जीते हैं। दोनों को एक-दूसरे की चिंता होती है। इसलिए शमशेर शुभा से प्यार करता है, शारीरिक सम्बन्ध रखता है। शमशेर का व्यवहार गलत है, समाज इसे मान्यता नहीं देता। पर क्या शमशेर जैसा प्यार का मारा, घर में कुत्ते जैसी जिन्दगी बिताने वाला इन्सान और क्या कर सकता है? शमशेर भी इन्सान है। उसे भी प्यार की जरूरत है। इसलिए एक दृष्टि से देखा जाय तो शमशेर शुभा के पास प्यार पाने की वजह से ही खिंचा चला आता है।^{३१}

उपन्यास की दूसरी सामाजिक समस्या है आर्थिक समस्या। वर्तमान तानाशाही युग में गरीब नौकरों की स्थिति जानवरों-सी है। उनसे काम तो लेते हैं मगर उन्हें डाँटते-पीटते भी है। शमशेर के घर का नौकर एक देहाती इन्सान है परन्तु घर में अगर किसी को गुस्सा उतारना हो तो उसी पर उतारा जाता है। इंदु अपने पति की ओर जरा भी ध्यान नहीं देती। शमशेर अगर गाँव चला गया तो उसका कमरा कबाडखाना बन जाता है। इसमें रामू का कोई दोष नहीं है क्योंकि वह सब इंदु जान-बुझकर करती है। तब भी शमशेर रामू पर ही गुस्सा होता है। घर में चीनी न होने के कारण भी गुस्से का शिकार रामू ही बनता है। “शमशेर का खून फिर गरम हो गया। उसने उठकर गुस्से में दो चाँटे रामू को जड़ दिये।”^{३२} रामू बेचारा बिना प्रतिसाद किये वहाँ से अंदर चला जाता है। इंदु भी अगर शमशेर पर गुस्सा निकालना

हो तो रामू को ही पीटती है । रामू गरीब होने की वजह से कुछ नहीं कर पाता, चुपचाप सह लेता है ।

अमीर लोग गरीबों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं इसका एक उदाहरण देखिए । इंदु के पिता गरीबों को गाली दिये बिना ही नहीं करते । एक दिन एक गरीब किसान भारी बोझ लेकर उनके घर आता है । उसे आने में देरी होती है, इसलिए वे बेचारे किसान पर बरस पड़ते हैं- “इतनी देर कर दी तूने हरामी अं...” गालियाँ और गालियाँ। वह गिड़गिड़ाने लगा, “हुजुर, रास्ते में एक कीला पैर में गढ़ गया था, बेहद खून निकला, जरा देखिए तो, चलते भी नहीं...।”

कप्तान साहब ने नाल-भरे अपने जूते उसकी पीठ पर मारते हुए कहा- “खून निकले या पैर कट जाये, तुझे समय पर आना था । चल भाग यहाँ से ।”^{३३} इतना ही नहीं तो वह चिलचिलाती धूप में आता है और पानी मांगता है तो उसे पानी तक नहीं दिया जाता ।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में शमशेर के माध्यम से आम-आदमी की पारिवारिक स्थिति, शुभा के माध्यम से पारिवारिक विघटन और रामू तथा गरीब किसान के माध्यम से आर्थिक समस्या का यथार्थ चित्रण अवस्थी जी ने किया है ।

बीमार शहर- ‘बीमार शहर’ अवस्थी द्वारा लिखित एक सामाजिक उपन्यास है । विवेच्य उपन्यास में बम्बई जैसे महानगरीय जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया गया है जिसमें अनेक सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया गया है । इस उपन्यास की केंद्रीय संवेदना के बारे में डॉ. रामविनोद सिंह लिखते हैं- “यहाँ आदमी सबके बीच रहकर भी सबसे कटा होता है । उसकी अपनी निजी सत्ता है । एक व्यक्ति का मूल्य पहचानना कठिन होता है । व्यक्तियों के मूल्यों की पहचान आसान है ।

यहाँ कोई किसी से जुड़ा नहीं है। यह इस उपन्यास की केंद्रीय संवेदना भी है और समकालीन मानव-स्थिति का सम्यक चित्र भी ।”^{३४}

प्रस्तुत उपन्यास में बम्बई जैने महानगरीय जीवन के विविध पहलुओं को तथा मानवी-रिश्ते, सेक्स व्यापार का बढ़ा हुआ आकर्षण, नारी समस्या, वेश्या-समस्या तथा विवाह का विरोध आदि विविध समस्याओं को उपन्यास के कथ्य के रूप में रूपायित किया है ।

भारतीय समाज कुछ नैतिक मूल्यों पर खड़ा है । यहाँ विवाह के बिना एक-दूसरे के साथ रहना या सम्बन्ध रखना अनुचित माना जाता है । फिर भी हमारे समाज में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो घर पर पत्नी होकर भी बाहर किसी स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करते हैं जिसे अनैतिक सम्बन्ध कहा जाता है । वर्तमान युगीन मानव वैवाहिक जीवन की नयी माँग कर रहा है । वर्तमान समाज में ऐसे अनेक- स्त्री पुरुष हैं जिनके अपने-अपने छोटे बड़े संसार हैं । ऐसे व्यक्ति अपने पारिवारिक सम्बन्धों को ईमानदारी से नहीं निभाते। लेकिन ऐसा भी नहीं कि वे अपने पारिवारिक सम्बन्धों को तोड़ना चाहते हैं या नकारते हैं, बल्कि वे वैवाहिक जीवन को स्वांग मानते हुए उसे निभाते हैं । ‘बीमार शहर’ उपन्यास में इसी दाम्पत्य जीवन के खोखलेपन और व्यक्ति की विभाजीत मानसिकता को अभिव्यक्त किया है । विवेच्य उपन्यास का निरंजन शादी-शुदा और चार बच्चे का बाप होकर भी वेश्यालय जाता है । इसी वेश्यालय में उसकी मुलाकात मंजरी से होती है । वह मंजरी से प्रेम करता है लेकिन इस प्यार का नतीजा यह होता है कि निरंजन और उसकी पत्नी केतकी में दरार आती है ।

निरंजन की पत्नी अनपढ़ है, सीधी-सादी है । निरंजन उस पर संशय लेता है कि वह पटेल के लडके के साथ गुलछरे उड़ाती है । निरंजन को उसके मातृत्व से

भी शिकायत है। उनके छोटे-छोटे बच्चे होने के कारण भी उसकी पत्नी उसका पूरा काम करने में असमर्थ है। वह मानती है कि “यों कहूँ कि उनकी पूरी ड्युट बजाना मेरे लिए संभव नहीं था। बस फिर क्या? दिन भर में बच्चों के झगड़े में जरूर पड़े रहते हैं। उनसे मुक्ति पाने के लिए हम दोनों झगड़ने लगे।”^{३५} निरंजन की पत्नी केतकी हिन्दु नारी है। वह पति को देवता मानती है। उसका विरोध नहीं करती चाहे वह गलत काम क्यों न करे। निरंजन उसे कहता है “मैं जो चाहूँ करूँगा। तुम्हारी कमाई नहीं खाता व्यर्थ बकवास करोगी तो...”^{३६} केतकी विवश है, अपनी विवशता वह इन शब्दों में व्यक्त करती है- “इस दुनिया में नारी कितनी विवश है। पुरुष के साथ वह इसलिए भेजी जाती है कि वह उसे सहारा दे और एक मित्र बने। परन्तु वह... वह क्या चाहता है, मैं आज तक नहीं समझ सकी।”^{३७} स्पष्ट है नारी आर्थिक वजह से पति के साथ बंधी है। वह विवश है। इसी प्रकार मंजरी का पिता भी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण अपनी चार लड़कियों की शादी नहीं कर पाता। फलतः एक जान दे देती है, दूसरी पंजाबी के साथ भाग जाती है, तीसरी नर्स बनकर अजन्म कुंवारी रहने का व्रत लेती है तथा चौथी मंजरी एक साथ साल के बूढ़े के साथ बाँध दी जाती हैं। मंजरी इससे भी समझौता करती है, उसे कोई एतराज नहीं है। वह कहती है- “कितनी मिठास थी उसमें। सखियों के उपालम्भ, गाँव की बुढ़ी माँ-बहनों का प्यार, किसी ने कभी यह नहीं कहा कि बूढ़े से एक जवान बांधी गयी है। बूढ़ियों की मैं हमजोली बन गई। जवानों के लिए काकी, दादी और चाची थी। बूढ़े की पत्नी बुढ़िया न होगी तो क्या? पर इस बुढ़ापे में मैंने जीवन देखा। रात-रात भर अपने खांसते खखारते पति की बड़ी लगन से मैंने सेवा की।”^{३८} बूढ़े पति के साथ भी मंजरी बड़े मजे में रहने लगती है लेकिन भगवान

को उसका यह सुख भी नहीं देखा जाता । तीन महीने के बाद ही उसका पति भगवान को प्यारा हो जाता है । विधवा होने पर भी मंजरी किसी को दोष नहीं देती बल्कि भगवान भक्ति में अपना मन लगाती है । लेकिन एक रात कुछ गुंडे उसे उठाकर वेश्यालय पहुँचा देते हैं । वहाँ मंजरी को गीत गाना, नाचना सब सिखाया जाता है । मंजरी यह करने के लिए तैयार नहीं पर “सबने मार-पीटकर मुझे वेश्या बना दिया और न चाहते हुए, भी मुझे सबकुछ करना पड़ा ।”^{३९} मंजरी यह सब करने के लिए मजबूर है । मंजरी को वेश्या बनाया जाता है । निरंजन मंजरी से कहता है “तुम नहीं जानती मंजरी । यह वेश्याओं का घर है । तुम अब वेश्या हो । तुम्हारा यह शरीर अब तुम्हारे लिए नहीं है । तुम खुद नहीं जान सकती कि इसका मालिक कौन है । वह अब पैसेवालों का हो गया है । जो पैसा देगा, वही मालिक होगा । वह चाहे कोई भी हो ।”^{४०} इन वेश्याओं पर काफी अत्याचार भी किया जाता है । ये अगर बीमार भी हों तो भी उनसे धंधा करवाया जाता है । ‘बीमार शहर’ की जेबुत्रिसा को बुखार होने पर भी उससे धंधा करवाया जाता है । मंजरी कहती है तुम बता क्यों नहीं देती तुम्हें बुखार है । तब वह जवाब देती है- “बताने से क्या होगा, उन्हें तो पैसे चाहिए। ग्राहक भले ही दया कर ले, उनमें दया नहीं है । जरा-सी नाहीं की, कोडा पीठ पर आ पड़ा ।”^{४१} इससे स्पष्ट है कि आर्थिक मजबूरी नारी को कहाँ से कहाँ ले आती है और उन पर कितने अत्याचार होते हैं ।

हम ऊपर कह आये हैं कि विवाह के बिना स्त्री-पुरुष का एकत्रित रहना समाज में मान्य नहीं है । लेकिन ‘बीमार शहर’ उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र विवाह का विरोध करते हैं । इतना ही नहीं तो शारीरिक सम्बन्ध भी रखते हैं । शेखर अविवाहित है । उसके शोभना, सत्या, कल्पना जैसी युवतियों से शारीरिक सम्बन्ध हैं । इन

सम्बन्धों को वह अनुचित नहीं मानता । वह विवाह को कांट्रेक्ट मानते हुए कहता है “मैं विवाह को एक कांट्रेक्ट मान सकता हूँ । सभी अन्य कांट्रेक्ट की तरह वह भी तोड़ा या जोड़ा जा सकता है । लेकिन उसके लिए सामाजिक ढोंग क्यों जरूरी है?”^{४२} निरंजन विवाह को चाभी भरा खिलौना मानता है ।^{४३} मंजरी आदमी को विवाह नाम की संस्था से बंधे हुए कुते मानती है ।^{४४} परन्तु भारतीय यौन जीवन नैतिक मूल्यों पर आधारित है । आर्थिक स्थिति भी उसे काफी हद तक प्रभावित करती है । पर शेखर सेक्स के जिस केंद्रिभूत सत्य को रूपायित करता है वह विस्फाटक है, दिल हिला देने वाला है- “वासना कहाँ नहीं है । प्रेम में भी है, उससे बाहर भी । वह अपने समस्त जीवन तन्तुओं में समाहित है । वासना हो तो हमारी जिंदगी चलती है । हमारे प्राणों में पुलक भरती है ।”^{४५} शेखर के इसी विचार से शोभना भी सहमत है । “हमारे शरीर में अगणित छोटी-छोटी रक्तवाहिनी नलियाँ हैं, जितना तेज रक्त प्रवाह होगा, हमारा यौवन उतना ही प्रस्फुटित होगा । इन नलियों को सदा जागृत रखना जरूरी है । इसलिए विपरीत सेक्स का साहित्य चाहिए । वह न मिले ओ हमारा यौवन असमय ही ढल जाये ।”^{४६} सत्या शादी-शुदा होकर भी शेखर से शारीरिक संबंध रखती है । यह यौवन का आनन्द लुटना चाहती है । “अपने शरीर को मैं पहचानती हूँ और अपने ज्ञानेंद्रीयों के मार्ग में अवरोध नहीं पैदा करना चाहती हूँ ।”^{४७} इस सेक्स व्यापार का कारण बताते हुए डॉ. रामविनोद सिंह ठीक ही कहते हैं कि “सेक्स व्यापार के प्रति बढ़ते हुए आकर्षण का मूल कारण व्यक्ति की आत्मलीन परिस्थितियाँ । इसका दूसरा कारण आर्थिक अभाव भी है । वैभव के व्यक्तिकरण से सामाजिक जीवन में व्यतिक्रम उपस्थित होता है । वैभव एवं जीवन-यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के अभाव में देह व्यापार आवश्यक धर्म हो जाता है । इससे

नारी देह के व्यापार का मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है।^{४८} 'बीमार शहर' में देह व्यापार पैसे के लिए न होकर जिस्म की भूख मिटने के लिए होता है।

उपर्युक्त विवेचन से कहना अनुचित न होगा कि 'बीमार शहर' नामक उपन्यास में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है।

• 'भंगी दरवाजा' उपन्यास में सामाजिकता :

राजेन्द्र अवस्थी कृत 'भंगी दरवाजा' एक राजनैतिक उपन्यास है। इसका सम्यक विवेचन हम राजनैतिक उपन्यासों के अंतर्गत ही करेंगे। लेकिन इसमें कुछ सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी मिलता है, उसका विवेचन करना अनुचित न होगा।

विवेच्य उपन्यास में अवस्थी जी ने पारिवारिक समस्या का चित्रण किया है। श्याम बाबु राजनेता है, लेकिन उनकी और पत्नी की नहीं बनती। वे हर दौरे पर किसी न किसी लडकी को साथ लेकर जाते हैं। हर प्रेस पार्टी में खूबसूरत लडकियाँ होती हैं। उनके बारे में यह कहा जाता है कि उनकी केबिन में हर बार नई संवाददाता लडकी अकेली होती है। इसलिए उनकी पत्नी के मन में यह संदेह है कि वे उन लडकियों से सम्बन्ध रखते हैं। श्याम बाबु और उनकी पत्नी में प्रेम नहीं है। श्यामबाबु और मीनाक्षी कभी प्रेम से नहीं रहे। मीनाक्षी हमेशा उपेक्षा का शिकार रही। श्यामबाबु दिन-रात राजनीति में लगे रहते थे। उन्हें सहायत्री की जरूरत थी वह नहीं मिली।^{४९} श्यामबाबू और उनकी पत्नी के मन में एक-दूसरे के प्रति विश्वास नहीं है। इस सन्दर्भ में श्यामबाबू की बेटी रुपाली कहती है- "आदमी को जीने के लिए एक ही चीज तो चाहिए वह है विश्वास। विश्वास पेड की जड है। विश्वास टूटा तो पेड गिरा। हमारे घर का पेड ऐसे ही तो गिरा है।"^{५०} इसी कारण श्यामबाबु

और उनकी पत्नी में दरार आती है। फिर भी मीनाक्षी श्यामबाबु को छोड़ना नहीं चाहती और उन्हें गालियाँ देकर कहती हैं- 'यहीं रहूँगी और जोंक की तरह खून पीयूँगी।'^{५१} अतः श्यामबाबु परेशान है। दोनों को इसका फल भुगतना पड़ता है। श्यामबाबू घर से बाहर रहते हैं और मीनाक्षी घर में रहकर उन्हें कोसती है। बेमेल विवाह के कारण परिवार में दरार ही नहीं पड़ती तो विघटन भी होता है। प्रस्तुत उपन्यास की रुपाली राजनेता श्यामबाबु की बेटी है। रुपाली का विवाह विनोद से होता है। विनोद आई.ए.एस. की परीक्षा पास करता है। उसका चुनाव होता है। रुपाली किसी अफसर से शादी नहीं करना चाहती लेकिन पिता के आग्रह के कारण वह विनोद से विवाह कर लेती है। विनोद अफसरी प्रवृत्ति का युवक है तो रुपाली कविता शायरी में रुचि रखती है। अतः दोनों की बनती नहीं। विनोद कहता है- "तो फिर किसी लफंगे कवि से शादी करनी थी।" रुपाली भी कहती है "शादी मेरे बाप ने की है। वह भी जो इस देश के विदेश मंत्री है। सारी दुनियाँ उनसे कांपती है।"^{५२} रुपाली कविता या शायरी में रुचि रखती है। अतः उसके मन में नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है, लेकिन विनोद को इन बातों से कोई लगाव नहीं है। विनोद को प्यार में भी रुचि नहीं है। रुपाली उसे बेहद प्यार करना चाहती है लेकिन विनोद कहता है "प्यार-व्यार क्या होता है। उससे मुझे नफरत है।"^{५३} अतः रुपाली और विनोद कुछ दिन दिखावे के लिए साथ रहते हैं। अंत में दोनों में तलाक हो जाता है।

० सीपियों उपन्यास में सामाजिकता :

'सीपियों' राजेन्द्र अवस्थी कृत एक सामाजिक उपन्यास है। विवेच्य उपन्यास में बम्बई जैसे महानगर के चाकचौंध और आकर्षक जीवन के भीतर छिपे दर्द, कुंठा

और संत्रास को तथा फिल्म दीवानी युवतियों की हिरोईन बनने की लालसा को कथ्य के रूप में चित्रित किया गया है। 'सीपियों' के बारे में रज्जन त्रिवेदी का कहना उचित ही है कि- “बम्बइया जीवन की चाकचौंध को विशेषकर फिल्मी क्षेत्रों के प्रभावों को लेखक ने एक सजीव धरातल दिया है। भागते-दौडते क्षण, जो नए जीवन की आशा में हिरोइन बनने की महत्वाकांक्षा में, अपने को सभ्रांत रहने की मनोदशा में उनका विन्यास हुआ है। इन क्षणों की नियामक जबकि वहाँ की स्थितियाँ हैं, उन्हीं के साथ वहाँ की आधुनिकताएँ भी है, जिनके एक हाथ में जिस्म और दूसरे खाली हाथ में पैसे की अकुलाहट है। अवस्थी जी ने ऐसी आधुनिकताओं के जीवन के सम्पूर्णता को, उनकी आन्तरिक चाहत के साथ चित्रित किया है।”^{५४}

विवेच्य उपन्यास में अवस्थी जी ने प्रमुख रूप से नारी समस्या, वेश्या समस्या को चित्रित किया है। बम्बई ऐसा महानगर है जहाँ एक और चकाचौंध भरी जिंदगी है तो दूसरी ओर भूख और फैशनपरस्ती है। प्रस्तुत उपन्यास की कविता, शेफाली, प्रमिला, सबीना फिल्म दिवानी लडकियाँ हैं। फिल्मों में हिरोइन बनने के लिए ये लडकियाँ सब कुछ करने के लिए तैयार हैं। कविता फिल्मों में काम पाने के लिए प्रोड्यूसर के साथ प्यार का नाटक करती है। इतना ही नहीं तो फिल्म डायरेक्टर के साथ सोने के लिए भी तैयार है। शेफाली हिरोइन बनने के लिए स्वीमिंग ड्रेस में लगभग नंगा चित्र लिए घूमती है। वह इससे भी खुला पोज देने के लिए तैयार है। प्रमिला रोज स्टुडीयो के चक्कर काटती है। वह डायरेक्टर से कहती है- “अपना जो फिल्म बनेगा न उसमें इसी माफिक का सीन होगा।” उसने अपना ब्लाउज उतार दिया था और खाली ब्रेसरी पहने एक नये अंदाज में खड़े होकर उसने कहा- “यार, एक फोटो तो ले डालो... साला, हिन्दी का सेंसर इसके आगे नहीं जाने देता,

वरना... जनता देखता प्रमिला को और पर्दे पर पैसे नई, रुपये फेंकता ।”^{५५} इतना ही नहीं तो वह डायरेक्टर के साथ एक कमरे में बंद होकर अपनी शरीर तक सौंपने के लिए तैयार है । लेकिन इन सब लडकियों की स्थिति वेश्या-सी हो जाती है । सबीना भी गेट कीपर के साथ बम्बई आती है । गणपत भी उसे एक हीरो के हवाले करता है । वह कहता है “‘वह फेमस’ गया तो खुब बातें किया हीरो साहब ने, फिर अपनी गाडी पर उसे खंडाला ले गया । पूरे चार दिन उसे वहीं रखा । पांचवे दिन सबीना लौटा तो बेहाल...”^{५६} बाद में आयशा नामक स्त्री उसे वेश्या बना देती है । “‘उसके लिए सेंट्रल में एक अलग कमरा लिया । वहां सबीना एक रानी का माफिक बैठाला गया और फिलिम वाला, वो है न साला, साब... क्या नाम है... पारसी का बच्चा... हीराजी का लौंडा । पाँच हजार में नथ खोला, तो हजार अपना । ...अब सा’ब उसका रेट भी पचास हो गया है ।”^{५७} इस प्रकार इन लडकियों को फिल्मों में काम तो नहीं मिलते बल्कि उनकी जिन्दगी खराब हो जाती है । वेश्याएँ बन जाती हैं ।

अवस्थी जी ने कुछ ऐसी भी लडकियों का चित्रण किया है जो आर्थिक मजबूरी के कारण वेश्या बनती है । शैलू, रिंकी, सलमा, नलिनी इसी कारण वेश्या व्यवसाय करती हैं। सलमा की माँ का देहान्त होने के उपरान्त उसके पिता दूसरी औरत रखते हैं । उसके भी दो बच्चे हैं । सलमा का बाप बूढ़ा और बीमार होने के कारण कमाई भी अच्छी नहीं होती । इसलिए सलमा की सौतेली माँ अपने पति की गैरहाजिरी में अपने पुराने दोस्तों को बुलाती है और उन मर्दों के साथ सलमा को जबरन बिनठाती है । सलमा अपने बूढ़े बाप से शिकायत भी करती है लेकिन आमदनी अच्छी न होने के कारण और सलमा द्वारा पैसे मिलने के कारण वह कुछ

भी नहीं कहता । इसलिए सलमा खुले आम वेश्या-व्यवसाय करने लगती है । रिंकी और शैलु भी अपने बूढ़े माँ-बाप के कारण या घर के लोगों के व्यवहार करने के कारण वेश्याएँ बन जाती हैं । इससे स्पष्ट होता है कि ये लड़कियाँ मजबूरन वेश्या बनती हैं लेकिन इनका दर्द बहुत गहरा है । इस दर्द को अवस्थी जी ने सरस्वती नामक वेश्या द्वारा स्पष्ट किया है- “बातें करते-करते उसने अपना ब्लाउज उठाकर पुरा पेट दिखाया था । कहती थी “यह देखो, यह पत्तेदार और ढीला पेट । पतले टखने और भारी कमर । इन टांगों को देखो, मुड़ती नहीं है, मुड़ती हैं तो चारा काटने की टूटी मशीन की तरह मुर्दा बन जाती हैं ।” आगे चलकर वह कहती है “सा’ब, ये ढीले रतन ! ये आँखे जिनका पानी कब का उतर चुका है । चमक से दूर ये सूखा चेहरा और नदी के कछारों में बनने वाली परतों की तरह हमारे पेट की जानदार परतें, यहीं तो सब कुछ है सा’ब! ये सब मेरी अपनी नहीं है, उन सब औरतों की हैं, जो मेरी तरह है ।”^{५८} इन वेश्याओं के साथ बड़ी बेरहमी से व्यवहार किया जाता है । ये अगर बीमार भी हुईं तो इन पर दया नहीं की जाती । सरस्वती कहती है- “एक दिन १०४ डिग्री बुखार था मुझे । कोई मनचला आ गया तो उसने तब भी मुझसे आराम नहीं करने दिया । जाकर देखा तो कोई पठान था, मुझे धृणा हो गयी । मैंने इतने बुखार में जाने से इंकार कर दिया। मेरी हालत तब भी बेकाबु थी । उसने मेरे गालों पर थप्पड़ मारे और उस पठान से कहकर मेरे बाल खिंचवाये । पठान ने मेरी साड़ी खींची और ब्लाउज फाड़ा और मेरी बेसुधी में मेरे जलते शरीर के साथ शियाना हरकतें कीं ।”^{५९} इससे स्पष्ट है कि वेश्या जीवन कितना दर्दनाक और धिनौना है ।

अवस्थी जी ने कुछ ऐसी लडकियों के जीवन को भी कथ्य रूप में रूपायित किया है जो जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती है। जिन्हें किसी भी प्रकार की मजबूरी नहीं है लेकिन वे अपनी सेक्स की भूख मिटाने के लिये अनेक लोगों से दोस्ती करती हैं या देह व्यापार करती है। इनमें प्रमुख हैं नफीशा और कुलसुम। नफीसा ईसाई लडकी है। उसके घर का वातावरण फ्री है। उसकी माँ पति होने के बावजूद भी अनेक लोगों से शारीरिक सम्बन्ध रखती है। उसकी बहन के भी अनेक बॉय-फ्रेंड हैं। नफीसा भी अनेक दोस्तों से शारीरिक सम्बन्ध रखती है। उसे सेक्स में मजा आता है। कुलसुम पारसी लडकी है। उसका शादी करने का इरादा नहीं है। वह सेक्स की भूख मिटाने के लिए शाही और सुरक्षित स्थान पर जाती है। मैं तो मौज के लिए कभी-कभी आती हूँ। जगह शाही और सुरक्षित है।”^{६०} इसी शाही जगह में कई प्रकार की लडकियाँ आती हैं। “जिनमें से किसी के बाप सेक्रेटरियर में मामुली क्लर्क है। किसी का बाप मिल में मजबूरी करता है और... और ये सब कॉलेज में पढती है, जहाँ फैशन शुरू होते हैं।”^{६१} स्पष्ट है कि ये सारी लडकियाँ फैशन का शौक पुरा करने के लिए देह व्यापार करती हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहना अनुचित न होगा कि अवस्थी जी ने बम्बई जैसे महानगरों में रहने वाली अनेक लडकियों के दर्द भरे जीवन को फिल्म दीवानी लडकियों के जीवन को और फैशनपरस्त जो आगे चलकर वेश्यालय पहुँच जाती हैं, इन वेश्याओं की दर्दभरी दास्तान को कथ्य के रूप में रूपायित किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अवस्थी जी का कथ्य पारिवारिक विघटन और नारी जीवन पर आधारित है। उन्होंने नारी की विवशता और वेश्यालय का विशेष रूप से चित्रण किया है।

० **राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में सामाजिकता के नियामक तत्त्व :**

राजनीतिक उपन्यासों का विवेचन करने के पहले हम राजनीति का संक्षेप में अर्थ और स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक स्थिति पर थाड़ा-सा विवेचन करना उपयुक्त समझते हैं ।

राजनीतिक अंग्रेजी के पोलिटिक्स का हिन्दी अनुवाद है । राजनीतिक शब्द को विभाजीत करे तो- राजा- नीति अलग-अलग दो शब्द मिलते हैं । राजा का अर्थ है शासक और नीति का अर्थ है ले जाना^{६२} जितेंद्र वत्स इसे विस्तृत रूप से इन शब्दों में स्पष्ट करते हैं- “समाज व्यवस्था में अव्यवस्थित उस प्रक्रिया या गतिविधि के रूप में लिया जा रहा है, जिसके द्वारा व्यवस्था के लक्ष्यों का चयन होता है, उन्हें प्राथमिकता के आधार पर स्थायी रूप से तथा साधन विविधानों के सम्बन्ध में सुव्यवस्थित और क्रियान्वित किया जाता है ।”^{६३} तो डॉ. श्यामलाल वर्मा लिखते हैं- “राजनीति, शक्ति और प्रभाव सम्बन्धी वह गत्यात्मक गतिविधि है जिसके द्वारा व्यक्ति या व्यक्ति समूह सहयोग एवं द्वंद्व के माध्यम से अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीतिक संरचनाओं, प्रतिक्रियाओं एवं क्रियाविधियों की औचित्यपूर्ण सत्ता के उपयोग का प्रयास करते हैं ।”^{६४} स्पष्ट है कि मानव या मानव समूह के जरिए सहयोग या संघर्ष के द्वारा सत्ता के उपयोग के लिए प्रयत्नशील गत्यात्मक गतिविधि को राजनीति के नाम से जाना जाता है ।

० **समाज की राजनीति :**

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में ऐसी अनेक घटनाएँ घटित हुई जिसका प्रभाव भारत की राजनीति पर हुआ । स्वतंत्रता के उपरान्त भारत पाकिस्तान विभाजन हुआ जिसमें अनेक लोगों की मृत्यु हुई, स्त्रियों की इज्जत लूटी गयी, रियासतों को नष्ट

किया गया। अंग्रेज तो चले गये लेकिन भारत की सांस्कृतिक, आर्थिक स्थिति को खोखला कर गये। अतः भारत के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हुई। अतः भारत ने वैज्ञानिक ढंग से कार्य करने के लिए पंचशील योजना बनायी जिसमें गरीबी हटाना, कृषि उद्योग बढ़ाना, सिंचाई के साधनों और बिजली की क्षमता को बढ़ाना, यातायात के साधनों को बढ़ाना, भूमिहीनों को भूमि प्रदान करना, वैज्ञानिक तकनीक से विकास को बढ़ावा देना, आवास, स्वास्थ्य और बेरोजगारी की समस्या को दूर करना आदि बातें महत्वपूर्ण थीं। इन योजनाओं पर अमल करना ही था कि १९६२ में चीन ने आक्रमण कर दिया जिसके कारण भारत की व्यवस्था डाँवाडोल हुई और नेहरू जी की छवि धूमिल हुई। इसी वजह से भारतीय नेताओं को यथार्थ का अहसास हुआ, अंतर्राष्ट्रीयता के प्रति मोहभंग भी। इसका समाज व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा।

१९६४ में पं. जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु हुई तो प्रधानमंत्री की बागडोर लालबहादुर शास्त्री ने संभाली। उन्होंने पाकिस्तान से मित्रता स्थापित करने का प्रयास किया लेकिन पाकिस्तान ने विनम्रता का गलत अर्थ लगा लिया। चीन के आक्रमण से भारत संभल भी नहीं पाया था कि १९६५ में पाकिस्तान ने आक्रमण किया। लालबहादुर शास्त्री ने रुस धरती पर ताशकंद समझौता किया और वहीं अपने प्राण अर्पण किये।

शास्त्री जी की मृत्यु के पश्चात् प्रधानमंत्री की कुर्सी पर श्रीमती इंदिरा गांधी विराजमान हुई। उस वक्त शासन और जनता की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। जीवनावश्यक चीजों की कीमते गगन को छू रही थी। रुपये का अवमूल्यन हुआ, युवावर्ग में असंतोष की भावना पैदा हुई, दलितों का झुकाव समाजवाद की ओर बढ़ गया। कांग्रेस का विभाजन हुआ जिसके परिणाम स्वरूप १९६७ के चुनाव में कांग्रेस

को पूर्ण बहुमत न प्राप्त हो सका। अन्य दलों की सहायता से मंत्री-मंडल बना जो ज्यादा दिनों तक कार्यभार नहीं संभाल पाया । इसलिए २७ दिसंबर १९७० को लोकसभा भंग हुई और मध्यावधि चुनाव की घोषणा करनी पड़ी । इस चुनाव में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ ।

१९७१ में पाकिस्तान द्वारा भारत पर दूसरा आक्रमण हुआ । उसका भारत ने मुँह-तोड़ जवाब दिया । इसी काल में भारत ने बंगला को मुक्ति दिलायी, शरणार्थियों को वापसी के लिए शिमला समझौता करना पड़ा । भारत ने भूमि लौटाकर अपने विशाल हृदय का परिपत्र दिया ।

१९७७ में श्रीमती इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की । देश की अन्य पार्टियों में गठबंधन होकर जनता पार्टी का उदय हुआ जिसके अध्यक्ष मोरारजी देसाई बने। इसी काल में कांग्रेस की हार हुई और नये प्रधानमंत्री के रूप में मोरारजी देसाई ने शपथ ग्रहण की । लेकिन सभी पार्टियों की स्वार्थ प्रवृत्ति के कारण सरकार ज्यादा दिनों तक कार्यरत नहीं रह सकी । इसके उपरान्त चरण सिंह प्रधानमंत्री बने किन्तु ये भी छः महीनों से अधिक अपने पद को न संभाल पाये ।

जनवरी १९८० में फिर से कांग्रेस ने चुनाव जीता और प्रधानमंत्री की कुर्सी पर श्रीमती इंदिरा गांधी विराजमान हुई । इसी काल में श्रीमती गांधी ने नारी शिक्षा को बढ़ावा देना, कमजोरो को ऊपर उठाना, लोगों को अधिक सुविधाएँ प्रदान करना जैसे महत्वपूर्ण काम किए । इसी काल में अनेक समस्याएं भी सामने आयीं जिनमें मुख्य हैं- राज्यों को खंडित करना (पंजाब, आसान, गोरखालैंड), स्वर्ण मंदिर आतंकवादियों का केंद्र बना, आतंकवादियों ने अनेक घातक कार्यवाहियां की, सैनिकों की उनके प्रति कार्यवाही और लोगों की सरकार के प्रति प्रतिक्रियाएं । इसी कारण ३१ अक्टूबर, १९८४ को श्रीमती गाँधी की हत्या कर दी गई ।

३१ अक्टूबर १९८४ की शाम राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। दिसंबर में कांग्रेस पार्टी की चुनाव में जीत हुई लेकिन जनता की इच्छापूर्ति न होने के कारण विश्वनाथ प्रताप सिंह के हाथ में देश की बागडोर सौंपी गयी। लेकिन उन्हें भी अन्य पार्टियों के लोगों ने स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण पद से हटा दिया। कांग्रेस समर्थन से चंद्रशेखर प्रधानमंत्री बने लेकिन कुछ दिनों में कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस लिया और मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर दी। इसी काल में राजीव गांधी की हत्या कर दी गयी। चुनाव में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ और नरसिंह राव को प्रधानमंत्री बनाया गया।

इस विवेचन में राजनीतिक पक्षों के घोषणा-पत्र, कार्यक्रम और नीति के सन्दर्भ में विस्तार को टालने के लिए चर्चा नहीं की है। लेकिन ध्यान से पढ़ने पर सही लक्षित होता है कि समय-समय पर राजनीति में परिवर्तन आया है। राजनेताओं ने स्वार्थ सिद्धि के लिए भ्रष्टाचार, दलबदलना इन प्रवृत्तियों को अपनाया। वैसे देखा जाय तो यह प्रवृत्ति १९६७ से ही तीव्र हुई थी जिसमें गुटबंदी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वंशानुगत राजनीति और भ्रष्टराजनेता तथा स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण युवा वर्ग में असंतोष पैदा हुआ तथा उनके मन में यह विश्वास पैदा हुआ कि बिना परिश्रम सब कुछ पाया जा सकता है।

राजनीति में चरित्रहीन राजनेताओं का बोलबाला रहा, उनमें सिद्धान्तवादिता का अभाव था। उनकी कथनी और करनी में अन्तर था। वे मंत्रीपद के लिए झूठे आश्वासन देते रहे लेकिन बाद में अपने सम्बन्धियों का ही उद्धार करते रहे। यह उनकी नैतिकता न होकर चरित्रहीनता बन गयी। इसी कारण जनता में आक्रोश की भावना पैदा हुई। वर्तमान राजनीति पर्यावरण, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रवाद और

जातिवाद के तत्वों का शिकार हुई है । नेता लोग इन्हीं से चुनावों का समर्थन करते हैं ।

० राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में समाज की राजनीतिका आदर्श

राजेन्द्र अवस्थी ने दो ही उपन्यासों में राजनीति का चित्रण किया है । इन उपन्यासों में उन्होंने वर्तमान राजनीति का यथार्थ चित्रण किया है ।

‘मछली बाजार’ अवस्थी द्वारा लिखित एक सामाजिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में सामाजिकता के साथ ही समकालीन राजनीति का भी यथार्थ चित्रण किया गया है । उपन्यास के संदर्भ में आमुख पृष्ठ पर ही लिखा है, कि “राजनीति कर्णधारों की निजी जिंदगी कैसी है, इसके विवरण को यह कृति जुटाती है ।”^{६५} विवेच्य उपन्यास में रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, स्वयं की प्रतिमा ऊपर उठाने के लिए अभिनंदन ग्रंथ तैयार करना, अवसरवादिता और राजनेताओं के झूठे आश्वासनों को उपन्यास का कथ्य बनाया है । उपन्यास का पात्र विक्रमराय वर्तमान राजनीति का प्रतीक है । विक्रमराय के संबंध में प्रमोद भार्गव का कथन उचित लगता है कि “जितने चेहरे आज की राजनीति में हम देखते हैं उन सब में कहीं न कहीं विक्रमराय उपस्थित हैं ।”^{६६} विक्रमराय की जिंदगी अनेक मोड़ लेती है । विक्रमराय सरकारी नौकर था । विदेशी टेंडर में रिश्वत लेता है और कार्यवाही होने से पहले इस्तीफा देकर भीमसेन ट्रस्ट का मैनेजिंग डायरेक्टर बन जाता है। विदेश दौरे पर प्राइवेट सेक्रेटरी से अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करके उसे गर्भवती बना देता है । जब पोल खुल जाती है तो उसकी शादी अपने बेटे से करवाता है । लडके को अपनी पत्नी गर्भवती होने का पता चलता है तो वह आत्महत्या कर लेता है । विक्रमराय के घर के आस-पास पुलिस और सी.आई.डी. पहरा देने लगते हैं । विक्रमराय भी शतरंज का खिलाडी है । वह जानता

है कि जनसेवा से बड़ा सुरक्षा कवच नहीं है। वह राजनीति में प्रवेश करता है, उसी दिन उसकी बहु जहर खाकर आत्महत्या करती है। “उसने गेरुए कपड़े पहनने शुरू कर दिए। दोस्तों के सामने घोषणा की कि इन संदर्भों को बर्दाश्त करने के लिए वह दिन-रात जनता की सेवा करेगा। उसने पार्टी में फूट डाली। सत्ताधारियों से निकटता स्थापित की और एक रिश्ता स्थान से चुनाव लड़ने का निश्चय किया।”^{६७} विक्रमराय चुनाव लड़कर जीत जाता है। वह दूरदर्शी नेता है। उसे पता है कि महीने भर में राजसत्ता में परिवर्तन आने वाला है। इसलिए वह दल-बदल देता है। नए दल में उसे प्रबल स्थान ही नहीं मंत्री पद भी मिलता है। “मंत्री बनते ही सारे भय दूर! गबन का मामला और उसकी फाएलें उसी कुएं के हवाले हो गई जहाँ उसके इकलौते बेटे ने अपनी जान दी थी। सारी राजनीति का केंद्र विक्रमराय बन गया।”^{६८} वर्तमान राजनीति में विक्रमराय जैसे भ्रष्टाचारी, दल बदलने वाले अनेक नेता हैं। उन्हें पता है कि राजनीति में प्रवेश करने पर और मंत्री बनने पर उनका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता।

मंत्री बनने पर विक्रमराय की आर्थिक स्थिति काफी मजबूत हो जाती है। वह फर्जी नामो से बड़े-बड़े ठेके लेता है, गांवों में फैक्ट्री की नींव डालता है और छापखाने की बड़ी-बड़ी मशीनें लगवाता है। विक्रमराय भारतीय राजनीति में शतरंज का खिलाडी है। अपने काले कारनामों पेपर में न छपें इसलिए उदार दृष्टिकोण रखता है, पत्रकारों को खूब पार्टियां देता है। वह जब महत्वपूर्ण सौदे करता है तो सेक्रेटरी के माध्यम से कहलवा देता है कि मंत्रीजी अभी पूजा कर रहे हैं। किसी को टालना हो तो बाथरूम का बहाना बनाता है।

जनता को कैसे बहलाया जाये इसका पता विक्रमराय को है । चुनाव के छः महीने पहले ही विक्रमराय अभिनंदन ग्रंथ निकालने की योजना बनाता है । इस ग्रंथ में विक्रमराय की सेवा और काम का मूल्यांकन करने की योजना होती है । इस ग्रंथ का उद्देश्य यही होता है कि विक्रमराय को प्रतिष्ठा मिले और चुनाव में उसका फायदा हो । चुनाव में उन्हें राज्य का नेतृत्व मिलना चाहिए, वरना इतनी बड़ी जनसेवा बेकार साबित होगी । इस ग्रंथ में विक्रमराय को युग का महान व्यक्ति बताया जाता है, भारतीय राजनीति का अमर नक्षत्र कहा जाता है । लेकिन विक्रमराय की कथनी और करनी में कितना अंतर है इसका पता हमें “सम्मान का प्रत्युत्तर देते हुए कहे गये कथनों से चलता है” वे जनता की सेवा में अपना पुरा जीवन अर्पित कर देंगे । उन्होंने उच्च आदर्शों की बात की ओर बताया कि प्रत्येक जनसेवी का आचरण निर्मल और पवित्र रहना चाहिए । वह गंगा की तरह पवित्र होता है और जनता को मार्ग प्रशस्त करता है ।”^{६९} लेकिन विक्रमराय का जीवन इस कथन से पूरा उल्टा है ।

इससे स्पष्ट है कि राजनीति में शायद ही कोई मरता है । कब किस लंगड़े को टांगे मिल जाए कहा नहीं जा सकता । विक्रमराय जैसे अनेक नेता वर्तमान राजनीति में हैं, जो भ्रष्टाचार, व्यभिचार करके भी जनसेवा, निर्मल आचरण की बातें करते हैं । स्पष्ट है कि लेखक ने विक्रमराय के माध्यम से वर्तमान राजनीति के गंदगी हमारे सामने रखी है ।

‘भंगी दरवाजा’ अवस्थी द्वारा लिखित दूसरा राजनीति उपन्यास है। अवस्थी जी ने इस उपन्यास में वर्तमान राजनीति का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है । विवेच्य उपन्यास में अवस्थी जी ने इस्तेमाल की राजनीति, दल-बदल, जनसेवा के नाम पर निजसेवा, विदेश मंत्री का भ्रष्टाचार, राजनीति की गंदगी, वर्तमान चुनाव पद्धति,

सिद्धान्तहीनता की राजनीति आदि समस्याओं को कथ्य के रूप में रूपायित किया है।

वर्तमान राजनेताओं ने अपने सम्पूर्ण त्याग को वसुलना आरम्भ किया है। उनके चरित्र में गिरावट आई है। वे पदलोलुप और धन के लोभी बन गये हैं। चुनाव में आम जनता के बीच फूट डाल कर, उन्हें झूठे वादों से लुभाने का काम करके वोट हासिल करना चाहते हैं। वे सत्ता में घुसकर निज स्वार्थ देखते हैं। चुनाव में टिकट देते वक्त नारी का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे ही स्वार्थी और छद्म चरित्रवाले नेताओं के क्रियाकलाप का उद्घाटन प्रस्तुत उपन्यास 'भंगी दरवाजा' में हुआ है।

उपर्युक्त सारी विशेषताएँ 'भंगी दरवाजा' नामक उपन्यास के मुख्य पात्र श्यामबाबू और उनकी पार्टी में मिलती है। श्यामबाबू राजनीति में माहिर और पक्के शतरंज के खिलाडी हैं। उनमें वर्तमान राजनेता की सी दूरदृष्टि है। जब मोहनसिंह नामक उम्मीदवार चुनाव में मदद लेने उनके पास आता है तो वे जानते हैं कि इसका फायदा उन्हें बड़े चुनाव में मिलेगा। वे मोहनसिंह को कान मंत्र देते हैं और अनेक राजनीतिक चालें चलते हैं। विरोधी पार्टी का उम्मीदवार मकबुल खां हिन्दु-मुसलमानों को ही नहीं, हिन्दू में भी ब्राह्मण, ठाकुर और राजपूतों में बाँटते हैं तथा मुसलमानों में सिया और सुन्नी का भेद करते हैं। फिर नीची, ऊँची जाति अलग। मोहन सिंह भी श्याम बाबू के कानमंत्र के अनुसार गांव भर को बुलाकर देवी का रथ निकालता है जिसके कारण सभी का मन श्रद्धा से भर आता है और सीता मैदान पर बड़ी संख्या में सभा में उपस्थित होते हैं। श्यामबाबू शतरंज की चाल चलते हैं। वे सभा में हाजिर रहने के बजाय 'हाथ कमांड' के बुलावे का बहाना करके पेट्रोल पम्प के मालिक धकिया से सौदा करते हैं। सीता मैदान पर इकट्ठी जनता की भीड़ और श्यामबाबू की चालें देखकर धकिया चुनाव में मनमाना पेट्रोल देने के लिए तैयार होता है और उसके बदले

में अफीम का एक बोरा सीमा पार ले जाने की इजाजत लेता है । श्यामबाबू उसे कहते हैं “रोज एक बोरा सीमा पार ले जाया करो, दो नहीं । आखिर देखनेवाली आँखें भी होती हैं । उनमें धूल झोंकनी पड़ती है ।” इस प्रकार श्यामबाबू राजनीति के सर्वोच्च प्रतीक के रूप में नजर आते हैं । वे मोहनसिंह वाला चुनाव जीतते हैं । बाद में हिन्दुओं की भीड़ और श्यामबाबू की चालों के कारण मुसलमानों का समर्थन भी उन्हें मिलता है और वे बड़ा चुनाव भी जीतकर विदेशमंत्री भी बन जाते हैं ।

विदेशमंत्री बनकर श्यामबाबू अपनी जेब भरने का काम करते हैं । विदेशों से करार करते वक्त वे सरकारी समझौते पर तभी हस्ताक्षर करते हैं जब उनकी जेब नोटों से भर दी गयी है । वे जनसेवा के नाम पर निजसेवा करते हैं । इस बात को स्वीकारते हुए वे कहते हैं “हम तो जनसेवा के नाम पर निजसेवा करते हैं । वह कुर्सी ही ऐसी होती है, जो पहुँचेगा नारा जनसेवा का देगा करेगा निजसेवा ।”^{७१}

वर्तमान मंत्री महोदय जनता को बरगलाते हैं, उन्हें झूठे कथनों से देश की प्रगति का ब्योरा देते हैं । श्यामबाबू के निकटस्थ महंतजी श्यामबाबू से कहते हैं- “मंत्री के रूप में आते तो आप विकास के आंकड़े गिनवाते, उपलब्धियों के प्रतिशत बनाते । जनता को बरगलाते और साला सरकार देश पर सुनहरी चादर ओढ़ा रही है, यह बात कहते । आश्वासन देते कि फसल बहुत अच्छी हुई है, जैसे सारी जमीन आपकी हथेलियों में फैली है और पानी आपने भाषण भरे शब्दों से गिरता है । कितने बड़े झूठ और फरेब में जनता को रखा जाता है ।”^{७२}

वर्तमान राजनीति गंदगी से भरी हुई है । उसमें न सिद्धान्त है और न जनकल्याण। राजनेता अपने मकसद में कामयाब होने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हैं । चुनावों में मारकाट, लूटपाट, हत्याएँ, रिश्वत आदि सभी बातों का

इस्तेमाल किया जाता है। वर्तमान राजनीति का चित्रण श्यामबाबू इन शब्दों में करते हैं- “आज की राजनीति इतनी घटिया हो गई है, जितना न कहा जाए अच्छा है। पहले बेइमानी होती थी, बहुत कुछ होता था, लेकिन सिद्धान्त की राजनीति थी। नियम, कानून और व्यवस्था बनी हुई थी। अब सब टूट गया है। पूरा देश बिखराव की चपेट में है। आदमी-आदमी के खून से खेलता है। रैगिंग, झूठे वोट, रिश्वत क्या कुछ नहीं हो रहा।”^{७३} चुनाव लड़ने के लिए पार्टी तस्कर, डाकू, दलालों से पैसे इकट्ठा करती है। वे लोग भी फंड के नाम पर ढेर सारे रुपये पार्टी को देते हैं ताकि आगे चलकर उससे दुगुना कमा सके और उन पर कोई मुसीबत न आये। इतना ही नहीं जो राजनीति में इतनी गंदगी है कि चुनाव का टिकट मांगने आयी हुई लड़की का उपयोग अपनी कामवासना मिटाने के लिए किया जाता है और लड़की भी इसका विरोध नहीं करती। नेताजी उस लड़की से कहते हैं- “तुम्हें चुनाव का टिकट चाहिए न! तुम्हारे एरिया से पांच महिलाएँ आ चुकी हैं। एक बात सीख लो राजनीति की दुनिया आसान नहीं है। पहले टिकट चाहिए, फिर चुनाव में मदद और जीत कर आए तो मंत्री या उपमंत्री। ये पद राजा महाराजाओं के पद हैं। यहाँ तक पहुँचने के लिए कई कुर्बानियाँ देनी पड़ती है। धीरे-धीरे अपनी बात वे किए जा रहे थे। लतिका खसक रही थी। धीरे-धीरे खिसककर सीधे पसर गई। नेताजी ने दरवाजा लटका दिया।”^{७४}

राजनीति में एक बार व्यक्ति आ गया तो उससे दूर नहीं रह सकता। श्यामबाबू राजनीति की यथार्थता और नेता की सेवा पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं- “राजनीति में जो आदमी एक बार आ गया समझ लीजिए शहद में डूब गया। हर राजनैतिक कार्यकर्ता होता है, पद पर रहे या न रहे। जनसेवा उसका मूलसूत्र है और देश की भलाई उसका दायित्व है।”^{७५}

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहना अनुचित न होगा कि वर्तमान राजनीति में इतनी गंदगी फैली हुई है कि सरल व्यक्ति उसे जान नहीं पाता । वह टेढ़ी खीर है । उसमें टिकना इतना आसान नहीं । वर्तमान चुनाव में अनेक हथकंडों का उपयोग किया जाता है । बहुत कुछ खोना पड़ता है तभी कुछ पाया जाता है । उसमें हर दिन सौदा होता है। वह बंदर जैसी है क्योंकि उसमें अनेक प्रकार के खेल खेलने पड़ते हैं और सिद्धान्तों को त्याग करना पड़ता है, तभी जाकर आदमी कामयाब होता है ।

अतः साहित्य समाज का दर्पण है । किसी भी कृति में अपने युग की सामाजिक स्थिति प्रतिबिंबित होती है । अपने समय को नकारकर कोई भी कृति महान रचना नहीं बन सकती ।

अवस्थीजी ने अपने उपन्यासों में आदिवासियों तथा महानगरीय लोगों की स्थिति का ममस्पर्शी चित्रण किया है ।

अवस्थी जी के उपन्यासों में दो प्रकार के परिवेश का चित्रण हुआ है । एक आदिवासी जीवन का और दूसरा महानगरीय जीवन का । ‘जाने कितनी आँखें’, ‘जंगल के फूल’ और ‘सूरज किरन की छांव’ में बस्तर जिले के आदिवासीयों की सामाजिक स्थिति का चित्रण किया गया है । ये आदिवासी जंगल के निवासी हैं । इन्हें आधुनिक जीवन की हवा का स्पर्श तक नहीं हुआ है । उनकी अपनी रुढ़ियाँ, सामाजिक मान्यताएँ हैं । वे इन रुढ़ियों से इतने चिपके हुए हैं कि किसी भी हालत में वे रुढ़ियों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं । घोटुल तो इनके जीवन का अभिन्न अंग है । इनकी बहूत-सी जिंदगी घोटुल में व्यतीत होती है । घोटुल के अपने नियम हैं । “गाँव के जवान लडके-लडकियाँ दिनभर कड़ी महेनत करते हैं और शाम को अपनी गिकी (चटाई) समेटकर घोटुल में रवाना होते हैं । लडकियों का सिंगार करना,

घोटुल के रीति-रिवाज चेलिको का घोटुल में आना, वहाँ किस्से कहानियाँ कहना नाच-गाना आदि बातों का बड़े कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है ।

‘मछली बाजार’, ‘दंभी दरवाजा’, ‘बीमार शहर’ और ‘उतरते ज्वार की सीपियाँ’ आदि उपन्यासों में महानगरीय जीवन का परिवेश चित्रित है । मछली बाजार में २० वीं शदी के अंत में उसकी त्रासदी को झेलते हुए टूटते परिवार का चित्रण किया गया है । अवस्थी जी ने ‘शमशेर और इन्दु के माध्यम से समूची पारिवारिक परम्पराओं की विघटनकारी प्रवृत्तियों और जीने की विशेषताओं को उजागर किया है ।

‘भंगी दरवाजा’ उपन्यास में टूटते बिखरते परिवार और राजनीतिक लोगों की घरेलू जिंदगी को यथोचित रूप में चित्रित किया गया है ।

‘बीमार शहर’ में सामाजिक रुढ़ियों के प्रति विरोध दर्शाया है । सामाजिक रीति-रिवाजों के मुताबिक शादी समाज का अटूट बंधन माना गया है, लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में सभी पात्र इस रस्म पर विश्वास नहीं रखते हैं । सामाजिक व्यवहार के कारण एक भोली-भाली लडकी को वेश्या बनना पड़ता है । वह वेश्या किस परिवेश के कारण बनती है इसका हृदयविदारक चित्रण किया गया है

‘उतरते ज्वार की सीपियाँ’ में बम्बई के जीवन की चकाचौंध विशेषकर फिल्मी जीवन के प्रभावों को रूपायित किया गया है । प्रस्तुत उपन्यास में बम्बई के फिल्मी जीवन का और उससे जुड़े हुए युवा-युवतियाँ, बम्बई का जनजीवन, फिल्मी हथकंडे, उसकी भूल-भुलैया के शीशमहल के सपनों को सहानुभूति के आधार पर प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में निरूपित सामाजिक व्यवस्था अन्य उपन्यासों की तुलना में अनन्य है ।

संदर्भ

१. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ३
२. राजेन्द्र अवस्थी का कथा-संसार, डॉ. भाउसाहेब परदेशी, पृ. १८१
३. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. २२
४. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. २२
५. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १८
६. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. २२
७. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १९०-९१
८. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ८७
९. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १७३
१०. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १८४
११. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १६६
१२. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १६७
१३. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ३०
१४. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ८७
१५. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ, पृ. १३
१६. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक, जयश्री बरहाटे, पृ. ४४
१७. राजेन्द्र अवस्थी इक्कीसवीं सदी की दृष्टि, सुरेश नीरव, पृ. ८१
१८. मछली बजार, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ३४, ९-१०, ७८, १००, ९४, १२६, ९८, ९९, ७९, ९४
१९. राजेन्द्र अवस्थी इक्कीसवीं सदी की दृष्टि, सुरेश नीरव, पृ. ८१

२०. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास, राम विनोद सिंह, पृ. २४
२१. बीमार शहर, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ८७, ८८, ८६, ५८, ६९, ६४, ६६-६७, १४९, ३७, १५६, १२३, ८९
२२. आठवे दशक के हिन्दी उपन्यास, रामविनोदसिंह, पृ. २७
२३. भंगी दरवाजा, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ४३, ४९, ५८, ४७, ६६
२४. राजेन्द्र अवस्थी इक्कीसवीं सदी की दृष्टि, सुरेश नीरव, पृ. ६५
२५. सीपियाँ, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ४४, ६५, ६६, ९८, ९९, १८६, १८७
२६. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना, डॉ. जीतेन्द्र वत्स, पृ. १३
२७. डॉ. जीतेन्द्र वत्स, द्वारा उद्धृत, पृ. १३
२८. राजेन्द्र अवस्थी इक्कीसवीं सदी की दृष्टि, सुरेश नीरव, पृ. ८१
२९. मछली बजार, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ११२, १३, १६३
३०. भंगी दरवाजा, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १९, ३३-३४, ७७, ८०, ९३
३१. आँचलिक हिन्दी कहानी, डॉ. चंद्रेश्वर कर्ण, पृ. ११
३२. बृहत हिन्दी कोश, संपा. कालिका प्रसाद, पृ. ५
३३. महुआ आम के जंगल, राजेन्द्र अवस्थी, भूमिका, पृ. ५
३४. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, डॉ. शशिभूषण सिंहल, पृ. ५
३५. हिन्दी साहित्य की नवीन विद्याएँ : कैलाशचन्द्र भाटिया
३६. महुआ आम के जंगल, राजेन्द्र अवस्थी, भूमिका, पृ. ५
३७. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, डॉ. शशिभूषण सिंहल, पृ. ११९
३८. हिन्दी साहित्य की नवीन विद्याएँ, कैलाश चंद्र भाटिया, पृ. ९४
३९. हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. १४१

४०. भारतीय साहित्य कोश, संपा., डॉ. नगेन्द्र, पृ. ८०
४१. हिन्दी साहित्य की नवीन विद्याएँ, डॉ. कैलाश चंद्रभाटिया, पृ. १०४
४२. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ३१, ३०, ३१, ३२, २०२
४३. सूरज किरण की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. २४-२५
४४. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ५०, ५१, ५२
४५. सूरज किरण की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ९१ तथा जंगल के फूल, पृ. २३
४६. राजेन्द्र अवस्थी, जंगल के फूल, पृ. २७
४७. जाने कितनी आंखें, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ११९-१२०
४८. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. २३४-२३५, १२१-१२२, ४९, ९४, ५०
४९. जाने कितनी आंखें, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १६०-१६१
५०. सूरज किरण की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ३६-३७, ३३
५१. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १५३
५२. जाने कितनी आंखें, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ५०-५१, ७१
५३. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ७१, १३, १४, २३, ९७, १२१, १३०
५४. सूरज किरण की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ३०, ३१, ३२, १३०, १३२
५५. जाने कितनी आंखें, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ७, १०, १२, १३, १७, २३, ६०, १०७, ३८
५६. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १५
५७. सूरज किरण की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. २९, ३२, ३७, ३८, ३७
५८. जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १२३-१२४
५९. जाने कितनी आंखें, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. ४१

૬૦. જાને કિતની આંખેં, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૪૨
૬૧. જાને કિતની આંખેં, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૪૪
૬૨. જાને કિતની આંખેં, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૪૭
૬૩. જાને કિતની આંખેં, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૦૨
૬૪. જાને કિતની આંખેં, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૦૮
૬૫. મછલી બાજાર, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૧
૬૬. મછલી બાજાર, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૩
૬૭. મછલી બાજાર, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૨૧
૬૮. મછલી બાજાર, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૨૦
૬૯. મછલી બાજાર, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૪૦
૭૦. ભંગી દરવાજા, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૧૦
૭૧. ભંગી દરવાજા, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૨૦
૭૨. ભંગી દરવાજા, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૪૦
૭૩. ભંગી દરવાજા, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૪૧
૭૪. ભંગી દરવાજા, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૩૮
૭૫. ભંગી દરવાજા, રાજેન્દ્ર અવસ્થી, પૃ. ૧૫૦

छठम अध्याय

राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक स्वरूप एवं उसके प्रमुख नियामक तत्त्व

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न डॉ. राजेन्द्र अवस्थी जी के संपूर्ण उपन्यास सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की देन है। स्वाभाविक है कि रचनाकार अपने जीवन का अधिक समय गोंड आदिवासी समाज में व्यतीत करता है। आदिवासी समाज जीवन के रीत-रिवाज, परम्पराएँ, धार्मिक मान्यताएँ, रुढ़ियाँ इसके उपन्यासों के मुख्य विषय बने हैं। अवस्थी जी ने अपने उपन्यासों में भारतीय आदिम संस्कृति एवं उन संस्कृति के नियामक तत्त्वों पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

◦ ‘सूरज किरन की छाँव’ उपन्यास में चित्रित सांस्कृतिक स्वरूप :

गोंड आदिवासी समाज में अधिकांश धार्मिक संस्कार पर्वों के रूप में समायोजित किए जाते हैं। आलोच्य उपन्यास में गोंड लोगों के नारायण देव की पूजा का उल्लेख ‘जंगल के फूल’ उपन्यास सदृश मिलता है। जिसमें नारायण देव की आराधना के समय सूअर की बलि चढ़ाने की प्रथा दिखाई देती है। बलि देते समय औरतें नाचती-गाती हैं। नारायण देव का प्रसन्न होना गाँव की खुशी होती है। अमूक पर्वों में केवल महिलाएँ ही भाग लेती हैं। मुंडा आदिवासियों में नुका नौरदाना पांडुव का वर्णन करते अवस्थी जी बताते हैं कि “नौरदाना पांडुव के समय गाँव भर की लड़कियाँ रीना गाती हैं। ‘रीना’ मुंडा आदिवासी युवतियों का प्रिय नृत्य है। इसमें केवल महिलाएँ ही भाग लेती हैं। वैसे तो वे पर्व हैं किन्तु आदिवासियों में पर्व और धार्मिकता को इतना अलग नहीं कर सकते जितना हो सकता है। उनके अधिकतर देवी-देवता ग्राम से जुड़े रहते हैं। कभी-कभी पूर्वजों की भी पूजा होती

रहती है । मूल बात तो यह है कि गोंड आदिवासियों में भूत-प्रेत, देवी-देवताओं से भी महत्वपूर्ण हैं । जो काम देवी-देवता नहीं कर सकते, वह भूत कर सकते हैं । जब देव प्रसन्न नहीं होते तो भूत-प्रेतों का सहारा लिया जाता है। आलोच्य उपन्यास में भी चुडैल का वर्णन मिलता है । चुडैल गाँव में आये अफसर के पीछे पडती है, गाँव का ओझा अन्य आदिवासी समाज की भाँति उस पर से चुडैल के प्रभाव को दूर करने के लिए मन्त्र पढता है-

“काली है कंकाली है, टीले वाली है,

गली गाँव की है,

मेरे हाथ बीर भवानी

खडी पास जल देवता रानी

छत थायी छा छा छा छा

कौन लगा बता?

सुखिर्या, अंगिया, बहरी

चैतू, जेदू, सिंगरु, छा छा छा छा ॥”^१

इइ प्रकार से ओझा के मन्त्रादि प्रयासों से अफसर की जान बचती है ।

गोंड और मुंडा आदिवासियों में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं उसके बाद भी ईसाई पादरियों का ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करने का प्रयास चलता रहता है । प्रस्तुत उपन्यास में विलियम का बंजारी नवयुवती से प्रेम प्रदर्शित करना, प्रेम जताते हुए सम्भोग के लिए तैयार करना, उसका विवाह जोसेफ के साथ करना, उसे ईसाई धर्म की शिक्षा-दीक्षा देना एवं उसके मन में हिन्दु धर्म के देवी-देवताओं के प्रति धृणा उत्पन्न करना आदि ऐसे प्रयास हैं, जो बंजारी को बैजो से मिसेस बंजो जोसेफ एक

हिन्दु आदिवासी से एक ईसाई बना देते हैं। चर्च के अस्पताल में पादरी आदिवासियों से ऋण के बदले में संतान लेकर उन्हें ईसाई बनाता है और जिन महिलाओं पर ऋण नहीं होता उनसे बड़े-बड़े बिल देने के लिए कहा जाता है और यदि बिल न दे सकें तो संतान दे दें।

इसके अतिरिक्त अच्छी रोटी-कपड़े एवं व्यवसाय के लोभ में भी आदिवासी ईसाई धर्म ग्रहण करते हुए पाए जाते हैं। इसीलिए एक सभा में राजनीतिक नेता के भाषण देते समय एक आदिवासी उठकर कह देता है- “धरम को क्या हम चाटेगें। पहले हमरा पेट भरो, दो जून हमें खाने को दो, हाथ भर पहनने को कपडा दो, तब धरम की बातें करो। जब पेट में उमेठ पडती है तो धरम चिडिया जैसा फुर्र हो जाता है।”^२

चर्च के स्कूल में हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति धृणा का वातावरण बनाने के लिए मिस्पा कहती, “तुम्हारा किसन भी छलिया था। हजारों गोपियों से उसने आँख लगायी थी, पर सबको रोता बिलखता छोडकर भाग गया था। मेरा बेजल छलिया है पर किसन नहीं। उसने सिर्फ मुझसे प्यार किया था।”^३ महादेव के बारे में मिस्पा कहती है कि, वह भी धोखेबाज है। उसने पार्वती को फजुल तरसाया। पार्वती के वह बड़े गुन गाती, दो-दो जनम उसने शंकर का हाथ गहा। राम के बारे में मिस्पा के ख्याल मिराले थे। वह कहती थी कि राम सच्चे प्रेमी नहीं थे। भिलनी से उन्होंने प्यार किया था, शबरी के झूठे बेर आखिर उन्होंने क्यों खाये? भला कोई पराई औरत को जूठन चाहता है? लक्ष्मन ने सुरपनखा की नाक इसलिए काटी कि वह लक्ष्मन से प्यार करने को तैयार नहीं थी। राम ने ताडका को इसलिए मारा कि वह राम से नफरत करती थी। सीता को वह सती मानने को तैयार नहीं थे। पर इस संबंध

में उसके विचार डगमग होते थे । कभी कहती, “सीता ईसाई जाति की थी, बड़ी अच्छी औरत रही है वह । सब के सामने खुले आम उसने अपना आदमी चुना । जब राम ने दगाबाजी की और रावन उसे अपने घर ले गया, तब वहाँ भी उसने प्रेम दिखाया । एक ईसाई लडकी दुनिया की हर चीज को प्यार करती है । राम का राज हो या रावन की लंका, आखिर सब जगह असल राज ईशु का है ।”^४

एक और स्थल पर गोंड से ईसाई बनी हुई महिला ग्रेसरी गोंडों के ईसाई बनने का कारण श्रीमती बैंजो जोसेफ से बताती हुई कहती है- “पागल हुई हो भाभी । यहाँ सबको ईसाई पैसों के बल पर बनाया जाता है । आदमी के पास पैसे रहें ता कोई ईसाई न बने। यदि ये पैसा देना बन्द कर दें तो लोग ईसाइयत से बदल जायें । जब आदमी का पेट तडपता है और जेब खाली-रहती है तब वह धरम नहीं देखता ।”^५ धर्म परिवर्तन की मूल समस्या आर्थिक असहायता है । अवस्थी जी लिखते हैं- “परन्तु भारतीय नेतागण जब इन ईसाई धर्म प्रचारकों की प्रशंसा करते हैं तो आदिवासियों को इससे कोई प्रसन्नता नहीं मिलती ।”^६

उपर्युक्त उल्लेखित परिवेश के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास के अंतर्गत गोंड आदिवासी समाज के धर्म की पूजा संबंधी विविध पद्धतियों, हिन्दु देवी-देवताओं में विश्वास एवं आस्था, आदिवासियों में भूत-प्रेत एवं चुड़ैल संबंधी विश्वास तथा उनकी निर्धनता ग्रस्थ अवस्था में ईसाई धर्म प्रचारकों ने उन्हें ईसाई बनाने के प्रयास एवं स्थानीय पटेल सदृश नेताओं द्वारा आर्य समाज की स्थापना तथा ईसाई बनने को रोकने के प्रति सजगता का चित्रण पाया जाता है ।

इस प्रकार जनपदीय समाज की भाँति आदिवासी समाज में भी धर्म संबंधी इतर व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है ।

विश्व की सभी संस्कृतियों का जन्म इतिहास के धुंधलके में आदिवासी समाजों से हुआ है। परिणामस्वरूप सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व का संपूर्ण आदिवासी समाज आज भी समृद्ध है। आदिवासी सांस्कृतिक परिधि के अन्तर्गत लोकनृत्य वाद्य, संगीत, गीत, लोकवार्ता एवं श्रृंगार आदि का समावेश किया जाता है। प्रस्तुत आलोच्य उपन्यास में अवस्थी जी ने बस्तर की गोंड आदिवासी संस्कृति को बड़े व्यापक पैमाने पर चित्रित किया है। छोटे-बड़े प्रसंगों या त्यौहारों को वे लोग नाच-गान करके मनाते हैं। आदिवासियों के अधिवेशन के अवसर पर पं. जवाहरलाल नेहरू एवं काका कालेलकर आते हैं और इनके सम्मान में आदिवासी लोग पूर्ण तैयारी के साथ अपने लोकनृत्य-वाद्य एवं संगीत का प्रदर्शन करते हैं। अवस्थी जी बस्तर के आदिवासियों के इस कार्यक्रम को शब्दांकित करते हुए लिखते हैं। अवस्थी जी बस्तर के आदिवासियों के इस कार्यक्रम को शब्दांकित करते हुए लिखते हैं- “सबसे पहले मैदान के आखिरी कोने में खड़े दल ने अपने ढोल जोर-जोर से पीटे। रंग-बिरंगे कपड़े और सिर पर जंगली भैंस के सींग पहने ये बँगा आदिवासी निराले थे। औरतें केवल कमर में लाल कपड़ा लपेटे थीं। जवान-बुढ़ी सभी उमर की औरतें थी वहाँ और सभी की छाती खुली थी। कौड़ियों की माला और पैर में कड़े पहने आदमियों के हाथों में हाथ डाले वह दल आगे बढ़ा। उनके बीच ढोलिये भी थे।”^७

“ढाग ढाग ठी ठी ठिन ठिन

रे है हे तो रे... रे

रे है हे”^८

बीच में किसी ने आवाज लगायी थी:

“तोरे हरे ना ना रे तारे हरे ना ना”^९

सब ने यह दुहराया:

“तोरे हरे ना ना रे तोरे...

पहिले गायब पहिले विनोयब

पहिले आखर गायब दाऊ, चाँद सूरज की सेवा ।

दूसरे आखर गायब दाऊ, धरती भाई की सेवा ।

तीसर आखर गायब दाऊ, ठाकुर देवकी पूजा ।

चवथन आखर गायब दाऊ, काली माई की सेवा ।

पांचव आखर गायब दाऊ, आजी दादी की सेवा ।

छाठव आखर गायब दाऊ, सवालाख बनसपति की सेवा ।”^{१०}

शारदा की टेर के उपरांत सिर पर सींग बाँधकर खड़े हुए पहाड़ी माडिया ढोल

बजा-बजा कर गाना प्रारंभ करते हैं-

“हाट फिट गेला हाट रे दिन हेला

जांग फिटी गेला मां से

रानी कौनो जाने दिन आस्ती

पुरुसोर डेल हेल

सिरलिगा झिरलिंगा राइकेरा झोंडी

खेल बी टोकसा गरी

गाडी बाइल परा बैसनी छैडिबो

कतल होइबी उबा करी ।”^{११}

सामने का ठंठहार (एक नृत्य जो माध महीने में नाच जाता है) हो रहा था ।

बाबू में चाबरी (एक नृत्य जो चैत में नाचा जाता है) पीछे औरतें डमकट (विवाह

के समय नाचा जाने वाला बस्तर की महिलाओं का नाच) नाच रही थीं। दूसरे कोने में उमेड सटको, डंडा और दरदरी हो रहे थे । इन सबको चीरता हुआ औरत और मरदों का एक दल पूरब से आगे बढ़ा जैसे पानी भरे बादलों की सेना आगे बढ़ती है । ढोलकिये ने एक ऊँची उचाट, भरी । औरतें झुक गयीं । एक औरत के पीछे एक आदमी खड़ा हो गया । इस तरह सारा दल बंट गया। एक झुकी औरत उसके पीछे एक खड़ा आदमी, बीच में मादर और ढोल पर ढोलकिये ने हाथ पीट कर तान दी-

“ओ हो हो चल

दूसरे ने आवाज मिलायी:

चल चल रे चल

चल चल भइया हाय

चल चल भोर बियासी के नागर

हो कसई मजा के,

हो कसई मजा के भीर बियासी के नागर ।”^{१२}

सारा दल एक गोल दायरे में घूमने लगा, जैसे वहाँ सचमुच छतीसगढ़ के किसान धान जोत रहे हैं:

“हरियर हरियर देखिये धान

चिनउर, बडकोनी, गुर्मटिया, अजान

तरि नारी भइया मोर तरि नारी नाना

हो ही जी खेती एसों सोला आना ।”^{१३}

नाच ने सारे लोगों का ध्यान खींच लिया था । चारों ओर शान्ति थी । इत्ते

लोग, पर हल्ला-गुल्ला का नाम नहीं । नाच की गति धीरे-धीरे कम होने लगी, तो दूसरा दल मैदान में था ।

“धा धिन धा गातिन
ता तिन धा गा धिन”

सारे लोगों ने ताली पीट दी । एक ओर से आवाज उठी, ‘जियो संथाली शेर’
उन शेरों ने धूम मचा दी:

“हाताब सोराज दाराय राम राज
जो गाव में, दडियेन कोवाक मायम
से ताक् सोहान, हुसनक् हेडोन
पांजायमें गांधी बाबावक् ताडाम्
ओतोल, बोतोल बियेल बायोल
हिपिउ में पेरोड पाताका सोहान
जेल माया मगारा ओडाक, दाराहारा
जाउगयनी बुडवी नालोम ।”^{१४}

वर्षाऋतु में पटेल के घर पर बहुत से गीत गाते हुए पुरुष देखे जा सकते हैं ।

“धुमडि रहे चार खुंट कारे चादर,
धुमडि रहे ।

कौन पटि गरजे, कौन पाट घुमड,
कौन पटि बदला चुहाय ।”^{१५}

जनसंख्या की दृष्टि से गोंड मध्यप्रदेश की ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारत की

सबसे बड़ी आदिवासी जाति है । यही मध्यप्रदेश की गोंड आदिवासी जाति को केन्द्र में रखकर अवस्थी जी ने जो सांस्कृतिक परिवेश उभारा है वह केवल गोंड आदिवासियों की संस्कृति का परिचय नहीं वरन् संपूर्ण विश्व की आदिवासी संस्कृति का वर्णन है ।

संस्कृति निरूपण में अवस्थी जी के उपन्यासों में वे गुण मौजूद हैं जो इस तत्व की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं । उनके संवादों में भावात्मकता, मनोवैज्ञानिकता, पात्रानुकूलता, संक्षिप्तता तथा स्वाभाविकता आदि गुण हैं । उनके संवादों से एक ओर कथा को बढ़ावा मिलता है, तो दूसरी ओर पात्रों के बीते जीवन का पता चलता है ।

सांस्कृतिक भावात्मकता उपन्यास को प्रभावशाली बना देती है । प्यार की गहराईयों में खोये हुए दो पात्रों में किसी एक से अनहोनी हो जाय और वह अनुचित बात सोचने लगे तो ऐसे समय में दूसरा पात्र उसे समझाता हैं तथा जीवनभर उसका साथ निभाने का वादा करता है । “प्यार एक वरदान है । वह देवता के मंदिर का एक ऐसा अनोखा प्रसाद है, जो साधक को ही मिलता है । वह प्रसाद पाना सब की बिसात नहीं ।”^{१६}

सांस्कृतिक उपन्यास के संवाद पात्रों के हृदय में व्याप्त भावों और उनके संबंधों को व्यक्त करते हैं । स्वयं अपने भाव व्यक्त न करके दूसरे के भाव व्यक्त करने में भी संवेदना को झकझोरते हैं- “कंगला अब भी तेरी याद नहीं भूला । दिन भर रोता रहता हैं । कहता है- बंजारी ने धोखा दिया है तो जिन्दगी क़ारी बिता दूँगा ।”^{१७}

सांस्कृतिक उपन्यास के संवादों में पात्रानुकूलता उपन्यास को प्रभावोत्पादक बना देती है । अवस्थी जी के उपन्यासों में पात्रानुकूल भाषा के साथ-साथ लेखक ने संवादों को इस ढंग से प्रस्तुत किया है, जिससे पात्र के विगत जीवन का परिचय

भी मिल सके । परिस्थिति का निर्माण क्यों हुआ? उसका ब्यौरा देती बंजारी कहती है- “मेरा गाँव में रहना मुश्किल था । शरम के मारे मैं अपने आप गडी जा रही थी । कंगला का पेट होता तो, तो चिन्ता नहीं थी। पिछले सात सिंदीराम की छोटी लडकी का भी पेट आ गया । उसका भूल विवाह हो गया था ।”^{१८}

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अवस्थी जी के उपन्यासों में संस्कृति का बहुत ही स्वाभाविक रूप लक्षित किया जा सकता है । संवाद पात्रानुकूल, मार्मिक, छोटे और प्रवाहपूर्ण है । संवादों से पात्रों की मनः स्थिति और विगत जीवन का परिचय प्राप्त होता है साथ ही साथ संवादों में वाक्पटुता भी है । संवादों से स्थितियों की जीवन्तता दिखाई देती है ।

आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों के रचना-विधान के पीछे क्या केवल अछूते वनांचलों की अनुभव यात्रा कर उन वनांचलों की भौगोलिक एवं प्राकृतिक रूप छवियों से साक्षात्कार कराना है? या वहाँ की गरीबी, अशिक्षा, अन्ध-विश्वास, शोषण, रुढ़िग्रस्तता आदि समस्या और प्रश्नों से धिरी जिन्दगी की एक पहचान उभारनी है? ये सब प्रश्न वनांचल उपन्यास की रचना दृष्टि से गहरा सरोकार रखते हैं । दरअसल किसी भी कलाकृति के निश्चित उद्देश्य को पहचानना बड़ा कठिन होता है । वैसे तो कलाकृति एक जीवधारी प्राणी की तरह संश्लिष्ट रचना होती है । उसके विभिन्न आवयविक तत्वों में यह उद्देश्य या दृष्टि छिपी रहती है । मानवीय शरीर में रक्त की भाँति वह उपन्यास के घटना पात्र और परिवेश आदि तत्वों के पारस्परिक संग्रथन में पर्यवसित रहती है ।

आलोच्य उपन्यास अवस्थी जी का बहुउद्देशीय उपन्यास है । उन्होने आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास साहित्य में आदिवासी समाज, उनकी संस्कृति, परम्परा,

रुढियों, मान्यताएँ आदि को उजागर किया है। उनके अन्य कथा साहित्य के उद्देश्य में भी भिन्नता लक्षित होती है। महानगरीय जीवन और उसकी त्रासदी, वेश्या जीवन, वर्तमान उच्छृंखल समाज, टूटते परिवार, फिल्मी चमक-दमक, फिल्मी हथकंडे, वर्तमान घटिया राजनीति और उसके दुष्परिणाम कलाकार के जीवन की त्रासदी आदि को रूबरू कराने और जीवन यथार्थ के कलात्मक निरूपण के उद्देश्य से लिखा गया उनका कथा साहित्य पाठकों को आनंद देता है साथ ही उनके ये अनुभव विश्व को समृद्ध बनाते हैं। अवस्थी के कथा साहित्य में आदिवासी तथा महानगरीय जीवन-यथार्थ के अनेकानेक पहलु, कथाकार की नूतन दृष्टि, सुगठित शिल्प एवं बहुविध भाषा का स्पर्श पाकर सजीव हो उठे हैं।

अतः 'सूरज किरन की छाँव' उपन्यास संस्कृतिक दृष्टि से अनन्य है।

० 'जंगल के फूल' उपन्यास में चित्रित सांस्कृतिक स्वरूप :

साहित्य एवं समाज की भाँति साहित्य तथा संस्कृति का संबंध सनातन एवं अटूट है। साहित्य और संस्कृति का संबंध स्पष्ट करते हुए विमल शंकर नागर लिखते हैं- "साहित्य के निर्माण में युगीन संस्कृति मूलभूत पदार्थ का स्थान ग्रहण करती है एवं संस्कृति के निर्माण में साहित्य प्रेरक, संचालन एवं संरक्षक की भूमिका सम्पन्न करता है। जिस प्रकार किसी वस्तु के निर्माण हेतु कच्चे पदार्थ की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार साहित्य के निर्माण में साहित्यकार को युगीन संस्कृति से मूलभूत आधार सामग्री प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। साहित्यकार समाज की विशिष्ट आशाओं, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, जीवन पद्धतियों एवं कार्यप्रणालियों, मूल्यों, विचारों, भावों, आदतों आदि को अपनी सारग्राही एवं पैनी दृष्टि से ग्रहण कर सार्थक एवं आकर्षक शब्द विधान से कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसी प्रक्रिया

के मध्य साहित्यकार का जीवन-दर्शन युगीन पाठकों एवं रसिकों के भाव-जगत को प्रभावित करता हुआ एक और संस्कृति के विकास में योगदान प्रदान करता है, तो दूसरी ओर उसे लिपिबद्ध करता हुआ समकालीन संस्कृति को अक्षुण्ण भी बना देता है। इस प्रकार साहित्य संस्कृति का संरक्षक है और संस्कृति साहित्य की नियामक शक्ति बन जाती है।”^{१९}

भारतीय आदिवासी समाज में लोक संस्कृति के विविध उपादान अत्यन्त विकसित अवस्था में पाए जाते हैं। ये उपादान हैं- विविध प्रकार के लोक गीत, लोककथाएँ, लोकनृत्य, लोकोक्तियाँ। आदिवासियों के लोकगीत एवं लोकनृत्य की समृद्धता भारत के सर्वाधिक विकसित आधुनिक कलाकारों को भी प्रेरणा एवं वैभव प्रदान कर सकती है। ऐसी सशक्त भारतीय आदिवासी लोक-संस्कृति के दर्शन हमें आदिवासी जीवन केन्द्रीत साहित्य में होते हैं।

बस्तर के गोंड आदिवासियों की आन्तरिक संवेदनाओं के तंतुओं से निर्मित ‘जंगल के फूल’ उपन्यास वहाँ के विभिन्न लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, त्यौहार आदि के माध्यम से वहाँ के आदिवासी सांस्कृतिक व्यक्तित्व की झांकी कराता है।

लोकगीत: आदिवासियों की परम्परा में लोकनृत्य, लोकगीत एवं लोकवार्ताओं का बड़ा महत्व है। लोकगीतों के द्वारा आदिवासियों का उल्लास प्रकट होता है। अवस्थी जी ‘जंगल के फूल’ उपन्यास के प्रारंभ में गोंड आदिवासियों का लोकगीत प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं “सू रर्रर्रर्र की भर्राई आवाज जंगली भैसों के सींगों के बाजे से निकली, और ढोल के धर्राये सुरों के साथ मिलकर गाँव भर में फैल गई।

रे रे रेलो रे रेलो रे,

रेलो रे रे रे रेला रे ए ए ए!”^{२०}

आदिवासियों में सामुहिक नाच-गाने का आयोजन भी होता है। जिसमें एक तरफ से पुरुष और दूसरी तरफ से औरतें नाचने-गाने लगती हैं। कभी पुरुष और स्त्रियाँ एक हो जाते हैं, तो कभी फिर अलग हो जाते हैं। स्त्रियाँ स्वर और ताल पर गाती हुई प्रश्न करती तो पुरुष उत्तर देते हैं। गीतों द्वारा पुरुष प्रश्न करते हैं तो स्त्रियाँ उत्तर देती हैं। लांदा ने तीन पीपे मैदान में खोल दिए। तेंदू के पतों के दोनों लेकर जितना चाहा, पिया। आखिर में पीने वाला था ढोलिया। पीते ही उसने उचाट भरी और ढोल पर थाप दी। अन्दर से सिहरती आवाज निकली- ठट्ठा, ठट्ठा, ठट्ठा। टेंडुर निसान और किकिर भी बज उठे और जैसे ही बाँसुरी के सुरों ने हवा में लहराते झोंको को पकड़ा वह औरतों और मर्दों की टोली झूम उठी। सुलकसाए ने बीच में कूदकर तान छेड़ी। महुआ ने सबसे पहले उसका जवाब दिया, और इस धुन के साथ ही धीरे-धीरे गीत सरका:

“धन रे अंगरिजबाडड

तोरी अक्कल भारी रे,

रे रे रेलो रे रेलो रे।

अघरे, चलाय रिलगारी, हो

रिलगारी, रे ड ड ड ॥”^{२१}

बस्तर जिले के गोंड आदिवासियों में ‘घोटुल गीत’ अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है। घोटुल में गोंड पुरुष और महिलाएँ मिलकर गाना गाते हैं। कभी अपने गाँव के बाहर का कोई मेहमान हो तो उनके स्वागत में स्वागत गीत गाया जाता है। “जंगल के फूल” में अंग्रेज अफसर के स्वागत में गोंड आदिवासियों द्वारा स्वागत गीत गाया गया है: “किसने पहले गला खोला, कोई नहीं जानता। सभी स्वर शायद

साथ निकले थे:

तैना नामुर ना मुर रे ना रे ना ना

तुभी नाका जोडा डोंगा, हामी ना कुन्दे खडक सरकार चो ।

रैयत के दंड पहली दरभा ठाना चो सडक ।

हो तो ना ना मुरडड ॥”^{२२}

प्रस्तुत उपन्यास में कन्या विदाई के गीत भी प्रचुर मात्रा में पढ़े जाते हैं, जो गोंड आदिवासियों की अपनी परम्परागत सांस्कृतिक विरासत को पाठक के सामने पेश करते हैं-

“रे रेलो रे रेलो रे रेलो ।

नियारा मनदाना लोनी रोय हेलो

लोनी गाजुर हिन्दु रोय हेलो ।”^{२३}

शादी, घोडुल, स्वागत, शिकार एवम् कन्या विदाई गीतों के अलावा कुछ मृत्यु गीत भी गोंड आदिवासी समाज में प्रचलित हैं । व्यक्ति की मृत्यु के तुरन्त बाद ही आसपास की औरतें एकट्ठी होकर गीत गाने लगती हैं-

“चोले दादरो रेलो, अड़, अड़, अड़ ।

ओरु बोरु राजाल रे ए ए ए ।”^{२४}

जहाँ मृतक को दफनाया जाता है, वहाँ थोड़े दिनों के बाद मृतक की याद में एक पत्थर लगाया जाता है । पत्थर लगाते समय गोंड आदिवासी लोग मृतक के कारनामों को याद करके गीत गाते हैं-

“सोरा धारु धरती रोए देवता

नव खण्डू पीरथील एले

सिंगार भालोर दिपू रोए देवता

दगाल हाय वालो र एले ।”^{२५}

इसी प्रकार ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में उपर्युक्त लोकगीतों के अलावा भी कुछ अन्य आदिवासी गीतों का प्रस्तुतीकरण हुआ है, जो गोंड आदिवासियों की सांस्कृतिक विरासत को कायम रखने के प्रतीक हैं ।

लोकनृत्य: बस्तर का जन-जीवन, जंगल, जानवर, जनजाति जितने आकर्षक और लुभावने हैं उससे कहीं अधिक मोहक और आकर्षक उनका नृत्य है । बस्तर के गोंड आदिवासी नृत्य के समय अपने आपको कोई विशेष अन्दाज में प्रस्तुत करते हैं । सिर पर गोर के सींग और उन पर वन्य पक्षियों के रंग बिरंगे पंखों के तुरें जैसी “कलंगी” आँखों के सामने झूलते हुए कौडियों की झालर वाला चेहरा अपनी सभी खूबसूरती के साथ अपने नृत्य से दूसरों को भी थिरका देता है । अवस्थी जी गोंड आदिवासियों के नृत्य संबंध में लिखते हैं- “पर एनदाना देखते-देखते शायद वह अपने को भूल चुका था । अपने पैरों में समाई अतीत की झंकार, पहाड़ी झरने की तरह निकल पड़ी थी । नाचते-कूदते वह अफसर के सामने तक आ गया, तो अफसर तो एकदम हँसी आ गई । वह जोर से अपने आप हँस पड़ा और उठकर खड़ा हो गया । उसके शरीर में एक अजीब गरमी आ गई थी। यदि उसे थोड़ा भी नाच आता होता या इनकी जिन्दगी से जरा भी अभ्यस्त होता तो शायद खुद मैदान में कूद पड़ता । वैसे उसके पैरों में थिरकन बराबर देखी जा सकती थी। कट्टुल पर बैठी रहना उसके लिए जैसे मुश्किल हो रहा था । वह दाया पैर उपर उठाता। उसे भी फिर जमीन पर दे मारता ।”^{२६}

गोंड आदिवासी लोगों के नृत्य अक्सर अजीब होते हैं। नृत्य की गति वाद्ययंत्रों के साथ-साथ होती है। उनका नृत्य घेरा बनाकर होता है। औरतें और पुरुष एक दूसरे के हाथ की जोड़ी बनाकर चारों ओर घेरा बनाकर नृत्य करते हैं। ढोलकिये उस घेरे के बीच में होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास उसका उदाहरण है- “देखते-देखते वहाँ नाच-गाने का खासा मजमा जम गया। मजमें में जब सब खो गए तो सुलकसाए ने गले से ढोल का फंदा निकालकर फगरु के गले में डाल दिया। फगरु के नंगे हाथ ढोल के चमड़े पर थाप देने लगे। सुलकसाए ने आगे बढ़कर महुआ की कमर पकड़ ली। वह प्यार के दर्द से चीख उठी। बाँस की जवान टहनी की तरह उसने अपनी कमर को लचकाया और गले को झटका देकर छाती सामने तान दी। सुलकसाए ने भी वही किया। वह देखकर दस-पाँच और जोड़े मैदान में उतर पड़े। गाँव के अधेड़ औरतें-मर्द भी पीछे न रहे। बूढ़े-बूढ़ियों की आँखें इन्हें देखने में खो गई।”^{२७}

गोंड आदिवासी नृत्य पर टिप्पणी करते हुए रामदरश मिश्र लिखते हैं- “पेट का जुगाड़ कर लेने के बाद तो छककर लांदा पीना और मस्ती में नाचना-गाना वही उनकी जिन्दगी है। कोई पर्व या त्यौहार हो या किसी अतिथि का आगमन, किसी देवता की पूजा हो या किसी का ब्याह, हर आयोजन की परिणति नृत्य और गीतों से ही होती है।”^{२८}

लोक-कथाएँ: लोकगीत, लोकनृत्य के अतिरिक्त लोककथाएँ भी आदिवासी समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की संवाहक हैं। हिन्दी के आदिवासी जीवन संबंधी उपन्यास साहित्य में आदिवासी समाज की विविध लोककथाओं का प्रयोग मिलता है। गोंड आदिवासियों का विश्वास है कि जादू-टोना उसकी विरासत

है और पृथ्वी पर इस विधा को सर्वप्रथम लाने का श्रेय गोंड लोगों को ही है । पृथ्वी पर जादू-टोना लाने के सम्बन्ध में 'जंगल के फूल' उपन्यास में एक मुण्डा की माँ एक लोककथा सुनाती है- “हमारा देवता नन्दराज जादू-टोनों का स्वामी है । दुनिया भर की सारी तांत्रिक विधाएँ उसे आती हैं । एक दिन सारे-के-सारे देवता नन्दराज गुरु के पास जादू सीख गये । तब हमारे इसी गाँव का एक चेलिक उसी जंगल में जड़ खोल रहा था । उसने अजानी जगहों से कुछ आवाजें सुनीं । उसने चारों ओर देखा । उसे आवाज तो बराबर सुनाई दे रही थी, पर कहीं कोई दिखाई नहीं देता था । वह रोज ये आवाजें सुनता रहा । कहते हैं, नन्दराज गुरु अपने चेलों को जादू इसी जंगल में सिखाया करते थे । जब सारे देवता और मृतक जादू सीख चुके तो नन्दराज ने अन्तिम दिन इस जंगल में एक समारोह मनाया और उसने मुर्गी तथा अंडे अपने देवता को भेंट किए । उस प्रसाद को गुरु ने सात हिस्सों में बाँटा, क्योंकि सीखने वाले चले सात थे । पर उसने देखा कि सात हिस्से आठ हिस्सों में बट गए हैं । नन्दराज ने सबको बुलाया और कहा 'जाओ, सारा जंगल खोजो, कहीं-न-कहीं कोई भूत, जानवर या मृत्युलोक का आदमी छीपा है । उसने हमारी विद्या सीख ली है । उसे ढूँढो । सातों चले खोजने निकल पडे । उन्हें एक झाड़ की डाल पर यही चेलिक बैठा मिला । उसे पकड़कर वे गुरु के पास ले गए । गुरु नन्दराज ने उस आदमी से कहा- 'देखो, यहाँ सब देवता ही हैं । तु ही एक आदमी है, जिसने हमारा जादू सीख लिया है । यह तूने बड़ी गलती की है, और यही अब तू हमें कुछ भेंट नहीं देगा तो तेरा सारा परिवार नष्ट हो जाएगा ।' उसने जब भेंट के बारे में पूछा तो नन्दराज ने उसके इकलौते लडके की बलि माँगी । नन्दराज नहीं चाहते थे कि पृथ्वीतल का कोई वासी यह विद्या सीखे । इस तरह की माँग करने से वह

हिम्मत हार जाएगा और मुक्ति की प्रार्थना करेगा । नंदराज को यह भी भय था कि वह दुनिया में जासू का उपयोग करेगा, जिससे कहाँ मृत्यु नहीं होगी और दुनिया में सारे कष्ट नष्ट हो जाएँगे और जब आदमी ही नहीं मरेगे तो देवता शासन किन पर करेंगे? पर चेलिक इस अमूल्य विद्या के लिए अड गया था । उसने अपने इकलौते लडके की भी बलि दे दी । नन्दराज ने उस लडके का कलेजा सातों देवताओं और उस चेलिक को प्रसाद के रूप में बाँट दिया । चेलिक ने जैसे ही उसे खाया, वह सारे भूत-प्रेतों और जादू-टोनों का स्वामी हो गया । इसी चेलिक की हम सब सन्तान है । सारी दुनिया में सबसे पहले जादू हमने सीखा है ।”^{२९}

इस प्रकार गोंड आदिवासियों में लोककथाएँ, जादू-टोना, शकु-अपशकुन आदि प्रचलित हाते हैं ।

त्यौहार: गोंड आदिवासियों के पर्व तथा त्यौहार वर्षभर मनाये जाते हैं । शायद ही कोई माह किसी उत्सव या पर्व के बिना रहता है । कभी देवता का त्यौहार होता है तो कभी अन्न या धरती अथवा कभी वर्षा की आकांक्षा से त्यौहार मनाये जाते हैं । कभी-कभी अच्छी फसल की खुशी में, कभी नयी फसल की खुशी में, कभी नयी फसल के आने पर उत्सव मनाया जाता है । सभी पर्व-त्यौहार मनाने का ढंग लगभग एक जैसा है। सभी पर्वों में जानवरों या पक्षियों की बलि दी जाती है । लगभग सभी त्यौहारों में नृत्य और गीत का आयोजन होता है ।

‘जंगल के फूल’ उपन्यास में कोरता पाण्डुम, कारा मरेगा, काश पाण्डुम, दीवारी आदि त्यौहारों का वर्णन विस्तार से किया गया है । कोरता पाण्डुम गोंड आदिवासियों का विशेष त्यौहार है । दशहरा के आसपास बोया गया धान या काला धान पकना शुरू होता है । गाँव के जिस व्यक्ति का धान पहले पकना शुरू होता

है वह गाँव के गांयता को इसकी सूचना देता है । सूचना के बाद धान के लिए गायता और गुनिया मिलकर “माना बुझा” करते हैं । जिस पहले व्यक्ति का धान पक गया होता है, वह कुछ धान गायता के यहाँ लाता है । इस धान और पकने वाले सभी धानों की कुशलता के लिए ‘माना बुझा’ के माध्यम से प्रार्थना की जाती है और ईश्वर की कृपा के लिये उसकी अर्चना की जाती है। अवस्था जी लिखते हैं- “कोरता पाण्डुम का परब आया । कोरता पाण्डुम की रात नाच-गाने की होती है । जवान जोड़ों को तब अपने मन की साध पूरी करने का समय मिलता है ।”^{३०}

आदिवासी श्रृंगार एवं कौशल: गुँदना: आदिवासी महिलाएँ आभूषणों के अतिरिक्त शरीर को अलंकृत करने के लिए शरीर पर कलात्मक चित्र बनवाती है । गुँदना का आदिवासी समाज में अपना एक विशिष्ट महत्व है । गुदने का काम ओझा जाति के लोग करते हैं । ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में अवस्थी जी लिखते हैं- “ओझा पीतल की एक लम्बी सुई दीये में रखे काले पदार्थ में डुबोती और लडकी की जांध में घुसेड देता । वह जोर से चिल्ला उठती, ‘ऊ इ इ इ मा ड ड ड ।’”^{३१}

गुँदना सौंदर्य-वृद्धि का तो एक विशिष्ट साधन माना ही गया है, लेकिन इसके साथ कई पुरातन मान्यताएँ, लोकविश्वास, कुलदेवी-देवता, प्रतीक आदि भी इससे संबद्ध हैं । मछली, साँप, सूर्य, चंद्र आदि चित्र उनके शरीर पर गोद दिये जाते हैं । जंगल में निवास करने वाले आदिवासी लोग अपनी जीवन रक्षा के लिए जिन देवी-देवताओं का स्मरण करते हैं, उन्हीं का चित्र मुख्य रूप से गोदने में किया जाता है । “मत रो बेटी, ये गुँदने तेरी सुन्दर में चार चाँद लगा देंगे । तुझे अच्छे से अच्छा प्रीतम मिलेगा । दुनियाभर के चेलिक तुझे प्यार करेंगे, पर तू उनमें से संभलकर चुनाव करना । और मरने के बाद यही गुँदने तुझे नरक की यातना से बचाएँगे । तब देवता तेरी छाती में भाला नहीं घुसेडेगा ।”^{३२}

गोंड आदिवासी लोग अधिक से अधिक निखरी सुन्दरता इसे कहते हैं, जिसके शरीर पर अधिक से अधिक गोंदने के निशान होते हैं । जिस युवती के शरीर को अधिक गोंडा जाय वही युवती अधिक-से-अधिक सुन्दर समझी जाती है । “शरीर गुँदना जरूरी है। जिसकी देह में जितने ज्यादा गुँदने होंगे, वह उतनी ही सुन्दर होगी ।”^{३३}

मुख्यतः गुँदना काले या गहरे नीले रंग का विवाह के पूर्व किया जाता है । पति गृह में विभाजन वाला गुदना दोनों परिवारों के बीच भावनाओं का प्रतीक माना जाता है ।

“ओझा री, मेरी छाती में मछरी बना दे न ।”

‘नहीं बेटा, वहाँ शहद की मक्खी की छत्ता बनवा ।’

‘नहीं मां, छत्ता नहीं बनवाऊँगी, वह मछरी जो नदी के पानी से अनोखा प्यार करती है । वह मुझे बेहद पसंद है ।

‘नहीं मां, छत्ता नहीं बनवाऊँगी, मछरी बनवाऊँगी, वह मछरी जो नदी के पानी से अनोखा प्यार करती है । वह मुझे बेहद पसंद है ।

‘अच्छा वही सही ।’

और ओझा स्त्री उसकी जांघ छोड़कर छाती पर मछली बनाने लगती है ।’

गोंदने के संदर्भ में पी.आर.नायडु लिखते हैं- “जिन आदिवासी स्त्रियों के शरीर पर गुँदना नहीं होता उन्हें अच्छा नहीं माना जाता । शरीर में विभिन्न स्थलों में गोंदने गुँदवाने की उनकी अपनी मान्यताएँ हैं । एक मान्यता व्याधाओं से बचने संबंधी भी है, कहा जाता है कि गुँदना गुँदवाने से गठिया बाय दूर होती है ।”^{३४}

केश विन्यास: बस्तर की गोंड आदिवासी बालायेँ केश विन्यास में दक्ष होती हैं। केश विन्यास के इर्द-गिर्द कोमल भावनाओं का ताना-बाना बुना होता है। इसी कोमल प्रेम भावना के कारण आदिवासी किशोर अपनी प्रेमिका को प्रेम की निशानी भेंट करता है। अवस्थी जी लिखते हैं- “दिन भर वे आवारा भले ही रहें, रात को वे लगन से सँवरती हैं। बालों में प्यार से लहरियाँ डालती है। पडिया (लकड़ी की कंधिया) खोसती हैं। एक नहीं, दो, तीन, चार या उससे भी ज्यादा। पडिया उनकी जिन्दगी है- उसके प्रेमी के प्यार की निशानी। उसे उन्हें कभी खरीदना नहीं पड़ता। उनका प्रेमी उन्हें भेंट करता है। पडियों से एक प्रेमी की अगाध प्रीत या कई प्रेमियों के प्यार का परिचय मिलता है।”

आभूषण: दरिद्रता के कारण आदिवासी महिलाएँ कम आभूषण पहन पाती हैं। उनका मुख्य आभूषण मालाएँ ही हुआ करती हैं। अवस्थी जी लिखते हैं- “उसके गले में डगरपोल (गुरियों की माला, जो चेलिक को उसकी प्रेमिका मोटियारी भेंट करती है) होता है। कान में छोटी-छोटी बालियाँ। यह कभी न ये वालिया खरीदता, न डगरपोल। वह अपनी मोटियारी को प्रेम की भेंट देता है तो मोटियारी से भी इन्हें भेंट के रूप में पाता है। इस हाथ से दे, उस हाथ ले। न कभी देर, न कभी अंधेर।”^{३५}

इस प्रकार आदिवासी युवतियाँ माला के अलावा बालियाँ आदि आभूषण पहनकर सज-सँवरती हैं।

नर्तकों की विशिष्ट पोशाक: बस्तर के गोंड आदिवासियों के नर्तक संबंधी पोशाक अत्यंत आकर्षक होती हैं। ये लोग अपने सिर पर गौर पशु के सींगों तथा मोर पंख को धारण करते हैं। ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में गोरे अधिकारी द्वारा

आदिवासी नर्तकों को देखा जाता है । “पुरुष ने सिर पर मोरपंख और जंगली भैंसे के सींगे बाँधे थे ।”^{३६}

इस प्रकार के नर्तक पोशाक धारण करके अपनी विशिष्ट अदा से नृत्य करते हैं ।

शिकार करना: ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में अवस्थी जी ने गोंड आदिवासियों द्वारा शिकार के तौर तरीके को स्पष्ट किया है । उपन्यास के प्रारंभ में मुंदरी और हिरमे की कथा में हिरमे किस प्रकार सांभर का शिकार करके उसका माँस खाता है, इसका वर्णन मुंदरी के शब्दों में हुआ है- “तरकस से एक तीर निकाल कर उसने ऐसा निशाना साधा कि पानी पीता सांभर वहीं मछली की तरह तडफने लगा ।”^{३७}

इसके अलावा वे लोग बाँस, लकड़ी और सूत के सहारे कई प्रकार के फँदे बनाते हैं । वे फँदा बनाकर शिकार करते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में शीकागील कहता है- “जगह अच्छी है झालर, दोनों और नाला... कहीं से कोई जानवर निकले, यहाँ आकर रहेगा । बस, यहीं एक फंदा लगा दे । देख फिर कितने अकडाल, अर्जाल और सोरा फँसते हैं ।”^{३८}

केवल तीर, फंदा, भाले से वे लोग शिकार करते हैं ऐसा नहीं है, वह अपने हाथ से पत्थर मारकर भी शिकार करने में दक्ष होते हैं । “थोडा आगे चलकर महुआ रुक गई। उसने जमीन से एक पत्थर उठाकर सामने फेंका वह सामने की झाड़ी पर जाकर गिरा तो एक पक्षी ‘तीतर’ वहीं धूल में लोटने लगा ।”^{३९}

इस प्रकार गोंड आदिवासी लोग हथियार, फंदे, हाथ से शिकार करने में दक्ष होते हैं ।

धार्मिक परिवेश: आदिवासियों में पराशक्तियों पर गहरा विश्वास होता है । यह विश्वास अनेक स्तर पर होता है, किन्तु आदिवासियों में ग्रामीण समाज की भाँति धर्म का विकसित स्वरूप, धर्म संबंधी मंदिर एवं विविध संप्रदाय तथा वाद आदि नहीं पाये जाते। हाँ ! आदिवासी समाज के व्यक्ति पूर्वजों एवं परम्परागत देवताओं की पूजा अवश्य करते हैं । यह पूजा प्रायः पशु-पक्षियों की बलि करके, मंत्रपाठ करके सम्पन्न की जाती है, जिसका उदाहरण अवस्थी जी का ‘जंगल के फूल’ उपन्यास है, जो गोंड आदिवासी जीवन पर आधारित है ।

देवी-देवता: आदिवासी समाज की अपनी एक विशेषता होती है कि अधिकांश धार्मिक संस्कार पर्वों के रूप में मनाये जाते हैं, जिसके कारण हिन्दी के आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास साहित्य में भी आदिवासी धार्मिक गतिविधियों का वर्णन पर्वों के साथ ही अधिक मिलता है ।

‘लाडुकाज’ पर्व के अवसर पर गोंड आदिवासियों द्वारा नारायण देव की पूजा होती है । इस पूजा के विधि-विधान को सूअर की बलि से सम्पन्न किया जाता है । ‘जंगल के फूल’ में अवस्थी जी लिखते हैं- “सिरहा नारायण देव की पूजा में खो गया । दो-चार मंत्र पढ़ने के बाद उसने देवताओं को धूप दी । सारे लोगों की आँखें सुअर पर अटक गईं। वह जमीन में मुँह लगाए पहले की तरह खड़ा था और सारे चावल उसी तरह बिखरे थे। सिरहा के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ उभरी । उसने देवता का नाम लेकर नारियल फोड़ा। उस पर लांदा चढ़ाई । मंत्र द्वारा वह सुअर को चेतना जगाने लगा । सूअर मंत्र के प्रभाव से झूम उठा । चावल के दानों को समेटने के लिए उसने जैसे ही मुँह खोला, सुलकसाए ने आगे बढ़कर उसकी पूछ काट ली । पूँछ के कटते ही नारायण देव की आत्मा सूअर पर उतर आई ।”४०

नारायण देव के अलावा गोंड आदिवासी लोग आंगा देव को भी प्रतिष्ठित देवता के रूप में मानते हैं। आंगा देव की पूजा बस्तर के उतरी क्षेत्र में होती है। उतरी बस्तर में हजारों आंगा देव के रूप पूजे जाते हैं।

नारायण देव आंगा देव, कादंगल देव, बरियापेन देवों के अलावा गोंड आदिवासी लोग कुछ मातृदेवियों के आराधक माने जाते हैं। बस्तर के गोंडों की सबसे महत्वपूर्ण और सर्वाधिक पूजित दंतेश्वर देवी है, जिसका वर्णन करते हुए अवस्थी जी ने जंगल के फूल उपन्यास की भूमिका में लिखा है- “वीरभद्र बड़े प्रतापी और देशभक्त राजा थे। उनके परिवार की देवी ‘दिल्लेश्वरी’ ने उन्हें एक तीर दिया था। जब वे मथुरा गये तो वहाँ भुवनेश्वरी देवी ने एक त्रिशुल दिया। इसके बाद यह परिवार मद्रास के पास जयपुर चला गया और वहाँ उसने राज्य जमाया तब मद्रास में राजा वीरकेसरी का शासन था। वीरकेसरी ने इन्हें जमाने नहीं दिया, इसलिए ये वारंगल चले गये। वारंगल में इन्होंने मानक्य देवी को अपना आराध्य माना। यही देवी ‘दंतेश्वरी’ के नाम से प्रसिद्ध है।”

इन देवी-देवताओं के अलावा गोंड आदिवासी लोग शीतला माता, गोदना माता, मावली माता एवं अपने पूर्वजों की धूम-धाम से पूजा-आराधना करते हैं।

आर्थिक परिवेश: ‘गोंड’ आदिवासियों का आर्थिक आधार सामान्यतः बहुत कमजोर होता है। उनकी जीविका के साधन बहुत कम और परंपरागत होते हैं। इन लोगों की अर्थ-व्यवस्था वनों की श्री और दोहन रीति-नीति से बहुत गहराई से जुड़ी हुई है। रोटी, कपड़ा और मकान उनकी प्रमुख आवश्यकता है। गोंडों की आर्थिक स्थिति पर पी.आर.नायडु लिखते हैं- “सामान्यता गोंड अपने खेतों में दो फसलें बोता है। धान, कोदों, कुटकी, तिलहन, चावल, मक्का दिल्ली आदि की फसल बोयी जाती

है । रबी में गेहूँ, चना, अलसी आदि की फसल भी बोता है । दो-दो फसल लेने के बाद भी एक गोंड परिवार का वर्ष भर का गुजारा ठीक ढंग से नहीं होता ।”^{४९} गोंडों की आमदनी का दूसरा जरिया वनोपज को एकत्रित करके बाजारों में बेचना भी है । कुल मिलाकर कहें तो गोंडों की आर्थिक स्थिति बिल्कुल कमजोर होती है । लेकिन एक बात तो निश्चित है वे लोग कैसे भी अपना पेट पाल लेते हैं ।

विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न आदिवासी समुदाय अपने परिवार के उदर पोषण के लिए नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं का शिकार करते हैं । आदिवासियों के शिकार करने के तौर तरीके तथा उनकी सहज कुशलता हमें आश्चर्यचकित कर देती है । इसमें भी बस्तर के गोंड आदिवासियों के शिकार करने के तौर तरीके दूसरे आदिवासियों की तुलना में बिल्कुल भिन्न प्रकार के होते हैं ।

गोंड स्त्रियाँ भी रोजगारी के लिए वन-वन भटकती फिरती रहती है । जितनी मेहनत वे खेतों में करती हैं उससे कहीं अधिक मेहनत वे वनोपज इकट्ठा करने में करती हैं। गोंड स्त्रियाँ वनोपज के साथ-साथ चिरौंजी भी इकट्ठा करती हैं । तेंदू पता, माहल पता, जलाऊ लकड़ी बीनना तथा बेचना इनका प्रमुख कार्य है । इसके अलावा बाँस की बनी हुई चीजें, पतल, दोना, शहद इकट्ठा कर कुछ आमदनी प्राप्त करते हैं ।

‘जंगल के फूल’ उपन्यास में एक सरकारी अधिकारी के गोंडों का ग्राम खाली देखने पर उसका नौकर उतर देता हुआ कहता है- “यहाँ यही होता है, हुजुर । सारी रियासत के बहुत से गाँव दिन में खाली पड़े रहते हैं । यहाँ के मर्द और औरत जंगल चले जाते हैं। पेट के लिए चारा तलाशते हैं, हुजुर । यहाँ खाने का ठिकाना कहाँ है? थोड़ा सा मक्का पैदा होता है । कुछ कुदाई और कुटकी । पर इनसे चार-छः

मास से ज्यादा पेट नहीं चल सकता । इसलिए हम सब जंगल जाते हैं । विमल शंकर नागर लिखते हैं- गोंड जन-जाति में प्रचलित निम्नलिखित लोकोक्ति भी उनके आर्थिक स्तर की परिचायक है-

“जयत के गुनहरी, बाढत के भौंड,

पक गये तो किसान, नांतर गोंड के गोंड ।”^{४२}

इस लोकोक्ति के अनुसार ‘फसल जम, बढ एवं पक कर यदि घर में आ गयी तो किसान अन्यथा गोंड के गोंड ही हैं अर्थात् फिर दिन भर जंगल में आवश्यक खाद्य पदार्थ ढूँढना अथवा श्रम का कार्य कर आजीविका प्राप्त करना ।

इस प्रकार उपर्युक्त संदर्भों से पता चलता है कि बस्तर के गोंड आदिवासियों की आर्थिक स्थिति न के बराबर है ।

गोंड आदिवासी जीवन पर आधारित ‘जंगल के फूल’ उपन्यास में गढबंगाल का सरदार सुलकसाए नजदीकी गाँव नेतानार में अपने मित्र झालर सिंह के साथ विवाह में शरीक होने जाता है । विवाह के नृत्य एकादान में शराब के नशे में वहाँ के दुल्हे को पीट देता है, तो जाति की पंचायत यह तय करने के लिए बुलायी जाती है कि सुलकसाए ने हमारे गाँव में आकर दुल्हे को नशे में अनजाने में पीट दिया अथवा उसने दुल्हन को अपनी वीरता दिखाने एवं उसके हृदय पर नियंत्रण करने के लिए पीटा है अथवा सुलकसाए का दुल्हन से पहले से ही संबंध है । राजेन्द्र अवस्थी के शब्दों में- “आज रात पंचायत इसी जवान शेर सुलकसाए के बारे में चर्चा करने इकट्ठी हुई थी । कुछ गाँव वालों का कहना था कि सुलकसाए ने हमारे सारे गाँव को चुनौती दी है । हम उसके गाँव में जाकर निबटेंगे । कुछ कहते थे- वह भुसरी पर हाथ साफ करना चाहता है । कुछ यह भी कहते थे कि यह सब सोचना गलत

है । सबकुछ अनजाने में हुआ है । सुलक आज खूब पीये है । ऊपर से तेल डालने वाली लडकियों ने भी गलती की है, इसलिए मामला रफा-दफा किया जाय और यह रस्म एक बार फिर दुहरायी जाय । इन तीनों बातों को लेकर पंचायत में खूब चर्चा चली । इनमें सच क्या है, यह पता लगाना पंचों का काम था ।”^{४३}

स्वाधीनतापूर्व युग में सरकार की ओर से जनता के तन-मन की रक्षा करने वाली पुलिस आदिवासी समाज में जाती थी और वहाँ पर उनकी सुरक्षा के बदले अपना उल्टा सीधा करती थी । या यों भी कह सकते हैं कि हिन्दी के आदिवासी जीवन-संबंधी उपन्यास साहित्य में पुलिस के अपने स्वार्थ पूर्ण करने के ही उदाहरण अधिक मिलते हैं। प्रस्तुत उपन्यास के प्रारंभ में पुलिस द्वारा आदिवासियों पर किये अत्याचारों का वर्णन करते अवस्थी जी लिखते हैं- “क्या टुकुर-टुकुर देखता, बट्-टमीज ।”

“गायता अब भी चुप था । काले अफसर ने एक सिपाही के हाथ से कोडा छीनकर उसकी पीठ पर दो-चार जड दिये ।”^{४४}

पुलिस द्वारा किस प्रकार आदिवासियों का शोषण किया जाता है जिसका उदाहरण उपन्यास के पात्र झालर सिंह द्वारा व्यक्त हुआ है ।

‘वह एक दिन कनतेली (शहद की मक्खी) उडा रहा था । एक छीतना शहद से लबालब भरा था । तभी जंगल से डरेस लगाये एक सिपाही आ गया, बोला- अबे चल यहाँ।’

- ‘कहाँ हजूर?’

‘यह मलगा निस्पिट्टर के घर ले चल ।’

- ‘थोडा ठहर कर हजूर, करतेली उड गयी है, बस...’

“उसने कमर से चमड़े का हंटर निकाल कर दो-चार मेरी पीठ पर जड़ दिये और जबरन मुझे पकड़ कर ले गया । देखकर मैं हेरान रह गया । वह मलगा था या पूरा झाड़, दस आदमी भी उसे उठा न पाएँ । कहता था मैं अकेला उठाकर ले चलूँ । यह कैसे होता। मैं खूब गिडगिड़ाया पर वह न माना । मुझे थाने ले गया । वहाँ निस्पिट्टर ने कील लगे जूते मुझे मारे और चार घंटे तक जेल में बंद रखा । मैंने आज तक यह किसी को नहीं बताया । झालर सिंह की आँखों में आँसू आ गये ।”^{४५}

इस प्रकार ‘जंगल के फूल’ उपन्यास सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों में अपनी नामना लिए है ।

० राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में संस्कृति के नियामक तत्व

बस्तर के अनेक लोकगीत और लोकनृत्य वहाँ की मिट्टी की सीधी गंद और जनजीवन की संस्कृति को चित्रित करते हैं । जंगलों में काम करते वक्त गाये जाने वाले गीत, शादी के वक्त का नाचगाना, दीपा (जंगल जलाना) के अवसर पर का नाच-गाना, अपने आराध्य की पूजा करते हुए गाया जाने वाला गीत और नृत्य हर दिन घोटुल में चलने वाला करमा नृत्य या एकदाना नृत्य, नुकानोरं दाना पांडुम के त्यौहार पर गायी जाने वाली रिना या किसी के अतिथि के सामने गाये जाने वाला गीत या नृत्य से बस्तर की कोयल कुक उठी है ।

आदिवासियों में शादी के अवसर पर रिलों गीत गाया जाता है । अनेक गाँवों से नाचने-गाने वाले आते हैं । उस वक्त लांदा (शराब) भी पी जाती है और शराब के नशे में नाच-गाना होता है ।

आदिवासियों की खेती करने की अपनी पद्धति है जिसे ‘दीपा’ कहते हैं । वे

जंगल को जलाकर उसकी राख में बीज बोते हैं। हर साल वे खेती के लिए नया जंगल जलाते हैं। खेती में बीज बोते समय उनके कंठ से अनायास ही स्वर निकलते हैं-

“विरपोंडी पन्डों रोमो रोमो

मिया वाय वाय हुरीं तोमर सांगो ।”^{४६}

‘करमा’ आदिवासियों का जीवन है। आदिवासी युवक-युवतियाँ हर-दिन घोटुल जाते हैं। वहाँ गाकर करमा नृत्य किया जाता है। यथा-

“नियारा जोर तोर लयोर रोम हेलो,

मिया वाय वाय हुरीं तोमर सांगो ।”

इडेके बर पुंद की रोम हेला ।”^{४७}

उसी प्रकार घोटुल से लडकी की विदा देते वक्त, शरीर को दफनाते वक्त भी गीत गाते हैं।

इस प्रकार अवस्थी जी ने लोकगीतों, लोकनृत्यों, त्योहारों के समय गाये जाने वाले गीतों के चित्रण से आदिवासी संस्कृति को, वहाँ के परिवेश को यथार्थ रूप में उजागर किया है। ये सभी लोक-उपादान मिलकर लोकजीवन की सफल अभिव्यक्ति करते हैं।

० संस्कृति पर अर्थव्यवस्था का प्रभाव

अवस्थी जी ने अपने उपन्यासों में आदिवासियों की और महानगरीय लोगों की आर्थिक स्थिति का चित्रण किया है। आदिवासी अपना पेट पालने के लिये दिन भर जंगलो में घूमते हैं। वहाँ से जो कुछ मिलता है उसी से अपना गुजारा कर लेते हैं। परन्तु उनमें दो-तीन स्त्रियाँ रखने की पद्धति है। इन स्त्रियों से अनेक बच्चे पैदा

होते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति का कारुण्यमय चित्र प्रस्तुत किया है।

अवस्थीजी ने महानगरीय लोगों की आर्थिक स्थिति का भी चित्रण किया है। महानगर में स्थित एक परिवार में बेटा नहीं है माँ-बाप बूढ़े हो गये हैं तो मजबूरन आर्थिक दृष्टि से विवश होकर बेटी को वेश्या व्यवसाय करना पड़ता है जब बाप को इस बात का पता चलता है तो वह भी कुछ नहीं कहता। “बाप बूढ़ा और कमजोर है। कमाई भी बहुत नहीं होती। यहाँ आने के पहले वह औरत कांदिवली में रहती थी और यहाँ वहाँ से काम चलाती थी। यहाँ आकर खर्चों को चलाना कठिन हो गया, इसलिए अपने पुराने दोस्तों को वह यहाँ बुलाने लगी और सलमा के बाप की गैरहाजिरी में उन मर्दों के साथ बैठने के लिए वह उसे मजबूर करने लगी। सलमा ने जब बाप से कहा तो बाप ने कुछ नहीं कहा।”^{४८}

इतना ही नहीं आर्थिक दृष्टि से विवश लोग पैसे कमाने के लिए और ही तरीका ढूँढ लेते हैं। श्मशान भूमि से शव किराये पर लाना और उस शव का अंतिम क्रिया-कर्म करने के लिए पैसे माँगना। जितनी कमाई होगी उसमें से कुछ पैसे श्मशान भूमि के वाचमेन को देना। इस विलक्षण प्रसंग को इस रूप में अंकित किया गया है- “एक शव फूटपाथ पर पड़ा था। उसके ऊपर सफेद चादर थी। सामने दो आदमी खड़े थे। हर आने-जाने वाले से हाथ जोड़कर वे कहते थे- ‘भगवान के वास्ते कुछ दो।’”

इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से विवश लोगों का बड़ा ही मार्मिक और सुन्दर ढंग से चित्रण अवस्थी जी के उपन्यासों में हुआ है।

० संस्कृति पर प्रकृति का प्रभाव

प्रकृति चित्रण द्वारा कथानक को प्रवाह मिलता है तथा उसमें अपेक्षाकृत

अधिक मार्मिकता आती है । प्रकृति का उपयोग सौन्दर्य निर्माण के लिए भी होता है जिसमें प्राकृतिक छटा तथा सौन्दर्य स्थलों की सैर पात्रों के माध्यम से की जा सकती है ।

अवस्थी जी ने अपने उपन्यासों में प्राकृतिक परिवेश का सृजन कोरी सजावट के लिए न करके एक निश्चित लक्ष्य की पूर्ति के लिए किया है । उनके उपन्यासों में प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सुरम्य स्थलों का वर्णन अपूर्व बन पडा है । श्रीनगर के झेलम नदी का सौन्दर्य चित्रण इन शब्दों में किया है- “झेलम के दोनों ओर हाउस बोटे थीं । एक चौड़े और गहरे कुंड से झेलम का पानी बाहर निकलता है । ऊपर पाइन के लंबे झाड हैं । कुंड का पानी पचास फुट गहरा है । लगता है सतह हाथ से छुई जा सकती है । कुंड मे तैरती रंग-बिरंगी मछलियाँ इधर-उधर घूम रहीं थीं ।”^{४९}

अवस्थी जी शिलांग का प्राकृतिक चित्रण भी बड़े सुन्दर ढंग से करते हैं । यथा- “सामने दूर तक फैली लम्बी झील थी । झील के किनारे वृक्ष लगे हुए थे जो किसी लता की तरह पानी की ओर झुके थे । लता-वृक्षों का यह एक पुरा सिलसिला था । उनका अक्स पानी पर पड रहा था, लगता है झील के नीचे किसी ने लताओं को घेरकर कई मंडप बना दिये हैं । उन मंडपों पर हरी झालरें पडी हैं । जब कभी हवा का झोंका आता था और जमीन पर लगे लता-वृक्ष कांपने लगते थे तो लगता था झील के भीतर चार हाथ हैं और चारों मिलकर झालरों को हिला रहे हैं ।”^{५०}

प्रकृति चित्रण द्वारा अवस्थी जी ने पात्रों की मनः स्थिति को भी रुपायित किया है- “चाँद की हथेलियों ने मेरी रात छीन ली है । भीतर और बाहर सब कुछ बेचैन है । जुहू की मुलायम रेत पर लहरों का राज्य है । तेज धरधराती लहरें दिग्गम

चाँदनी को पीकर सारा किनारा निगल जाना चाहती हैं । अंधेरी रात होती तो यही किनारा इस समय एक अजीब खामोशी से भरा होता । समन्दर मजार पर पड़ी हुई चादर की तरह बेजान और स्थिर होता । तब वहाँ खडे होने का मन न होता ।”^{५३}

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यासों में वातावरण निर्माण और वातावरण चित्रण दोनों का सफलता के साथ निर्वाह हुआ है । उन्होने अंचल के जीवन की अभिव्यक्ति, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक, आर्थिक परिवेश में की है। साथ ही महानगरीय जीवन का चित्र भी बड़ी सुन्दरता से उभारा है । इस परिवेश की जीवंतता मानवीय चेतना को उभारने में सक्षम है । प्राकृतिक चित्रण तो बड़ी सुंदरता से अंकित हुआ है जिससे पाठक घर बैठे ही उन स्थलों की सैर कर सकता है ।

अवस्थी जी के उपन्यासों की रचना सोद्देश्य है । उनके उपन्यासों में अनेक सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक नियामक तत्व को लक्षित किया जा सकता है ।

० ‘सूरज किरन की छांव’ में संस्कृति के नियामक तत्व :

यह एक आंचलिक उपन्यास है । आदिवासियों का चित्रण करना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य रहा है । आदिवासियों में मनुष्य जाति की आदिम प्रवृत्तियाँ, रीति-रिवाज सुरक्षित हैं, वैर-प्रेम भी सुरक्षित है । वे शहरों की कुंठा, निराशा और तृष्णा से दूर हैं । उनमें पिशाच पूजा, देव पूजा, जादू-टोना, अर्धनग्न रहना, मुक्त काम व्यवहार आदि प्रचलित है। इनका चित्रण करना उपन्यास का उद्देश्य रहा है । साथ ही साथ बंजारी द्वारा पिछड़ी हुई मान्यता का दर्द, नारी की विवशता, आदिवासियों में नारी की स्थिति, पादरियों द्वारा धर्म प्रसार, धर्मपरिवर्तन के लिए दिये गये लालच आदि बातों को दर्शाना उपन्यास का उद्देश्य रहा है ।

० 'जंगल के फूल' में संस्कृति के नियामक तत्त्व

विवेच्य उपन्यास बस्तर जीवन पर लिखा गया उपन्यास है। मध्यप्रदेश में स्थित क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत को सबसे बड़ा किन्तु आबादी में सबसे विरला जिला है। 'बस्तर' माडिया और मुडिया गोडों की सुरम्य भूमि है जहाँ ये आदिवासी निवास करते हैं। इन लोगों को आज भी नगरीय सभ्यता का प्रकाश नहीं पहुँचा है और जहाँ आज भी युवक-युवतियों के मनोविनोद केंद्र घोटुल (कुमार गृह) स्थित हैं। इनकी संस्कृति को, रीति-रिवाजों को चित्रित करना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य रहा है। भूमिका में स्वयं अवस्थी जी भी स्वीकार करते हैं कि- इसके द्वारा मेरा मूल उद्देश्य घोटुल जीवन, वहाँ की संस्कृति, वहाँ के निवासियों के रीति-रिवाज और उनके जीवन के समग्र चित्र सामने रखता है। वैसे तो आदिवासियों द्वारा अनेक विद्रोह हुए थे लेकिन यह सबसे बड़ा विद्रोह था।

० 'सीपियाँ' में संस्कृति के नियामक तत्त्व :

महानगरों का जीवन देहाती जीवन से भिन्न है। वहाँ ऊपरी तडक-भडक और चकाचौंध जिन्दगी के भीतर संत्रास, कुंठा और दर्द के सैलाब भरे पड़े हैं। बम्बई जैसा महानगर ऊपर से जितना सुन्दर और आकर्षक लगता है उसका आंतरिक हिस्सा उतना ही मैला, असुन्दर है। वहाँ का व्यक्ति मुक्त जीवन और त्रासदी से ग्रसित है। वह ऊपर से चेहरे ओढ़े हुए है। वैसे ही बम्बई फिल्म जगत के बारे में प्रसिद्ध शहर है, लेकिन फिल्मों के दीवानों का क्या पापड बेलने पड़ते हैं। यहाँ आकर लडकियों को अपना जिस्म भी बेचना पड़ता है। घर से भागी हुई या किसी के बहकावे में आकर जो लडकी बम्बई पहुँचती है और उसे फिल्मों में काम नहीं मिलता तो उसके आगे वेश्या बनने के सिवा कोई चारा नहीं है। इसी वेश्या जीवन, फिल्मी दुनिया

के हथकंडों और बम्बई के जीवन का चित्रण करना उपन्यास का उद्देश्य है ।

◦ **‘जाने कितनी आँखें’ में संस्कृति के नियामक तत्त्व :**

विवेच्य उपन्यास बुंदलेखंड के जन-जीवन पर लिखा हुआ उपन्यास है । गाँवों की राजनीति, उनकी दिनचर्या का निरूपण करना । अंग्रेजों के जमाने में पढ़े-लिखों की स्थिति, थानेदार की चापलूसी के लिए सारा गाँव उत्सुक रहता था । अंग्रेजों के जमाने में किसी पढ़े-लिखे और थानेदार का ही दबदबा होता था । इनसे लोग घबराते थे । ये दोनों ही गाँव के सर्वेसर्वा माने जाते थे । इस स्थिति को दर्शाना और किशोरी जब यौवन में प्रवेश करती है तो उसकी अभिलाषाएँ बढ़ती हैं, उन अभिलाषाओं को दबाने का परिणाम तथा सुवेगा के माध्यम से सामाजिक रुढ़ियों पर प्रहार करते हुए उन्हें खोखला और निरर्थक बताना भी उपन्यास का उद्देश्य है ।

◦ **‘बहता हुआ पानी’ में संस्कृति के नियामक तत्त्व :**

प्रस्तुत उपन्यास की रचना का मुख्य उद्देश्य कला के लिए समर्पित कलाकार के चरित्र का कलात्मक निरूपण करना है । कलाकार के जीवन की व्यथाएँ, पैसे के पीछे न भागनेवाला, एक जहाज की तरह भटकते हुए कलाकार का चित्रण किया गया है । साथ ही आधुनिक नारी के मन की घुटन, अकुलाहट, असंतोष और जिजीविषा का उत्कट लालसा को उजागर करता हुआ उसकी असहायता और विवशता का प्रतीक बनकर समाज के धनाढ्य, ऐय्याशो के मुँह पर एक करारा तमाचा मारना भी है ।

◦ **‘अकेली अवाज’ में संस्कृति के नियामक तत्त्व :**

विवेच्य उपन्यास में बंदू को केंद्र बिन्दु मानकर किशोरों की अकेलेपन की समस्या को अभिशाप बताया गया है । वास्तव में मानव सामाजिक प्राणी है । वह

समाज से जुड़कर ही अपना विकास कर पाता है । अकेलापन उसे खा जायेगा । आधुनिक किशोरों की अहं और व्यक्तिवादी भावनाओं को दूर करके सामाजिक महता का ज्ञान प्रदान करना इसका मूल उद्देश्य रहा है । उच्च परिवार के तथा-कथित सभ्य माता-पिता का लाड-प्यार बच्चों को बिगाड़ देता है, उनमें अहंकार की भावना उत्पन्न कर देता है । आदर्श विद्यालयों जैसी संस्था की उसके सुधार के लिए आवश्यकता है । यह दर्शाना भी उपन्यास का उद्देश्य है ।

◦ **‘बीमार शहर’ में संस्कृति के नियामक तत्त्व :**

हमारे समाज के सारे मूल्य और रिश्तों को नष्ट करने वाला तत्त्व है आर्थिक विषमता। इसी के कारण व्यक्ति साधु या अपराधी बन जाता है । इसी से वेश्यालय का जन्म होता है तथा सारे मानवीय सम्बन्ध निरर्थक हो जाते हैं । आर्थिक अंतराल जितना अधिक होगा, उतना ही सामाजिक जीवन में आक्रोश और क्षोभ भी पैदा होगा । व्यक्ति की सारी क्रियाओं को अर्थतंत्र ही नियंत्रित करता है । उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है । साथ ही बम्बई जीवन की तस्वीर खींचना, वैवाहिक जीवन के विविध रंगों को उभारना । वर्तमान वैवाहिक जीवन एक नयी व्याख्या की माँग करता है, क्योंकि हर स्त्री-पुरुष के अपने छोटे-बड़े स्तम्भ हैं । इन सम्बन्धों के बीच आज का व्यक्ति ईमानदार नहीं है । इसी दांपत्य-जीवन के खोखलेपन और व्यक्ति विभाजन को चित्रित करना भी उपन्यास का लक्ष्य है ।

◦ **‘मछली बाजार’ में संस्कृति के नियामक तत्त्व :**

विवेच्य उपन्यास वर्तमान परिवार और तत्सम्बन्धी समाज का सनसनीखेज दस्तावेज है । समकालीन जीवन और राजनीति में जो मूल्यहीनता है, राजनीतिक कर्णधारों की निजी जिंदगी, बीसवीं शताब्दी के अन्त में उसकी त्रासदी उसे झेलता

हुआ व्यक्ति, इक्कीसवीं सदी के प्रभावित टूटते और बिखरते परिवार का चित्रण करना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है। साथ ही वर्तमान अवसरवादी, मौकापरस्त राजनीति, परिवारों के दायरे, व्यक्तियों के आचरण किसी मछली बाजार से कम नहीं हैं इसे दर्शाना उपन्यासकार का मन्तव्य रहा है।

० 'भंगी दरवाजा' में संस्कृति के नियामक तत्त्व :

वर्तमान परिवेश में रहने के लिए सामान्य आदमी विवश है, वह सिर्फ अपनी भूमिका निभा रहा है। यही बात राजनीतिक व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी है। जो व्यक्ति एक बार राजनीति से जुड़ गया उसे छोड़ना नहीं चाहता या उससे बाहर नहीं रह सकता। वह व्यक्ति सत्ता में हो या उससे बाहर नहीं रह सकता। वह व्यक्ति सत्ता में हो या न हो उसे राजनीतिक माहौल के बाहर आराम नहीं मिलता। ऐसी ही राजनेता का चित्रण करना प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में रानी रुपमती और बाज बहादुर की कहानी अंकित है। लेकिन जिस तरह मांडू का इतिहास बदला उसी तरह विदेश मंत्री के भाग्य भी बदल सकते हैं। इस घटना के पीछे मांडू का इतिहास बदला उसी तरह विदेश मंत्री के भाग्य भी बदल सकते हैं। इस घटना के पीछे मांडू का इतिहास और स्वतंत्र भारत की राजनीति की शतरंज बिछी हुई है। इसे दर्शाना और वर्तमान घटिया राजनीति का चित्रण करना उपन्यासकार का लक्ष्य रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उनके उपन्यास बहुउद्देशीय है। आंचलिक उपन्यासों का उद्देश्य आदिवासियों की प्रवृत्तियाँ, उनके रीति-रिवाज, पिशाचपूजा, देवपूजा, घोटुल का चित्रण करना, माडियाँ, मुडिया गोडों के जीवन को साकार करना, शहरी जीवन पर लिखे गये उपन्यासों में बम्बई जैसे महानगरों को रूपायित करना तथा

सामाजिक उपन्यासों में टूटते बिखरते परिवार का चित्रण करना है। अकेली आवाज जैसा उपन्यास किशोरों के अकेले मन की समस्या को लेकर लिखा गया है तो भंगी दरवाजा और मछली बाजार में अवसरवादी राजनीति और राजनीति के हथकंडों का चित्रण हुआ है। अतः स्पष्ट है कि अवस्थी ने अनेक उद्देश्यों को सामने रखकर उपन्यासों की रचना की है।

उपन्यास साहित्य के विवेचन के लिए अपनाये गये विविध दृष्टिकोण में से शिल्पगत विधि विशेष उल्लेखनीय है। उपन्यास शिल्प में औपन्यासिक घटना तत्वों का विशेष महत्व है। कथानक में नवीनता, मौलिकता होना आवश्यक है। पात्र के आधार पर ही घटनाएँ या मानसिक संसार की रचना होती है। संवाद घटना को आगे बढ़ाने का पात्रों का चरित्र उद्घाटित करने का काम करते हैं। वातावरण के कारण घटनाओं में जीवंतता आती है। उपन्यास के माध्यम से अपने उद्देश्य में सफलता पाता है।

राजेन्द्र अवस्थी सूक्ष्मदर्शी, अनुभवशील व्यक्ति हैं। अवस्थी अपने चारों ओर के परिवेश से अधिक प्रभावित हैं जो उनकी कृति में सर्वत्र देखा जा सकता है। अवस्थी ने अपनी कृतियों में जिस सामग्री का समावेश किया है वह इसी जगत की है, जो कि हमारे चारों ओर के परिवेश से ली गई है।

अवस्थी ने अपने उपन्यासों का कथानक विविध क्षेत्रों से चुना है। उनके उपन्यासों में एक और आंचलिक जन-जीवन का चित्रण है तो दूसरी और महानगरीय जन-जीवन का। आंचलिक उपन्यासों में शहरी जीवन की विरूपता का उद्घाटन करते हुए आंचलिक जीवन के पुराने मूल्यों के प्रति अदम्य विश्वास व्यक्त किया गया है। महानगरीय जीवन पर लिखे गये उपन्यासों में नारी जीवन की विवशता, महानगरीय

जीवन की विषमता, महानगरीय जीवन की विषमता, कुंठा आदि का चित्रण किया है। अकेली आवाज जैसे उपन्यास में बाल मनोविज्ञान का चित्रण किया है तो बीमार शहर में विवाह जैसी संस्था का विरोध दर्शाया गया है। भंगी दरवाजा में वर्तमान राजनीति का चित्रण किया है। अतः स्पष्ट है कि कथानक में विविधता है। बस्तर जैसे आदिवासी क्षेत्र का चित्रण एक अछूता विषय है। उनके कथानक में मौलिकता है, क्योंकि उन्होंने जिस विषय पर उपन्यास लिखे हैं, जिस समस्या को चित्रित किया है उसे नवीनता के साथ पेश किया है।

अवस्थी जी के उपन्यासों के पात्रों में विविधता है। उन्होंने पात्रों का चरित्र-चित्रण करने के लिए विविध प्रणालियों का उपयोग किया है। उनके उपन्यासों में पात्र परिवेश की देन है। पात्रों में गतिशीलता है। अवस्थी जी ने उपन्यासों में परिवेश चित्रण करते वक्त यह ध्यान रखा है कि वह कथानक को स्पष्ट करने में समर्थ हो। उनके उपन्यासों में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा प्राकृतिक परिवेश का सुन्दर चित्रण मिलता है। उनका बचपन आदिवासियों में व्यतीत हुआ, नौकरी के लिए अनेक महानगरों में रहना पड़ा। इन स्थितियों का उन पर प्रभाव पड़ा है। उनका यथोचित चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है।

अवस्थी जी ने उपन्यासों में लम्बे-लम्बे संवादों का प्रयोग परिस्थितिनुसार किया है। संवाद पात्रों की मनःस्थिति, विगत जीवन का परिचय देने में समर्थ है, वे पात्रानुकूल हैं। ग्रामीण पात्रों के मुख से ग्रामीण भाषा के संवाद और शहरी लोगों के मुख से शहरी भाषा के संवाद का प्रयोग किया है।

अवस्थी जी ने विविध उद्देश्यों को सामने रखकर उपन्यासों का सृजन किया है। आदिवासियों ने जन-जीवन, उनकी रुढ़ियाँ, मान्यताएँ, बम्बई जैसे महानगर का

चित्रण, टूटते बिखरते परिवार, किशोरों के अकेलेपन की समस्या, विवाह जैसी संस्था का विरोध, राजनीति का चित्रण आदि उद्देश्यों को स्पष्ट किया है, जिनमें उन्हें निश्चित सफलता प्राप्त हुई है ।

अतः कहना अनुचित न होगा कि अवस्थी जी के उपन्यासों का शिल्प सुगठित और प्रौढ है ।

० अवस्थी के उपन्यासों में आंचलिकता का सांस्कृतिक स्वरूप

आंचलिक उपन्यास शीर्षक के अंतर्गत हमने अंचल का अर्थ, आंचलिकता की परिभाषा देखी है । यहाँ हम आंचलिक शिल्प के सम्बन्ध में विवेचने करेंगे । आंचलिकता में विशिष्ट क्षेत्र के प्रति लेखक की विशिष्ट दृष्टि होती है । वह शहर की चमक-दमक से दूर धरती का, स्वच्छंदता का वहाँ के लोगों की स्वच्छंदता का निरूपण करता है ।

आंचलिक कथा-साहित्य अपनी विशिष्टताओं के कारण अन्य कथा साहित्य से भिन्न हैं । वैसे देखा जाय तो आंचलिकता एक विशिष्ट क्षेत्र के अन्तर-बाह्य का रागात्मक वृत्तांत है, जिसे विभक्त करना मुश्किल है, फिर भी हमें इसका विभाजन करके ही विश्लेषण करना पड़ेगा । हरिशंकर दुबेजी के अनुसार इस रागात्मक वृत्तांत को निम्नांकित तत्व आबद्ध करते हैं-

१. क्षेत्र विषय कथानक का आधार, २. क्षेत्र विशेष की भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का समग्र चित्रण, ३. भाषागत वैशिष्ट्य और स्थानीय मुहावरे, ४. लोक संस्कृति, ५. युगीन चेतना की अभिव्यक्ति और ६. आंचलिक पात्र ।

इन्हीं तत्वों के आधार पर हम राजेन्द्र अवस्थी के आंचलिक उपन्यासों का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।^{५२}

राजेन्द्र अवस्थी ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने आंचलिकता को केवल परिवेश के रूप में नहीं स्वीकारा बल्कि वे जिस भूमि में पले, जिस भूमि से उनका सम्पर्क रहा उसी का चित्रण करना उनका अभीष्ट अंग रहा है। अवस्थी जी ने तीन आंचलिक उपन्यासों का सृजन किया है- 'जंगल के फूल', 'सूरज किरन की छांव' तथा 'जाने कितनी आँखें'। इन तीनों उपन्यासों का कथानक अलग-अलग क्षेत्र से सम्बन्धित है। 'जाने कितनी आँखें' उपन्यास में बुंदेलखंड के बीजाडांडी के गाँवों को चित्रित किया है। 'जंगल के फूल' में बस्तर क्षेत्र के गढबंगाल, नारायणपुर, दन्तेवाडा, नेतानार तथा चितरकोट आदि गाँवों के आदिवासियों का जन-जीवन चित्रित है और 'सूरज किरन की छांव' में चेतमा, तामिया तथा चितरकोट के आदिवासियों के जीवन का यथार्थ चित्रण है।^{५३}

'जाने कितनी आँखें' नामक उपन्यास में बीजाडांडी गाँव की संस्कृति का मानचित्र अत्यंत सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। बीजाडांडी गाँव अनेक कौमों में बँटा है। उसमें प्रमुख है बमनइया टोला, कुरमी टोला, कट्टर हिन्दू टोला, मुसलमान टोला। इन टोलों को एकसूत्र में बाँधने का काम गाँव की दिलचस्प प्यासन दादी करती हैं। प्यासन दादी गाँव में तेल बेचने का काम करती हैं साथ ही सारे टोलों की खबरें एक-दूसरे तक पहुँचाती हैं। उसे अगर नारद या जासूस की उपमा दी जाय तो भी अनुचित न होगा। इन्हीं टोलों और प्यासन दादी तथा गाँव का युवक कमलापत और सुवेगा की प्रेम कहानी के माध्यम से अवस्थी जी ने पूरा गाँव की कथा को साकार किया है। इस सन्दर्भ में विवेकीराय का कथन उचित लगता है-

“बीजाडांडी एक जिन्दा गाँव, उस गाँव में एक जिन्दा चबूतरा, एक जिद्दी बुढ़िया, दिलचस्प स्कूल मास्टर, चबुतरे पर धुनी, शंख ध्वनि, कीर्तन और चहल-पहल, चबूतरा यानी गाँव का निर्णायक और विधायक स्थान । कथाकार आरम्भ में रोमान का एक आकर्षक वृत्त उपस्थित कर यह समसामयिक गम्भीर समस्यात्मक कोण पर जुट जाता है और फिर पूरे गाँव को जुटा देता है ।”^{५४}

उपन्यास के कथानक में गाँव की संस्कृति, गाँव के मनोरंजक किस्से, सुवेगा-कमलापत का प्रेम चित्रित किया है । सुवेगा-कमलापत के प्रेम की शुरुआत खम्हेर खेडा के मेले से होती है । गाँव में उनका प्रेम पनपता है । सारे गाँव में उनके प्रेम की चर्चा होती है । प्रेम का पूर्ण उत्कर्ष बारगंदा गाँव के मेले में एकान्त गुफा में लम्बे मिलन में होता है । इस प्रकार अवस्थी जी ने यह एक मेले से दूसरे मेले तक की प्रेमकथा में पूरे गाँव की संस्कृति को चित्रित किया है । इस कथानक में दो मेले का विस्तृत चित्रण किया गया है । एक खम्हेर खेडे में लगने वाला देवी का मेला और दूसरा मेघनाद का मेला जो बारगंदा में लगता है । इसके अलावा अहिर तथा कुर्मियों के देवता ‘कारसदेव’ की पूजा का भी विस्तृत चित्रण मिलता है । विवेच्य उपन्यास में सबसे मौलिक और स्थानिक उत्सव है । ‘टेसू उत्सव’ इसे बड़े ही मार्मिक ढंग से अंकित किया है । साथ ही बरसाद से निर्मित गाँव के लोगों के कष्टों को यथार्थ रूप में व्यक्त किया है । उपन्यास में अनेक किवदन्तियाँ और अंधविश्वासों का चित्रण मिलता हैं । जैसे घोंटा के जंगल में फागू हरकारा का बाध से भिड जाना जिससे आदिवासियों में एक लोककथा बनती है । गोंड जाति के लोग शेर के बड़े भाई हैं जैसे किम्बदन्ती के पीछे जाने कितने मिथ छिपे हैं । विधवाओं को मांगलिक अवसरों पर रोकना, उनके अंधविश्वास को स्पष्ट करता है ।

उपन्यास में अनेक पात्रों का समावेश हुआ है- कमलापत, सुवेगा, पंडित सुखलाल, चरनदास, बदरीप्रसाद, हरनाम सिंह, सरदार साहब, करीमियाँ, गुलाम मुहम्मद, भोला, हरिया, जवाहर सिंह, बतियाँ आदि ये सारे पात्र अपने-अपने टोलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास में सबसे दिलचस्प पात्र प्यासन दादी है। अवस्थी जी ने इन पात्रों के माध्यम से गाँव की संस्कृति, गाँव की राजनीति, पूजापाठ और धार्मिक कट्टरता को स्पष्ट किया है।

कमलापत बी.ए. पास युवक है। वह आधुनिकता चाहता है। वह मुख्यतः जातिवादी प्रवृत्तियों पर प्रहार करता है। वह प्राचीन मान्यता, संस्कारों से मुक्त होना चाहता है। वह कुर्मी होकर पंडित की पुत्री सुवेगा से प्रेम करता है, जो दहेज के कारण कुंवारी है। कमलापत कुल, रीतियों को ठुकराकर विद्रोह करता है। उसमें युगीन चेतना का अंकुर दृष्टिगोचर होता है।

उपन्यास में व्यापक अर्थ में ग्रामात्मा की तडपन का सुन्दर और दर्द भरा चित्रण मिलता है। सुवेगा कुंवारी लडकी है, उसके पिता को जेल हुयी है और बिना दहेज उसकी शादी नहीं होती। ये सारे हालात और ग्रामीण संस्कार सुवेगा को यह सोचने पर मजबूर करते हैं- “सुवेगा तो बरसात की गीली हवा कंपा गई। अपने दाँत अपने आप पीसने लगी। ऐसी दुनिया में आग लगे। न कोई सुधि खबर ले न कोई खुलकर खेलने दे। एक भारी परा दिन-रात चारों तरफ लगा रहे। दिन भर ब्याह की बातें सुनते कान थक गये। दाद भी जेहल से खबर भेजते हैं तो ब्याह की। बद्री काका भी घर आते हैं तो ब्याह की बातें करते हैं। पंजाबी हरनाम भी चुटकी काटता है तो ब्याह की। प्यासन दादी भी किस्से सुनाती हैं तो ब्याह के।” उपर्युक्त कथन में ग्रामीणता तथा ग्रामीण लोगों की प्रवृत्ति और अविवाहित युवती की

छटपटाहट दृष्टिगत होती है ।

आंचलिक उपन्यास में अपनी भाषा होती है और उस भाषा में स्थानीय शब्द, मुहावरे, कहावतें होती हैं । विवेच्य उपन्यास में ऐसे अनेक शब्द मुहावरें, कहावतों का प्रयोग मिलता है जिससे आंचलिकता का रंग गहरा होता है। जैसे मलंग, टंटइया, परकीसाल, शरा, बंदरपाठ, सूथना उडौ, चुन पुरखन के गाँव, किसे काँटा गड गया, सिर से पत्थर उतरना आदि ।^{५५} इतना ही नहीं उपन्यास में जगह-जगह लोकभाषा की मिठास भी मिलती है । “नास हो तेरे लछमी की”... बतिया चिल्लायी- “मेहराज, तुमाये रहते जे मोरो धरम बिगाडत है । कहन को तो मैं इनकी बिटिया हों, पर हैं सब कसाई मेरे लाने । मैं कहत हों, मेहराज, एक टंगिया लै लो और मोरी गरदन निकाल ले ओ । पर ये कसाई तो मोहे धुआँ में घोटना चाहत है । चाहत हैं घुटत रहों, न मरो, न जिओ । सीतला माई सहाय भई नोने आ गये, मेहराज ।”

अवस्थी जी का दूसरा आंचलिक उपन्यास है- ‘सूरज किरन की छांव’ । विवेच्य उपन्यास में चितरकोट, तामिया और चेतमा के आदिवासियों के जनजीवन को कथा केंद्र बनाया गया है । इसमें विशिष्ट रंगों का निखार गोंड जाति द्वारा मनाये जाने वाले उत्सव ‘नारायण देव’ की पूजा तथा आदिवासियों के नृत्य-गीतों में लक्षित होता है । विवेच्य उपन्यास की कथा में आदिवासी गोंड जाति का रहन-सहन, खान-पान, नृत्य, त्यौहार, रीति-रिवाजों को बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है । इस उपन्यास में आदिवासियों द्वारा मनाये जाने वाले हरपू पाण्डुम, नुकानोरदाना पाण्डुम जैसे त्यौहार- भूल-बिहाव, लमसेना रखना, भांडी में जीना जैसे रीति-रिवाजों, उनका खानपान “भुनसार से मुरगुल में मका खाकर चल देती थी । मरया में पेज साथ देती, तो चकौडा से पथरचटा, कजरा, खहुआ और कचनार के पत्ते बियारी में”^{५६} तथा

आदिवासियों का नाच-गाना, रहन-सहन आदि द्वारा आंचलिकता को चित्रित किया है। उपन्यास में आदिवासियों का यथार्थ चित्रण करने के लिये उनके निवास स्थान, जंगल, नदी-नाले, पहाड़ों का वातावरण चित्रित है। विवेच्य उपन्यास में आदिवासियों की भाषा के शब्द मुहावरे तथा कहावतों का प्रयोग किया है। जैसे-गायता, माईलोटा, आवा, तापे, लांदा, हिकुरकुंडा, चुल्हे में सिर डालना, रात तारे गिनते बिताना, अंधे को आँख मिली लंगड़ा उचटने लगा, मन में साँप लोटना, आकाश-पातल के कुलाबे मिला देना, छछुंदर के सिर चमेली का तेल, बंदर के हाथ एक लगना, अब बुन्दा को फुन्दा मिली और फुन्दा के भाग सेर हो गये, आदि से आंचलिकता में और भी निखार आता है। विवेच्य उपन्यास में अनेक पात्रों की योजना की गयी है और उनके नाम भी आदिवासी समाज के अपने हैं। ये पात्र अपने समाज को साकार करने में सक्षम हैं। उपन्यास में पात्रों के नाम इस प्रकार हैं- गाँव का मुखिया, विलियम, बंजारी, कंगला, सिन्दीराम, मुनिया, सरपा, टिमकी, गुम्मा, झरपन आदि।

उपन्यास में आदिवासियों के जनजीवन के अलावा ईसाई मिशनरियों का प्रभाव, उनके द्वारा आदिवासियों का धर्म परिवर्तन और उनका चुनाव में हिस्सा लेना तथा उपन्यास के अंत में पहाड़ी प्रदेशों में होटलों में चलनेवाले वेश्यालय का चित्रण आंचलिक नहीं है। अतः वह चित्रण आंचलिकता में बाधा पहुँचाते हैं। स्पष्ट है कि पुरा उपन्यास आंचलिक न होकर उसमें ईसाई मिशनरियों की कथा घुसेड दी है।

अवस्थी द्वारा लिखित तीसरा आंचलिक उपन्यास है 'जंगल के फूल'। विवेच्य उपन्यास का कथा केंद्र बस्तर जिले में स्थित गाँव गढबंगाल, नारायणपुर, दन्तेवाड़ा तथा नेतानार हैं। इन गाँवों में रहनेवाले आदिवासियों का जनजीवन तथा उस वक्त

के अंग्रेजों की राजनीति का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है ।

अवस्थी जी ने बस्तर के गोडों का जन-जीवन, उनकी संस्कृति को साथ ही १९०८ ई. के राज्यव्यापी विद्रोह में आदिवासियों पर हुए अत्याचार उपन्यास की कथा का केंद्र बनाया है । बस्तर के आदिवासी गोंड आज भी अपनी संस्कृति से इतने चिपके हुए हैं कि किसी भी कीमत पर उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं । वे जंगल से खाने की चीजें इकट्ठा करते हैं । जंगल ही उनका सब कुछ है । उनके सारे रीति-रिवाज विशेष प्रकार के हैं । उनका पुरा जीवन और संस्कृति घोटुल से जुड़ी है । इसी घोटुल का और उनकी संस्कृति का चित्रण उपन्यास का मुख्य उद्देश्य रहा है । इस कथा को चित्रित करने के लिए अवस्थी जी ने आदिवासियों के विशिष्ट पात्रों की योजना की है । उपन्यास के पात्र हैं- सुलकसाये, झालर सिंह, महुआ, जलियारों, हिरमें, मुंदरी, सताय, भुसरी, हेलमा, हबका, करतमी आदि । इन पात्रों के नाम भी विशिष्ट हैं । इन्हीं पात्रों के माध्यम से लेखक ने आदिवासियों का जन-जीवन साकार किया है ।

आदिवासियों के जन-जीवन का चित्रण करने के लिये लेखक ने आदिवासियों द्वारा मनाये जाने वाले लारुकाज, लेंडकाज, दीवारी जैसे उत्सव घोटुल की कार्यवाही, दूध लौटाने जैसी प्रथाएँ तथा आदिवासियों के अंधविश्वासों को उपन्यास में सुन्दर ढंग से चित्रित किया है ।

उपन्यास में आदिवासी समाज में रूढ़ शब्दों, मुहावरों का प्रयोग करके भाषा में आंचलिकता का निखार आया है । उदाहरण आंचुल, इंगे, सिरहा, लांदा, साईगुती, सुरजाल, इतुममरा, अकलज, अजील, धुल लील पाना, हवा की लहरों से लिपटना, शेर दिल होना, जैसी करनी वैसा फल आदि । अवस्थी जी ने भाषा में ग्रामीणता

लाने के लिए कुछ शब्दों, वाक्यों तथा उपमाओं का प्रयोग किया है। उदाहरण “बांस की जवाब टहनी की तरह उसने अपनी कमर को लचकाया और गले को झटका देकर छाती सामने तान दी।”^{५७}

उपन्यास में यथार्थता लाने के लिए आदिवासियों के जन-जीवन की सुरम्य भूमि, पहाड़, नदी-नाले, जंगलों का परिवेश के रूप में चित्रण किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अवस्थी जी के आंचलिक उपन्यासों के शिल्प में आंचलिक तत्वों का यथोचित प्रयोग हुआ है। उन्होंने विशिष्ट क्षेत्र बस्तर के आदिवासियों के जन-जीवन का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। इन उपन्यासों की कथा का मूल आधार है आदिवासियों की संस्कृति, उनके रीति-रिवाज तथा उनके विशिष्ट त्यौहार। इनका चित्रण करने के लिए उन्होंने विशिष्ट पात्रों की योजना की है जिनके नाम भी विशिष्ट हैं। वे अपने समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। आंचलिकता में निखार लाने के लिए आदिवासी भाषा के शब्द, मुहावरे, कहावतों का प्रयोग किया है तथा वातावरण में जंगलों, पहाड़ों, पशु-पक्षियों, उनके मकानों, नदी-नालों, उनकी पोशाक, उनकी झोपड़ियों, नाच-गानों के अत्यंत सुन्दर चित्रण किया है। स्पष्ट है कि अवस्थी जी ने अपने उपन्यासों में संस्कृति को निखारने के लिए सांस्कृतिक तत्वों का प्रयोग किया है।

संदर्भ सूची

१. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.९१-९२
२. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.८४
३. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१०६
४. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१०७
५. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१०९-१०
६. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.११९
७. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१३३
८. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१३३
९. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१३३
१०. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१३३
११. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१३३
१२. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१३५
१३. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१३५
१४. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१३५
१५. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१६२-१६३
१६. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.९७
१७. सूरज किरन की छाँव- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.३८
१८. सूरज किरन की छाँव, राजेन्द्र अवस्थी, पृ. १११
१९. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास : सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, विमल शंकर नागर, पृ. १३

२०. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.३८
२१. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१२४
२२. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.२२०
२३. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१५
२४. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.५२
२५. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१७
२६. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१८
२७. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१८
२८. जंगल के फूल- राजेन्द्र अवस्थी, पृ.१९
२९. राजेन्द्र अवस्थी, मछली बाजार, पृ.४२
३०. राजेन्द्र अवस्थी, जंगल के फूल, पृ.७१,७२,१७३
३१. राजेन्द्र अवस्थी, सीपियाँ, पृ.१३६,१७३,१७४
३२. राजेन्द्र अवस्थी, अकेली आवाज, पृ.८४
३३. राजेन्द्र अवस्थी, मछली बाजार, पृ.७०
३४. राजेन्द्र अवस्थी, बीमार शहर, पृ.७
३५. राजेन्द्र अवस्थी, जंगल के फूल, पृ.११
३६. डॉ. हरिशंकर दुबे, फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.१४२
३७. डॉ. विवेकीराय हिन्दी उपन्यास उत्तरशक्ती की उपलब्धियाँ, पृ.१५९
३८. राजेन्द्र अवस्थी, जाने कितनी आँखे, पृ.१६५,१६१,८,१०,१२,१३,१५,३५,
१६१, २५, २६

३९. राजेंद्र अवस्थी, सूरज किरन की छांव पृ.१४-१५, २३, २१, ३२, ३३, ९,
११, १२, १४, १७, १९, २३, २९
४०. राजेंद्र अवस्थी जंगल के फूल, पृ. १७, ५१, ३१, ३२, ३९, १५, १८, १२४,
१०५, १०६, ११६, १६

उपसंहार

हिन्दी साहित्य सृजन में राजेन्द्र अवस्थी आदिवासी एवं ग्राम संस्कृति के सशक्त हस्ताक्षर माने जाते हैं। उनके साहित्य में शिल्प की ताजगी भी है। कथ्य एवं शिल्प दोनों को रूपाकार देने में अवस्थी जी ने महारथ हासिल किया है। वे बचपन से ही जुझारु व्यक्तित्व के धनी थे। सृष्टि जगत की सुन्दरता उनकी आँखों में बचपन से ही बसी थी। बाह्य जगत की सुन्दरता ने आंतरिक जगत को उद्भूत किया और उसका परिणाम यह आया कि वह बचपन से ही कविता लिखता सिख जाते हैं। जब अवस्थी जी सातवीं-आठवीं कक्षा में थे तब से पद्य लिखना जानते थे। सृजन की सरस्वती ने उनके मन-मस्तिष्क में प्रतिष्ठा की थी। बाल्यकाल में ही कई सम्मानों एवं पुरस्कारों से होती प्रशस्ति को वह आज तक सुरक्षित रखे हैं। कविता से अपने साहित्य की शुरुआत करनेवाले अवस्थी जी अचानक गद्य साहित्य की ओर मुड़ते हैं। शायद सोचा होगा कि कविता सिर्फ मन बहलाव का कार्य करती है, जब गद्य विद्याएँ मन बहलाव के साथ-साथ जीवन की वास्तविकता और उस वास्तविकता की समस्याओं का समाधान भी करती हैं। राजेन्द्र अवस्थी जी की सृजनता प्रेमचन्द, नागार्जुन से होती अपने में पूर्ण विकसित होती है।

राजेन्द्र अवस्थी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, यात्रावृत्तांत जैसी कई साहित्यिक विधाओं का उन्होंने सर्जन किया है। अपने पिता की नोकरी की वजह से वह बचपन से कई स्थानों पर आते-जाते रहे। अलग-अलग स्थानों एवं व्यक्तियों से सम्पर्क रहा। उनका बचपन मंडला क्षेत्र की गोड आदिवासी जाति के बीच व्यतीत हुआ।

राजेन्द्र अवस्थी का उपन्यास साहित्य कथ्य के धरातल पर दो पहलूओं से संयुक्त है। एक आँचलिक कथ्य और दूसरा महानगरीय जीवन पर आधारित कथ्य । आदिवासी जनजीवन से धनिष्ठ सम्बन्ध होने के नाते उनके साहित्य में आदिवासी जीवन अत्यंत आकर्षक रूप में प्रस्तुत हुआ है ।

भारतीय आदिवासियों का अधिकतर जन-समुदाय बस्तर जिले में निवास करता है। बस्तर के आदिवासी अपनी अलग खाशियत के लिए जाने जाते हैं । बस्तर में अधिकतर गोड आदिवासी रहते हैं । दूर दराज जंगलों में, पहाड़ों में बसे आदिवासियों की अपनी एक संस्कृति है । वहाँ आज हमारी अच्छी लगती आधुनिक संस्कृति नहीं पहुँच पाई । उनकी कई मान्यताएँ भी हैं । वे उन मान्यताओं को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं । उनका रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज तथाकथित सभ्य समाज से विशिष्टता लिए हुए हैं । अवस्थी जी ने उन सारी बातों को लेकर अपना साहित्य सृजन किया है । अधिकतर उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में आदिवासी जीवन है । सिर्फ देखा नहीं भोगा साहित्य है । परिणाम स्वरूप ही हिन्दी साहित्य जगत में अपनी एक अलग प्रतिभा खड़ी करते हैं ।

आदिवासी गोंड युवक-युवतियाँ बॉस और फूस से बनायी झोपडियों में निवास करते हैं । इसी प्रकार की झोपडियाँ गाँव के बाहर भी होती हैं । उसे 'घोटुल' नाम से जाना जाता है । आदिवासी रीति के अनुसार ६-७ वर्ष की उमर में ही बच्चे घोटुल के सदस्य बनते हैं । ये तब तक घोटुल में रहते हैं जब तक वे कुँवारे हों । घोटुल का सरदार तथा अन्य पदाधिकारी घोटुल की जिम्मेदारी सम्भालते हैं । घोटुल में सारी लडकियाँ तथा लडकें साज-धजकर आते हैं । शाम होते ही घोटुल में भीड़ होने लगती है । पहला आनेवाला दूसरे का दूसरा आने वाला तीसरे का स्वागत करता

है। इसी तरह सभी का स्वागत होता है। घोटुल में रहनेवाले सदस्य हर पंद्रह दिनों के बाद अपना जोड़ीदार बदलते हैं। घोटुल में ही वे अपना जीवन-साथी चुनते हैं। इन्हें घोटुल द्वारा विशिष्ट प्रकार से विदाई दी जाती है। विदाई के दिन नाच-गाना होता है और लडकी सभी सदस्यों को तंबाखू बाँटती है। लडके भी उस लडकी को कंधी भेट देते हैं।

आदिवासियों के अपने रीति-रिवाज हैं। आदिवासियों में 'लमसेना' रखने की पद्धति बहुत प्रचलित है। आदिवासियों में लडकी के पिता को दहेज दिया जाता है। अगर लडके के पास दहेज देने के लिए पैसे न हों तो उसे लडकी के पिता के घर लमसेना रहकर काम करना पड़ता है। आदिवासियों में 'भाँडी में जीने' की एक रीत है। इस पद्धति के अनुसार भाँडी में जीने वाले व्यक्ति से थोड़ा काम करवा लेते हैं और उसे भीख देते हैं। आदिवासियों में 'भूल बिहाव' होते हैं। इस पद्धति के अनुसार अगर कोई कुमारी गर्भवती हो तो उसका विवाह जिसका गर्भ है उसके अलावा किसी दूसरे के साथ कर दिया जाता है। 'दूध लौटाने' की पद्धति का आदिवासी समाज में विशेष महत्व है। एक परिवार की लडकी दूसरे परिवार में ब्याही गयी हो तो, लडकी वाले परिवार का यह हक बनता है कि वह भी लडकेवाले परिवार से एक लडकी ब्याह कर लाए। इस पद्धति का अगर कोई विरोध करता है तो पंचायत करवाई जाती है। पंचायत का फैसला अंतिम होता है।

आदिवासियों में नाच-गाने को विशेष महत्व प्राप्त है। घोटुल में तथा पासवाले गाँवों में ये नाचते-गाते हैं। खुशी तथा मृत्यु के उपरान्त भी वे गाते हैं, नाचते हैं।

जंगलों में निवास करने वाले आदिवासी अनपढ़ हैं। उनका मंत्र-तंत्र पर असीम विश्वास है। यह पिछड़ा हुआ समाज है। शिकार उनकी उपजीविका का साधन है।

प्राणियों का मांस तथा गर्भ खून इनका स्वाद बढ़ाता है ।

आदिवासी अंधविश्वासी होते हैं । वे बीमारियों से बचने के लिए साल में एक बार 'लारुकाज' नामक उत्सव मनाते हैं । आदिवासियों द्वारा समय-समय पर टेसू, नुकानोर दाना, पाण्डुम त्यौहार, इरपूपाण्डुम, कारसदेव पूजा आदि उत्सव मनाए जाते हैं । इन उत्सवों में बकरी, सुअर आदि की बलि चढ़ाई जाती है ।

आदिवासी अपना जीवन जंगलों में तलाशते हैं । जानवरों का मांस, जानवरों का गर्म खून, बड़े मेढक, चींटियाँ तथा खेती से उत्पन्न अन्न-धान्य इनका खाद्य है । ये आदिवासी सिर पर लाल पगड़ी बाँधते हैं, गले में हार पहनते हैं तथा कौड़ियों तथा धुँधचियों की मालाएँ पहनते हैं, घुटनों तक धोनी पहनते हैं । इनकी आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय होती है । बेचारे जैसे-तैसे अपना गुजारा करते हैं ।

आदिवासी में अनेक स्त्रियाँ रखने की प्रथा है । संतान न होने के कारण तथा शौक से भी वे अधिक स्त्रियाँ रखते हैं । उनमें जो स्त्री माँ नहीं बन पाती उसे सताया जाता है ।

अवस्थी जी ने अपने आंचलिक कथा-साहित्य में बस्तर के आदिवासियों के जन-जीवन, खान-पान, रीति-रिवाजों का पर्याप्त बारीकी के साथ उभारा है । उनके कथा-साहित्य की यह विशिष्टता उन्हें अन्य कथाकारों से अलग कर देती है ।

अवस्थी जी आधुनिक कथाकार हैं । उनकी अधिकतर उपन्यास वर्तमान परिस्थिति से जुड़ी हुई हैं । उनकी सामाजिक, राजनीतिक तथा पारिवारिक उपन्यासों में आधुनिकता का भाव दिखाई देता है । उनकी आने वाले काल की ओर भी संकेत करती है । इसीलिए उन्हें इक्कीसवीं सदी का साहित्यकार माना गया है । अवस्थी जी की विषय परिधि पर्याप्त विस्तृत है । उसमें स्थापित मूल्यों के प्रति विद्रोह है ।

वैज्ञानिक प्रक्रिया के कारण उत्पन्न पारिवारिक समस्याएँ, परस्पर टकराव, नई पीढ़ी की परिवर्तन के लिए, छटपहाट मानव जीवन की निराशा, कुंठा, संत्रास, रिशतों में औपचारिकता, वर्तमान राजनेताओं का भ्रष्टाचार, समाज में फैली हुई गुंडा-गर्दी, स्वार्थी प्रवृत्ति, बेईमानी आदि बाते इस परिस्थिति में आती है ।

वर्तमान युग में मानव की विचारधारा परिवर्तित हुई है । इस परिवर्तन ने मानव की विचार शक्ति को भी परिवर्तित कर दिया है । मनुष्य के आपसी सम्बन्धों में औपचारिकता और कृत्रिमता का समावेश हुआ है । प्यार, ममता आदि कोमल भावनाएँ समाप्त हुई है ।

वर्तमान युग में बढ़ती हुई आबादी, यांत्रिकीकरण, पूँजीपतियों द्वारा शोषण आदि के कारण मनुष्य स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगा है । मनुष्य भय के दायरे में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है । कभी वह नौकरी के सन्दर्भ में भयभीत है, तो कभी बढ़ती जनसंख्या से, तो कभी परिवार वालों से । उसका जीवन अस्थिर हुआ है वह अधिक से अधिक समय घर से बाहर रहना पसन्द करता है ।

आधुनिक युग में परिवार तथा अन्य सम्बन्ध स्वार्थ की नींव पर बनने लगे हैं । आज व्यक्ति के सम्बन्धों में बदलाव आने का कारण धन है । पारिवारिक पवित्र सम्बन्ध भी धन के कारण बनने-बिगड़ने लगे हैं । यह परिवर्तन भाई-बहन, पिता-पुत्र में ही नहीं बल्कि पति-पत्नी में भी दिखाई देता है । पति-पत्नी में प्यार भरे कोमल सम्बन्ध होते हैं । वे जीवनभर सुख-दुख के साथी होते हैं । लेकिन स्वार्थ तथा धन के कारण वे भावनाएँ लगभग समाप्त होती जा रही हैं और इन सम्बन्धों में औपचारिकता आ रही है । ये सम्बन्ध मजबूरी या सुविधा के अनुसार निभाये जा रहे हैं ।

आधुनिकीकरण के कारण मनुष्य में काफी परिवर्तन आया है । मानो दया, करुणा, परोपकार, सहिष्णुता आदि भावों से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है । अगर परिवार का कोई व्यक्ति अपाहिज हो जाय तो परिवार के अन्य सदस्य उसके पास बैठना तो दूर की बात आते तक नहीं । वे न उसकी सेवा करते हैं, न ही उससे हमदर्दी जताते हैं । उन्हें ऐसा महसूस होता है कि यह हमारा कोई नहीं है बल्कि कोई फालतू चीज हमारे यहाँ पड़ी है ।

नारी-पुरुष के परस्पर आकर्षण को किसी भी तरह झूठलाया नहीं जा सकता । यह मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है । हमारे समाज में इस सम्बन्ध में कुछ मान्यताएँ हैं । गृहस्थ जीवन के लिए विवाह संस्था कायम की गई है पर वर्तमान युग के नर-नारी सदियों से चले आ रहे सम्बन्धों को नकारने लगे हैं । आज नैतिक-अनैतिक, अच्छाई-बुराई तथा सभी प्रकार के स्थापित मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन हो रहा है । ऐसे समय में यौन सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो रहा है । अवस्थी जी ने अपने कथा-साहित्य में इसे सामाजिक संदर्भों में देखा है ।

आधुनिक युग में राजनेता और राजनीति का विशेष महत्व है । जीवन में राजनीति का अधिपत्य हो गया है । राजनीति में बिना परिश्रम के बहुत कुछ मिलता है । इसलिए अनेक लोग राजनीति से जुड़े हुए हैं । राजनीति में भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार दिखाई देता है। मंत्रियों का लाखों के रूप में रिश्वत लेना, जनता को झूठे आश्वासन देना तथा उनको बहकाना आज के राजनेताओं का रोजमर्रा का व्यवहार है । उपर्युक्त सारी बातों को अवस्थी जी ने कथ्य के रूप में उतारा है । स्पष्ट है कि उनका कथ्य आधुनिक बोध को स्पष्ट करने में सक्षम है । उनकी कहानियों का कथ्य सामाजिक, पारिवारिक तथा राजनीतिक यथार्थ के कई पहलुओं को रूबरू करता है ।

अवस्थी जी के उपन्यासों के कथ्य में विविधता मिलती है। उनके आरम्भिक तीन उपन्यासों का कथ्य आदिवासियों से संबंधित है। उनके अन्य छः उपन्यासों में आधुनिक पारिवारिक जीवन की समस्या, यांत्रिकता के कारण मनुष्य में आया हुआ परिवर्तन, फिल्मी दुनिया के हथकंडे, सामाजिक समस्या, वेश्याजीवन, वैवाहिक जीवन की घुटन तथा विवाह का विरोध तथा वर्तमान राजनैतिक चालों और भ्रष्टाचार आदि को अंकित किया गया है।

परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। मानव के व्यक्तित्व विकास में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। परन्तु यांत्रिकता के कारण संयुक्त परिवार पद्धति लुप्त-सी हो गई है। मनुष्य अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए संयुक्त परिवार से अलग होने लगा है। वह परिवार को छोड़कर शहर जा रहा है लेकिन शहरों में आकर पति-पत्नी दोनों भी स्वच्छंद प्रवृत्ति के बनते जा रहे हैं, दोनों में विश्वास समाप्त होता जा रहा है। शहरों में आधुनिकता के कारण भी पाश्चात्यों का अंधानुकरण हो रहा है। परिवार में आमुल परिवर्तन हुआ है। परिवार के सभी सदस्य पाश्चात्य रंग में रंगते हैं। अवस्थी ने ऐसे परिवारों का चित्रण अपने 'मछली बाजार' तथा 'सीपियाँ' नामक उपन्यासों में किया है। पाश्चात्यों के अंधानुकरण के कारण कुलसुम, शोभना, सत्या, गोरावाला, शेखर आदि व्यक्ति शरीर को कुछ नहीं समझते। इच्छों की तृप्ति के लिए कोई भी पुरुष किसी भी नारी को अपना जोडीदार बना देता है।

वैज्ञानिक प्रगति और यंत्र युग के कारण मनुष्य तेज गति से दौड़ रहा है। इसी कारण एक नया समाज निर्माण हो रहा है। इससे नारी-पुरुष के बीच के काम-संदर्भ में एक नैतिकता ने जन्म लिया है। युवक-युवतियाँ ही नहीं शादी-शुदा नारी-पुरुष के बीच अनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। इन्हें इस प्रकार के सम्बन्ध में

बिल्कुल बुराई नजर नहीं आती । अवस्थी की रचना 'बीमार शहर' की सत्या, शोभना, हेलेन, शेखर, निरंजन, 'मछली बाजार' की शुभा, शमशेर, 'सीपियाँ' की नफीसा, कुलसुम शैफाली, रिकी ऐसे लोग हैं जिन्हें अनैतिक सम्बन्धों में बिल्कुल पाप नहीं लगता। इतना ही नहीं दिन-ब-दिन यौन स्वच्छंदता स्थापित करती है । इनमें कुछ युवतियाँ अभिनेत्री बनने के लिए स्वेच्छा से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती हैं । इनमें कुछ युवतियाँ मनोरंजन के लिए तो कुछ देह क्षुधा की पूर्ति के लिए शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है । इन युवतियों का कहना है कि 'यह देह मिट्टी है, कहीं पाप नाम की चीज नहीं है, यह मात्र हमारे मन का भ्रम है ।' इस प्रकार की स्वच्छंदता के कारण विवाह जैसी सामाजिक संस्था का मूल्य ही धोखे में है । ये सारे लोग वर्तमान परिस्थिति को देखकर यह स्वीकारते हैं कि विवाह में प्रेम नहीं होता । प्रेम तो विवाह से बाहर की चीज है । 'बीमार शहर' के सभी पात्र इस प्रकार की मान्यताएँ रखते हैं । 'मछली बाजार' का शमशेर विवाह बाह्य सम्बन्ध को स्वीकारते हुए भी विवाह विच्छेद नहीं करता । वह समाज से डरता है । यह वर्तमान समाज की मजबूरी भी है । अवस्थी द्वारा चित्रित 'बीमार शहर' का समाज इक्कीसवीं सदी का है ।

वर्तमान समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए पैसों की आवश्यकता है । आदमी चाहे जितने रुपये कमाये वह उसके चरितार्थ के लिए कम पडते हैं । अतः मनुष्य दिखावटी जीवन जीने के लिए अनुचित मार्ग से धन कमाता है । धन कमाने के लिए वह भ्रष्टाचार का पल्ला पकड़ता है । इसलिए चारों ओर भ्रष्टाचार की वृद्धि हो रही है । राजनीति इस भ्रष्टाचार का मूल है । पहले राजनीति से जुड़ने का मतलब था देशसेवा वर्तमान राजनीति मनुष्य के लिए ऐसा गढ़ बन गई है जिसकी छत्र-छाया में

वह कितने ही धृणित, गैरकानूनी काम करें उसका कोई भी कुछ बिगाड नहीं सकता। अवस्थी जी ने 'भंगी दरवाजा' तथा 'मछली बाजार' में इन बातों को सुंदर ढंग से अंकित किया है। वर्तमान राजनेताओं की तिकडमें, भ्रष्टाचार, चाले अवैध मार्ग कई रूप विवेच्य उपन्यासों में दृष्टिगोचर होते हैं।

स्पष्ट है कि अवस्थी जी के उपन्यासों में कथ्यगत विविधता है और उन्होंने वर्तमान समाज-यथार्थ के पटल पर अपने उपन्यासों की रचना की है।

अवस्थी जी के कथा-साहित्य के शिल्प में विविधता मिलती है। उन्होंने उपन्यासों तथा कहानियों में कथानक संगठन के लिए किसी एक शैली का प्रयोग नहीं किया है। उनके कथा-साहित्य की कथावस्तु सरल नहीं चलती। कथा में बीच-बीच में वर्तमान का सम्बन्ध अतीत से जोड़ा गया है। इससे कथावस्तु में रोचकता तथा कौतुहल की निर्मिति हुई है। कथावस्तु संगठन में उन्होंने मुख्य कथा के साथ गौण कथा को भी बहे सुन्दर ढंग से जोड़ा है जिससे मुख्य कथावस्तु का विकास हुआ है। कथावस्तु संगठन के लिए उन्होंने विविध शैलियों का प्रयोग किया है। 'बीमार शहर' में ज्यादातर आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग करके पूरी कथा कही गयी है। प्रत्येक पात्र अपने सम्बन्ध में तथा उसके संपर्क में आए हुए पात्र के सम्बन्ध में कहता है। 'मछली बाजार' में मैं शैली का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है लेकिन कभी-कभी यह 'मैं' मुख्य पात्र में विलीन हो जाता है और कथा उसकी अपनी लगने लगती है। 'अकेली आवाज' का कथानक सरल है। 'सीपियाँ' उपन्यास में अनेक घटनाओं का लेखा-जोखा देकर कथा को रोचक बनाया है। इसी तरह कहानियों के कथानक को भी अनेक शैलियों का प्रयोग करके रोचक और यथार्थ बनाया गया है। उनके कथानक पाठकों को समाज के गुण-दोष, अच्छाई-बुराई का

ज्ञान कराते है । इस दिशा में उनके कथानक का अपना विशिष्ट स्थान है ।

अवस्थी जी के उपन्यासों तथा कहानियों में चित्रित पात्र विविध स्तर के हैं । मोटे तौर पर दो प्रकार के हैं । एक आंचलिक पात्र और दूसरे शहरी पात्र । अवस्थी जी ने अपने आंचलिक कथा-साहित्य में मध्यप्रदेश के आदिवासियों का जन-जीवन चित्रित किया है । वह चित्रण करने के लिए उन्होंने विशिष्ट आदिवासी पात्रों को लिया है । उनके आदिवासी पात्र अपने समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं । पिछड़े हुए वर्ग की सारी विशेषताएँ उनमें मौजूद हैं । उनके नाम भी विशिष्ट है । ये पात्र अपनी रुढ़ियों से इतने चिपके हुए है कि किसी भी कीमत पर उन्हें छोड़ते नहीं । इसका यह अर्थ नहीं कि अवस्थी जी ने एक ही प्रकार के पात्रों का उपयोग किया है । अवस्थी जी ने अपने आंचलिक साहित्य में अपने समाज की अनिष्ट रुढ़ियों के प्रति विरोध करने वाले पात्रों का भी चित्रण किया है । ये पात्र अपने समाज की परम्परागत रुढ़ियों को नकारने वाले पात्र हैं । वे आधुनिकता के पक्षपाती है तथा वर्तमान युग से जुड़कर अपना विकास करना चाहते है । अवस्थी जी ने अपने जाने कितनी आँखें नामक आंचलिक उपन्यास ने प्यासनदादी जैसे विशिष्ट पात्र की योजना की । प्यासनदादी नारुद की भूमिका निमाती है । जिससे गाँव की सारी खबरें सभी जगह पहुँचती है । यह दादी गाँव के सभी टोलों को जोड़ने तथा उनमें झगड़े लगाने का काम करती हैं । यह अवस्थी द्वारा चित्रित विशिष्ट पात्र है ।

अवस्थी द्वारा चित्रित महानगरीय पात्रों में अधिकांश पात्र बुद्धिजीवी है । कई पात्र विवाह संस्था का विरोध करने वाले तथा परम्परा भंजक है । वर्तमान व्यक्ति यह सोचने पर मजबूर है कि जीवन में यदि कुछ करना है तो सुख, शांति, प्रेम को प्राप्त करे लेकिन परिवार में रहकर यह सब नहीं मिलता । शेखर, प्रोफेसर आचार्य,

कमला अय्यर मिस गोरावाला एवं उसकी तीनों लडकियाँ तथा शोभना इसी विचारधारा को मानने वाले पात्र हैं । निरंजन तथा शमशेर विवाह संस्था का विरोध करते हुए भी उससे दूर नहीं रह पाते। वे इच्छा न होते हुए भी सामाजिक भय के कारण परिवार से जुड़े हुए हैं । 'सीपियाँ' में चित्रित अनेक पात्र फिल्मी दुनिया से सम्बन्धित हैं और फिल्मी दुनिया में प्रवेश न मिलने वाली अनेक लडकियाँ वेश्यालय से सम्बन्धित हैं । लडकियों की दलाली करनेवाला गणपत नामक पात्र विशेष पात्र के रूप में चित्रित है । दलाल होने के बावजूद वह वेश्याओं से हमदर्दी रखता है, उनके सुख-दुःख में काम आता है । पारिवारिक त्रासदियों को झेलनेवाले अनेक पात्रों का अंकन अवस्थी जी के कथा-साहित्य में मिलता है । अवस्थी जी ने विशेषकर कामतृष्णाओं से अतृप्त लोगों का चित्रण किया है । उनके 'भंगी दरवाजा' तथा 'मछली बाजार' उपन्यास तथा अनेक कहानियों के पात्र राजनीतिक नेता हैं । लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि तिकडमी शासनकर्ता में कौन से गुण होते हैं? राजनेता कैसा होता है? उसकी पारिवारिक, सामाजिक, स्थिति कैसी होती है? सत्ता में रहने पर नेताओं की स्थिति, सत्ता में न रहने पर उनकी स्थिति, आदि का सुन्दर चित्रण अवस्थी जी ने किया है ।

अवस्थी जी ने विविध पात्रों का चित्रण विविध प्रणालियों द्वारा किया है । उनके कथा-साहित्य के पात्र सजीव तथा रोजमर्रा की जिन्दगी के लगते हैं । उनके चित्रण की सफलता है कि पात्र हमारे सामने साकार हो उठते हैं ।

अवस्थी जी के कथा-साहित्य में हमें दो प्रकार की नारियों का अंकन मिलता है । एक उन्होंने अति आधुनिक, स्वच्छंद नारी । दूसरे रुढ़ियों और परम्पराओं में जकड़ी तथा पति के अत्याचारों को सहनेवाली नारी । शोभना, शुभा, सत्या, गोरावाल परम्पराओं को तोड़कर पुरुषों के साथ कदम मिलाकर चलनेवाली नारियाँ हैं। दूसरी

और तेकती, बंजारी, आदि नारियाँ पति को परमेश्वर मानकर उनके तानाशाही, अत्याचारों को सहती है। वे अपने पति के साथ जुड़ी हुई है। स्पष्ट है कि अवस्थी जी के पात्रों में विविधता एवं विलक्षणता दृष्टिगत होती है।

अवस्थी जी के कथा-साहित्य में संवादों को बहुत ही स्वाभाविक रूप दृष्टिगत होता है। संवाद पात्रानुकूल है। आदिवासी पात्रों के मुख से निकलने वाले संवादों में उनकी भाषा का प्रयोग किया गया है। ग्रामीण पात्र यजदारों की भाषा में उसकी अपनी भाषा के शब्द दृष्टिगत होते हैं। अवस्थी के कथा-साहित्य में अंग्रेज आदमी के कथन में अव्यवस्थित भाषा सुशिक्षित पात्रों के संवादों में परिमार्जित भाषा परिलक्षित होती है। अवस्थी जी के कथा-साहित्य में संवाद छोटे, मार्मिक एवं प्रवाहपूर्ण है। इन संवादों के कारण संपूर्ण कथानक को गति प्राप्त हुई है। इतना ही नहीं संवाद से आनेवाली घटना का संकेत भी मिलता है। ये संवाद पात्रों की मनः स्थिति तथा विगत-जीवन वृत्त का भी परिचय कराते हैं। संवादों में वाक्पटुता विद्यमान है। संवाद पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों की अभिव्यक्ति में भी सक्षम है।

देशकाल वातावरण की दृष्टि से भी अवस्थी जी का कथा-साहित्य प्रभावपूर्ण है। उनमें प्रमुखतः दो प्रकार के वातावरण का चित्रण मिलता है। एक आंचलिक वातावरण और दूसरा महानगरीय वातावरण। दोनों को जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया गया है। अवस्थी जी का बाल्यकाल मंडला क्षेत्र के आदिवासियों की सुरम्य भूमि, नदी-नालों, पहाड़ों का मनोहारी वर्णन मिलता है। आदिवासियों की अपनी मान्यताएँ, रूढ़ि परम्पराएँ हैं। उनके त्यौहार विशिष्ट पद्धति से मनाये जाते हैं। अवस्थी जी ने इन सारी बातों का वातावरण के रूप में ग्रहण किया है। उनका प्राकृतिक वातावरण

मन पर अमीट छाप छोड़ता है । वातावरण चित्रण के कारण उनके कथा-साहित्य में जीवंतता, विश्वसनीयता आई है ।

अवस्थी जी के कथा-साहित्य में महानगरीय परिवेशगत यथार्थ के दर्शन होते हैं । अवस्थी जी नौकरी के निमित्त नागपुर, बम्बई तथा ल्ली में रहे हैं । उन्हे महानगरीय परिवेश का गहरा अनुभव है । उन्होंने बम्बई में फिल्म बनाने हेतु ऑफिस खोला था । उन्होंने वहाँ की अनेक वास्तविकताओं का ग्रहण किया । बम्बई के वेश्या-जीवन की त्रासदी से भी वे अच्छी तरह से परिचित हैं । अवलोकन पर आधारित वास्तविकता के सम्बन्ध में उन्होंने 'सीपियाँ' नामक उपन्यास की रचना की है । यह चित्रण पढ़कर हमें ऐसा महसूस होता है कि हम बम्बई की गलियों तथा फिल्मी स्थानों की परिक्रमा कर रहे हैं । 'मछली बाजार' में दिल्ली के महानगरीय जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है । महानगरीय परिवार की त्रासदी, वर्तमान राजनीति का घटिया रूप, उस क्षेत्र की विचित्र चाले, राजनीति में आदमी के इस्तेमाल की नीति इन सब बातों का बड़ा ही यथार्थ चित्रण अवस्थी के कथा-साहित्य में दृष्टिगोचर होता है । स्पष्ट है कि अवस्थी के कथा-साहित्य में वातावरण चित्रण अपने सफल रूप में विद्यमान है। आंचलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा प्राकृतिक परिवेश तथा जीवंतता उनके कथा-साहित्य की लक्षणीय विशेषता है ।

अवस्थी जी की भाषा पात्र, वर्णन एवं पात्रानुकूलता के साथ चलती है । उसमें सजीवता तथा चित्रमयता के कारण विशेष आकर्षण पैदा हुआ है । अवस्थी जी के कथा-साहित्य के पात्र विविध स्तर के हैं । फलतः भाषा में विविधता आयी है । मुसलमान पात्रों के मुख से उर्दू फारसी मिश्रित भाषा निकलती है । दिल्ली में निवास

करने वाले पात्रों के मुँह से अंग्रेजी शब्द निकलते हैं। अशिक्षित पात्र शब्दों को अशुद्ध रूप में प्रयुक्त करते हैं। जटिल मनः स्थिति को चित्रित करने के लिए क्लिष्ट भाषा और ग्रामीण पात्रों के मुख से ग्राम्य तथा लोकभाषा की शब्दावली का प्रयोग किया गया है। अवस्थी जी के कथा-साहित्य में शेर-शायरी, कविता तथा आदिवासी गीतों के समावेश से भी भाषा का वैविध्यपूर्ण रूप सामने आता है। भाषा के ये विविध रूप वर्ण्य को विश्वसनीय बनाने में सहायक हुए हैं। कहीं-कहीं पर भाषा को समझने में कठिनाई अवश्य प्रतीत होती है पर ऐसे स्थल बहुत कम हैं। मुहावरों तथा लोकोक्तियों का काफी प्रयोग किया गया है। इससे भाषा में प्रवाहपूर्णता आयी है। प्रवाहात्मकता, आलंकारिता, चित्रात्मकता, व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता, पात्रानुकूलता आदि अवस्थी की भाषा के गुण हैं।

अवस्थी जी ने अपने कथा साहित्य में किसी एक निवेदन शैली का प्रयोग न करके अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। उन्होंने आदिवासियों के निवास स्थलों तथा शहरी वातावरण के अंकन के लिए वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'बीमार शहर' उपन्यास में ज्यादातर आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग मिलता है। कथानक को गति प्रदान करने के लिए तथा पात्रों की मनः स्थिति को रूपायित करने के लिए संवादात्मक शैली का उपयोग किया गया है। पात्रों का वैयक्तिक जीवन-दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए डायरी शैली के प्रयोग को महत्व दिया गया है। मनोभावों को विश्लेषित करने के लिए पत्र शैली का इस्तेमाल किया गया है। अपने अभिमत की पुष्टि हेतु लोककथात्मक शैली उपयोग में लाई गई है। पात्रों के विगत जीवन के परिचय हेतु स्मृतिपरक शैली का प्रयोग किया गया है। शैलीगत यह मिश्र रूप अवस्थी के कथा-साहित्य की एक अस्मिता है।

अवस्थी का कथा-साहित्य बहुउद्देशीय है । उन्होंने आंचलिक कथा-साहित्य में आदिवासियों का जन-जीवन, उनकी संस्कृति, परम्परा, रूढ़ियाँ, मान्यताएँ आदि को उजागर किया है । उनके अन्य कथा-साहित्य के उद्देश्य में भी भिन्नता लक्षित होती है । महानगरीय जीवन और उसकी त्रासदी, वेश्याजीवन वर्तमान उच्छृंखल समाज, टूटते परिवार, फिल्मी चमचक-दमक, फिल्मी हथकड़े, वर्तमान घटिया राजनीति और उसकी दुष्परिणाम कलाकार के जीवन की त्रासदी आदि को रूबरू कराने और जीवन यथार्थ के कलात्मक निरूपण के उद्देश्य से लिखा गया उनका कथा-साहित्य पाठको को आनन्द देता है साथ ही उनके ये अनुभव विश्व को समृद्ध बनाते हैं । अवस्थी के कथा-साहित्य में आदिवासी तथा महानगरीय जीवन-यथार्थ के अनेकानेक पहलु, कथाकार की नूतन दृष्टि सुगठित शिल्प एवं बहुविध भाषा का स्पर्श पाकर सजीव हो उठे हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

(अ) आधारग्रंथ

१. राजेन्द्र यादव, कहानी स्वरूप और संवेदना
२. राजेन्द्र यादव, कहानी: स्वरूप और संवेदना
३. राजेन्द्र अवस्थी: एक रजनीगंधा चोरी
४. राजेन्द्र अवस्थी: मेरी प्रिय कहानियाँ
५. राजेन्द्र अवस्थी: एक रजनीगंधा चोरी
६. राजेन्द्र अवस्थी: लमसेना
७. राजेन्द्र अवस्थी: फिसली हुयी मछली
८. राजेन्द्र अवस्थी: महुआ आम के जंगल
९. राजेन्द्र अवस्थी: सूरज किरन की छांव
१०. राजेन्द्र अवस्थी: जंगल के फूल
११. राजेन्द्र अवस्थी: जाने कितनी आँखें
१२. राजेन्द्र अवस्थी: भंगी दरवाजा
१३. राजेन्द्र अवस्थी: मछली बाजार
१४. राजेन्द्र अवस्थी: बीमार शहर
१५. राजेन्द्र अवस्थी: बहता हुआ पानी
१६. राजेन्द्र अवस्थी: सीपियाँ
१७. राजेन्द्र अवस्थी: अकेली आवाज
१८. राजेन्द्र अवस्थी: सूरज किरन की छांव

(ब) सहायक ग्रंथ :

१. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९५४
२. आदर्श सक्सेना : हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, १९७१
३. इंदुप्रकाश पाण्डेय : हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९७९
४. एस.पी. कमल : भारतीय संस्कृति के आधार, दिल्ली पांचाल प्रेस पब्लिकेशन, १९५८
५. डॉ. एस. गम्भीर : साठोत्तरी हिन्दी काव्य में राजनीतिक चेतना, विद्या विहार, कानपुर, १९९२
६. के. एम. कापडिया : भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार : सुन्दरलाल जैन, दिल्ली, १९६३
७. चंडी प्रसाद जोशी : हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, १९६२
८. जवाहर सिंह : हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९८६
९. ज्ञान अस्थाना : हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, १९९८
१०. ज्ञान चंद्र गुप्त : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, १९७४

११. दामोदर सिंहल : आधुनिक भारतीय समाज और संस्कृति, मीनाक्षी प्रकाशन, पटना, १९८८
१२. पुरुषोत्तम दुबे : व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, अनुपमा प्रकाशन, बम्बई, १९७३
१३. रेलफ फॉक्स : उपन्यास और लोक जीवन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५७
१४. बसीधर : हिन्दी के आंचलिक उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, भाषा प्रकाशन, दिल्ली, १९७३
१५. ब्रज बिहारी निगम : संस्कृति एवं सभ्यता, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८७
१६. महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६२
१७. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. २००९
१८. रामजी उपाध्याय : भारत की संस्कृति साधना, रामनारायण लाल विजय कुमार, इलाहाबाद, १९६७
१९. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी : भारतीय सामाजिक संस्थाएं, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, १९८३
२०. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास : एक अंतयात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६८
२१. रामविलास शर्मा : परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७५

२२. लक्ष्मीकांत सिन्हा : हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास, ग्रंथ भारती, कानपुर, १९६६
२३. लक्ष्मीसागर वाष्णेय : हिन्दी की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५८
२४. वेद प्रकाश गुप्ता : भारतीय उत्सव और पर्व जीवन, ज्योति प्रकाशन, दिल्ली, १९९०
२५. वीणा गौतम : आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यमवर्गीय चेतना, संजय प्रकाशन, दिल्ली, १९८४
२६. शिव प्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नव लेखन, लोकभारतीय प्रकाशन, दिल्ली, १९७०
२७. शेख मुहम्मद इकबाल : स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी एवं तेलुगू कहानी का तुलनात्मक अध्ययन, कन्दर्प प्रकाशन, दिल्ली, १९८८
२८. श्री नारायण अग्निहोत्री : हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, १९६१
२९. सत्यदेव त्रिपाठी : शिव प्रसाद का कथा साहित्य स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, १९७५
३०. सुभद्रा : प्रेमचंद साहित्य में ग्राम्य जीवन, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, १९७२
३१. सुभाषिनी शर्मा : स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यास, संजीव प्रकाशन, दिल्ली, १९६७
३२. सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
३३. सुवास कुमार : आंचलिकता यथार्थवाद और रेणु के उपन्यास, साहित्य सहकार, दिल्ली, १९९२

३४. ह.के. कडवे : हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, १९७८
३५. हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी विवाह की उत्पत्ति और विकास भारतीय लोक संस्कृति, शोध संस्थान, १९७४.
३६. डॉ. आदर्श सक्सेना, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि
३७. डॉ. इन्दिरा जोशी, हिन्दी उपन्यासों में लोक तत्त्व
३८. डॉ. कृष्णा नाग, हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास
३९. गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूप रेखा
४०. डॉ. गणेशन, हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन
४१. तारकनाथ बली, सांस्कृतिक परम्परा और साहित्य

(क) पत्रपत्रिकाएँ

१. नूतनभाषा सेतु- डॉ. रामकुमार गुप्त- अहमदाबाद ।
२. साहित्य परिवार- डॉ. सुर्यदीन यादव- नडियाद ।
३. वीणा-इंदौर राजेन्द्र मिश्र- इंदौर ।
४. हंस- राजेन्द्र यादव- नई दिल्ली ।
५. भाषा- डॉ. शशि भारद्वाज- नई दिल्ली ।

(ड) शब्दकोश

१. मानवी की परिभाषित कोश (साहित्य खंड)
२. मानक हिन्दी कोश (भाग-१ से ५)- सं. रामचन्द्र वर्मा ।
३. बृहद हिन्दी कोश- सं. कालिका प्रसाद ।
४. हिन्दी साहित्य कोश (भाग-१,२)- सं. धीरेन्द्र वर्मा ।